जाट एवं मुगल : ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध (18वीं सदी) भरतपुर–धौलपुर के विशेष सन्दर्भ में

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की पीएच.डी. (इतिहास) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

(सामाजिक विज्ञान–संकाय)

शोधार्थी
कुलराज व्यास

शोध पर्यवेक्षक
प्रो. रामअवतार शर्मा
आचार्य – प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति
एवं पुरातत्व अध्ययनशाला
जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

सामाजिक विज्ञान विभाग
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
2017

घोषणा–पत्र (शोधार्थी)

मैं एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि मेरे द्वारा कोटा विश्वविद्यालय, कोटा में पीएच. डी. उपाधि (इतिहास) हेतु प्रस्तुत शोध–प्रबंध जिसका शीर्षक जाट एवं मुगल : ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध (18 वीं सदी) भरतपुर–धौलपुर के विशेष सन्दर्भ में है, मेरा मौलिक कार्य है।

मेरी जानकारी एवं विश्वास में इसमें किसी भी प्रकार की पूर्व प्रकाशित सामग्री, अन्य किसी के द्वारा लिखित सामग्री या किसी भी विश्वविद्यालय या उच्च शिक्षा के संस्थान में प्रस्तुत डिग्री या डिप्लोमा की उपाधि की सामग्री को प्रयोग नहीं किया गया है, अपरिहार्य स्थिति में ली गई ऐसी हर सामग्री का यथा स्थान सन्दर्भ एवं आभार व्यक्त कर दिया गया है।

स्थान शोधार्थी

दिनांक **कुलराज व्यास**

आभार

यह निर्विवाद सत्य है, कि शोध के लिए किये गये प्रयत्नों में सफलता तभी प्राप्त होती है, जब उसे गुरुजनों, सहयोगियों एवं परिजनों का मार्गदर्शन एवं संरक्षण प्राप्त हो। इसी तारतम्यता में मैं उन सभी आचार्यगणों, महानुभावों एवं सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करना अपना प्रथम कर्तव्य समझता हूँ कि जिन्होंने प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रुप से इसे पूर्ण कराने में अपना अमूल्य सहयोग एवं मार्गदर्शन दिया।

विविध स्त्रोतों, संस्थाओ तथा व्यक्तियों से जो अमूल्य सहायता मुझे मिली है उसके लिए भी मैं ऋणी हूँ। इनके सहयोग के बिना इस कार्य की सफल परिणिति संभव नहीं थी।

सर्वप्रथम यह मेरा पावन कर्तव्य है कि मैं अपने श्रद्धेय मार्गदर्शक जीवाजी विश्वविद्यालय में इतिहास विभाग के प्रो. रामअवतार शर्मा जी के प्रति सच्ची कृतज्ञता प्रकट करुँ। उनकी अवस्था तथा व्यस्त कार्यक्रम के बावजूद उन्होंने मुझे यह सौभग्य प्रदान किया कि मैं उनके पावन चरणों में बैठकर यह शोध कार्य पूरा कर सकूँ। शुरु से अंत तक उनका व्यवहार मेरे प्रति कृपालु एवं स्नेहपूर्ण बना रहा। मैं उनको बार–बार कष्ट देता रहा ताकि उनकी बहुश्रुत विद्वत्ता का अधिकतम लाभ उठा सकूँ। उनके स्नेहपूर्ण प्रश्रय, प्रोत्साहन, मार्गदर्शन और व्यक्तिगत रुचि के बिना इस कार्य को पूरा करना संभव नहीं था।

जीवाजी विश्वविद्यालय में इतिहास विभाग के प्रो. एवं मेरे गुरु भाई डॉ. योगेश यादव जी का मैं विशेष आभारी हूँ, कि उन्होंने मुझे अपने छोटे भाई की तरह हर परिस्थिति में अपना कीमती समय, सहयोग और मार्गदर्शन प्रदान किया।

मैं कोटा विश्वविद्यालय, कोटा के पूर्व कुलपति प्रो. मधुसूदन शर्मा जी के प्रति अपनी सच्ची कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूँ, कि उनके आदेश एवं अनुमति से यह महत्वपूर्ण कार्य कर सका। साथ ही विश्वविद्यालय के शोध, विभाग के पूर्व निदेशक प्रो. राजौरा महोदय का भी आभारी हूँ और शोध विभाग में पूर्व मैं कार्यरत सुमित्रा महोदया का भी विशेष आभारी हूँ, कि उन्होंने समय–समय पर मुझे उचित जानकारी उपलब्ध कराई। साथ ही विश्वविद्यालय के वर्तमान शोध निदेशक, प्रो. ओमप्रकाश रिषी जी एवं उपनिदेशक (शोध), विभाग के समस्त अधिकारीगणों एवं कर्मचारीयों को विशेष धन्यवाद देना चाहूँगा, कि उनके सहयोग एवं समर्थन से यह पावन–कार्य पूरा कर सका।

मैं. बीकानेर विश्वविद्यालय में इतिहास की प्रो. अम्बिका ढाका जी, एवं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में इतिहास के प्रो. रविन्द्र शर्मा जी का भी विशेष आभारी हूँ कि उन्होंने अपनी विद्वत्ता से मुझे लाभान्वित किया। साथ ही राजकीय महाविद्यालय अलवर में इतिहास के प्रो. राकेश शर्मा जी का भी विशेष रुप से ऋणी हूँ कि पूर्व में भी मुझे उनका शिष्य होने का गौरव प्राप्त है। इस दुष्कर कार्य को बिना उनके सहयोग के पूरा कर पाना संम्भव नहीं था। ब्रजेश टी.टी. कॉलेज के प्राचार्य डॉ. बी. एस. चौहान जी को भी धन्यवाद देना चाहूँगा कि उन्होंने अपना बहुमूल्य समय देकर समय–समय पर मेरी सहायता की।

मेरे मित्र डॉ. किशनलाल नाई चुरु, डॉ. सुनील निमेष कोटा, डॉ. अर्चना तिवारी जयपुर, पृथ्वी सिंह (शोध छात्र, इतिहास) का भी अहसानमन्द हूँ, कि उन्होंने इस कार्य में सहयोग प्रदान किया।

मेरे इस कार्य के लिए आवश्यक सुविधाएँ जुटाने में, कोटा विश्वविद्यालय के पुस्तकालय, हिन्दी साहित्य समिति पुस्तकालय (भरतपुर), राजकीय पुस्तकालय भरतपुर, राजकीय पुस्तकालय

धौलपुर तथा सूरजमल शोध संस्थान, जनकपुरी नई दिल्ली आदि के पुस्तकालयाध्यक्षों और कर्मचारियों से जो सहानुभूति पूर्ण सहायता मुझे प्राप्त हुई उसके लिए वे सब धन्यवाद के पात्र हैं।

मैं ओम कम्प्यूटर सेन्टर बाडी के नीरज शर्मा जी और उनके सहायक शाहरुख भाई को भी धन्यवाद देना चाहूँगा कि उन्होंने अपने व्यस्ततम समय में भी मुझे समय देकर इस शोध–प्रबंध का टंकण कार्य पूर्ण किया।

अंत में मैं मेरे सभी परिवारीजनों विशेषतः भाईयों का विशेष ऋणी हूँ कि उन्होंने विषम परिस्थितियों में भी मेरा हौंसला बढाया और हर सम्भव सहायता उपलब्ध कराई।

कुलराज व्यास

अनुक्रमणिका

पृ. संख्या

प्रस्तावना : भौगोलिक परिचय भरतपुर–धौलपुर 1–19
भरतपुर, भरतपुर के प्रसिद्ध स्थान, धौलपुर, धौलपुर के प्रसिद्ध स्थान, ऐतिहासिक परिचय भरतपुर –धौलपुर– भरतपुर, धौलपुर

शोध योजना : **20**

शोध उद्देश्य : **21**

प्रथम अध्याय : 18 वीं सदी के पूर्वार्द्ध में भारत की राजनैतिक दिशा व दशा 22–42

नवीन राज्यों का उत्थान, भारत में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच स्पर्धा, उत्तर–पश्चिम से विदेशी आक्रमण।

द्वितीय अध्याय : जाट शक्ति का उदय मुगल शक्ति से सम्बन्ध 43–91

जाटों की उत्पत्ति, जाटों की उत्पत्ति का इण्डों–सिथियन सिद्धान्त, इण्डों–सिथियन सिद्धान्त की आलोचना, जाटों की उत्पत्ति का देशी सिद्धान्त, जत्थर और जाट, जाटों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मुसलमान इतिहासकारों का मत, जाटों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अन्य प्रचलित सिद्धान्त, निष्कर्ष, जाट और उनका आरभिंक इतिहास, मुगलों का भारत आगमन, जाट–मुगल सम्बन्ध, जाट–मुगल सम्बन्ध (1707–1720), जाट–मुगल सम्बन्ध (1720–1722), जाट–शक्ति का विकास (1723–1756)।

तृतीय अध्याय : महाराजा सूरजमल और मुगल 92–148

सूरजमल का जीवन परिचय, सूरजमल का परिवार, आय और सैन्यबल, महाराजा सूरजमल और मुगल, सूरजमल द्वारा सलावत खाँ की पराजय, सूरजमल और सफदरजंग के मध्य मित्रता, सूरजमल और प्रथम अफगान अभियान, सूरजमल और द्वितीय अफगान अभियान, सफदरजंग द्वारा जावेद की हत्या और सूरजमल, सूरजमल और राजधानी में गृहयुद्ध, सूरजमल और शाही वजारत, सूरजमल और शाही समस्याएँ, सूरजमल और शाहआलम (अली गौहर), सूरजमल और स्थायी सरकार के लिए प्रयत्न, सूरजमल और नजीबुद्दौला, सूरजमल का मूल्यांकन।

चतुर्थ अध्याय : महाराजा जवाहर सिंह और मुगल 149–169

जवाहर सिंह का जीवन परिचय, महाराजा जवाहर सिंह और नजीबुद्दौला, जवाहरसिंह और नजीब खाँ के मध्य सन्धि, महाराजा जवाहरसिंह की मृत्यु, महाराजा जवाहर सिंह का मूल्यांकन।

पंचम अध्याय :	राष्ट्रीय सोच के परिक्षेप में जाटों एवं मुगलों की नीतियों का मूल्यांकन।	170–177
षष्ठ अध्याय :	जाट–मुगल सम्बन्धों का तत्कालीन राजनीति पर प्रभाव।	178–200
सप्तम अध्याय :	उपसंहार	201–207
	अन्य शोध सम्भावनाएँ	208
परिशिष्ट :–	**(अ) मानचित्र**	209–211
	(ब) चित्रफलक	212–215
	(स) सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	216–219

प्रस्तावना

प्रथम अध्याय

18 वीं सदी के पूर्वाद्ध में भारत की राजनैतिक दिशा व दशा

द्वितीय अध्याय

जाट शक्ति का उदय
मुगल शक्ति से सम्बन्ध

तृतीय अध्याय

महाराजा सूरजमल और मुगल

चतुर्थ अध्याय

महाराजा जवाहरसिंह और मुगल

पंचम अध्याय

राष्ट्रीय सोच के परिपेक्ष्य में जाटों एवं मुगलों की नीतियों का मूल्यांकन

षष्ठ अध्याय

जाट–मुगल सम्बन्धों का तत्कालीन राजनीति पर प्रभाव

सप्तम् अध्याय

उपसंहार

परिशिष्ट

संदर्भ ग्रंथ सूची

भौगोलिक परिचय भरतपुर–धौलपुर

भरतपुर –

राजस्थान का भरतपुर जिला रियासत काल में भरतपुर राज्य की राजधानी रहा। भरतपुर की स्थापना राजा दशरथ के दूसरे पुत्र भरत के नाम पर हुई। भरतपुर के राजा एवं वंशज भरत के छोटे भाई लक्ष्मण की पूजा करते थे तथा उनका नाम मुद्राओं, हथियारों एवं महत्वपूर्ण दस्तावेजों पर अंकित करते थे।

वर्तमान में भरतपुर जिला 27^o22 से 27^o50 उत्तरी अक्षांश व 77^o48 से 78^o17 पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है जिले के उत्तर में हरियाणा राज्य के रेवारी, नूंह, फरीदाबाद पूर्व में उत्तरप्रदेश राज्य के मथुरा और आगरा शहर, दक्षिण में धौलपुर जिला एवं मध्यप्रदेश का मुरैना जिला और पश्चिम में करौली जिला, दौसा जिला व अलवर जिला से सीमा लगती है (करौली के हिण्डोन से, दौसा के महुआ से एवं अलवर के कठूमर, रामगढ़, किशनगढ़, तिजारा से भरतपुर की सीमा लगती है।)

जिले की आकृति कटी–फटी तथा विषम है जिले का कुल क्षेत्रफल 5066 वर्ग कि.मी. है। भरतपुर जिले की जलवायु शुष्क है ग्रीष्म ऋतु में बहुत गर्मी, शीत ऋतु में बहुत सर्दी और वर्षा ऋतु में मानसून अल्पकालीन होता है। जिले का औसत तापमान 25 डिग्री सेन्टीग्रेड रहता है। तथा वर्षा का वार्षिक औसत 67.15 सेन्टीमीटर है।[1]

भरतपुर जिले की भरतपुर व नदबई तहसील मैदानी व समतल है जबकि बयाना व रूपवास तहसीलों में पहाड़ियाँ है भरतपुर, बयाना व डीग उपखण्डों की भूमि सामान्यतया उपजाऊ और सपाट हैं जिले की मुख्य नदियाँ बाणगंगा, गम्भीरी, काकुंड, पार्वती व रूपारेल है। ये नदियाँ केवल वर्षा ऋतु में जलयुक्त रहती है और वर्षाकाल के पश्चात सूख जाती है। बाणगंगा नदी जयपुर से निकलकर भरतपुर के भुसावर कस्बे के गाँव कमालपुरा के पास प्रवेश कर पूर्व की तरफ बहती हुई भुसावर, बैर, बयाना, उच्चैन व रूपवास फतेहपुर सीकरी आदि क्षेत्रों में बहती हुई उत्तरप्रदेश के खेरागढ में जा निकली है इसके पानी से खेती को बहुत फायदा पहुँचता है। 380 कि.मी. बहती हुई अंत में यह नदी फतेहाबाद (आगरा) के समीप यमुना में मिल जाती है।इस नदी की एक धारा भरतपुर शहर के आस–पास वाले बाँधों और नहर में पहुँचकर वहाँ के वाशिन्दों को मीठा पानी उपलब्ध कराती है क्योंकि वहाँ के कूओं मे अधिकतर खारा पानी हैं। 110 कि.मी. लम्बी गम्भीरी नदी सवाईमाधोपुर से निकलकर भरतपुर जिले के बयाना कस्बे के गाँव करसाडा में प्रवेश करती है, पहले यह नदी पूर्व की ओर बहती है इसके बाद उत्तर में बयाना के पहाड के चारो ओर घूमती हुई कुरका गाँव के पास बाणगंगा में मिल जाती है अंत में आगरा में यमुना में मिल जाती है। काकुंड नदी करौली के पहाडों से निकलकर इस जिले के बयाना कस्बे मे आती है, यहाँ पर ऊँची पहाडी जमीन से गोरधा गाँव के जमीन पर गिरती है, वहाँ हमेशा पानी भरा रहता है लगभग 9 कि.मी. तक यह पहाडों के बीच होकर गुजरती है, जिसका सारा पानी नालों के जरीय इस नदी में आता है इस पहाडी अहाते मे से बारेटा गाँव के पास से निकलने के बाद यह उत्तर की तरफ

चलकर शालाबाद के नजदीक गम्भीर नदी में मिल जाती है। रुपारेल नदी अलवर जिले से बहती हुई सीकरी कस्बे के पास भरतपुर जिलें में प्रवेश करती है। इस नदी के जल पर एक समय तक अलवर व भरतपुर की रियासतों में विवाद रहा, जिसको तत्कालीन गर्वनर जनरल के राजपूताना के एजेण्ट हेनरी लॉरेन्स ने विक्रमी संम्वत् 1912 (हिजरी संम्वत् 1271) ईं. सन् 1855 में दूर किया। सीकरी के बाँध से यह नदी दो भागों में बंट जाती है, पहला वह जो उत्तर भारत पूर्व में गोपालगढ़ व पहाडी की तरफ और दूसरा दक्षिण पूर्व में डीग़, कुम्हेर व भरतपुर को जाता है। उत्तर में काँमा से बढ़कर पानी को रास्ता न मिलने से, अधिक वर्षा होने पर पहाडी और काँमा बीच लगभग 16.17 कि.मी. पानी भर जाता है, परन्तु यह झील पूरी भर जाती है, तो ज्यादा पानी मथुरा में जाकर वहाँ की खेती को नुकसान पहुँचाता है। दक्षिणी धारा का पानी मोतीझील में जा गिरता है, और वहाँ से ओरीन नदी में, जो खारी नदी की एक शाखा है, शामिल होकर फतेहपुर सीकरी की तरफ बह जाती है। खारी नदी आगरा में, बाणगंगा में जाकर मिल जाती है।[2] भरतपुर में वर्ष भर बहने वाली कोई नदी नही है, जिसके कारण कृषि को पानी पहुँचाने के लिए नहरें नही हैं, इसलिए वर्षा का पानी बाँधों के माध्यम से रोका जाकर फसल बोने के समय छोड़ा जाता है। जिले के बाँधों में हर साल दूर–दूर तक पानी भर जाता है, और खाली होने पर उनके अन्दर की जमीन पर बहुत उन्नत कृषि होती है। इस कारण से पानी के बड़े–बड़े रास्तों पर बाँध तैयार किये गये हैं, जो गर्मी में सूख जाते है और वर्षा के समय पूरे भर जाते हैं। बाँधों पर पक्की पाल बनी हुई है, और सभी में पक्की मोरियाँ बनी हुई है। जिले में सिंचाई के लिए ये बाँध एक बडा श्रोत भी है। जिले का सबसे बडा बाँध ''बंध बरेठा'' है जिसकी भराव क्षमता 29 फीट है।[3]

जिले में चार झीलें है – मोती झील, केवलादेव झील, मादल झील तथा झील का बाडा। इन झीलों में अनेक प्रकार की मछलियां पाई जाती है। जिले के दक्षिणी भाग में पहाड बहुत हैं। जिस पहाड पर बयाना का किला बना हुआ है, वह बहुत ऊँचा और चौडा है जो रुपवास तक फैला हुआ है। उत्तरी हिस्से में भी पहाड है, परन्तु सम्पूर्ण जिले में सबसे ऊँचा पहाड़ अलीपुर क्षेत्र में ''अखेगढ़'' का है जो ''काला पहाड़'' के नाम से जाना जाता है; इसकी ऊँचाई समुद्रतल से 1357 फीट है। छपरा पहाडी का पहाड 1222 फीट, दमदमा पहाड बयाना 1222 फीट, नगर का रसिया पहाड़ 1065 फीट, रुपवास का उसीरा पहाड़ 817 फीट, भरतपुर का माढोनी पहाड़ 725 फीट समुद्रतल से ऊँचा है।

भरतपुर के आस पास के क्षेत्रों से मकान की छतें पाटने के लिए पट्टियाँ निकाली जाती है। वंशी पहाड़पुर, वारेटा से उत्तम किस्म का सफेद व लाल पत्थर निकलता है, जो विश्व प्रसिद्ध है। फतेहपुर सीकरी के मुगलकालीन प्रसिद्ध भवनों व महलों में एवं डीग और वैर के महलों में यहीं का पत्थर लगा हुआ है। लाल व सफेद पत्थर के अलावा खंडा, गिट्टी, बोल्डर,सेण्ड स्टोन, ईंटें बनाने की उत्तम किस्म की मिट्टी, बजरी आदि मिलते हैं। जिले में धातु की कोई खान नही है, बहुत समय पहले भुसावर तथा वैर के बीच और बयाना के पहाडों में ताँबे की कुछ खानें शुरु हुई थीं, परन्तु कुछ फायदा न होने से बन्द कर दी गई।[4] जिले में एक बडा जंगल भी है, जिसमें धौंक, खैर, बेर, बबूल, चिरोल, कचनार, करील तथा मिश्रित वृक्ष पाये जाते है, जिले में स्थित जंगलों, झीलो तथा

अभ्यारणयों में अनेक प्रकार के जलचर, पक्षी, पशु एवं सरीसृप देखने को मिलतें है। जिला मुख्यालय पर स्थित केवलादेव घना पक्षी विहार को विश्व विरासत की सूची में शामिल किया गया है, जिसमें साइवेरिया से आने वाले सारसों को देखा जा सकता है। केवलादेव घना पक्षी विहार को देशी पर्यटकों के साथ–साथ विदेशी पर्यटक भी काफी संख्या में देखने को आते है।[5]

जिले के आवो–हवा उत्तम है, बारिश अच्छी होती है, मगर भरतपुर जिला मुख्यालय में पीने का पानी बहुत खराब है, कुछ कुओं में, जो तालाब व नहर के किनारे पर हैं, मीठा पानी पाया जाता है। जिले के पानी में फ्लोराइड की मात्रा भी बहुतायत में पायी जाती है। कृषि की दृष्टि से जिले में मुख्य पैदावार गेहूँ, जौ, चना, गन्ना, बाजरा, मूंग, मौंठ और उडद है। रवी, खरीफ व जायद की फसल की पैदावार की जाती है।[6]

भरतपुर जिला विश्व प्रसिद्ध बृज क्षेत्र का हिस्सा है, जहाँ भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी लीलायें की। जिले की भाषा बृज भाषा है साथ ही खडी बोली का मिश्रण भी है। 2011 की जनगणना के अनुसार जिले की कुल जनसंख्या 2548462 है एवं जनसंख्या घनत्व 503 प्रति वर्ग कि.मी. तथा लिंगानुपात 880 है। जिले में एक लोकसभा क्षेत्र है, जो भरतपुर है एवं 6 विधानसभा क्षेत्र हैं, जो – बयाना, भरतपुर , डीग–कुम्हेर, काँमा–नदबई, नगर, तथा मेड़ हैं। सम्पूर्ण जिला 10 तहसील क्षेत्रों में विभाजित है जो– बयाना, भरतपुर, डीग, काँमा, कुम्हेर, नदबई, नगर, पहाडी, रुपवास, तथा मेड़ है।[7]

शिक्षा की दृष्टि से जिले में सन् 2012 में महाराजा सूरजमल बृज विश्वविद्यालय की स्थापना की गई है। इस विश्वविद्यालय के द्वारा भरतपुर और धौलपुर के समस्त विश्वविद्यालयों को सम्बद्धता प्रदान की जाती है। विश्वविद्यालय के अलावा जिले में एम. एस. जे. शासकीय महाविद्यालय, शासकीय कन्या महाविद्यालय, शासकीय कानून महाविद्यालय तथा कई निजी महाविद्यालय स्थित हैं। जिले का कुल साक्षरता प्रतिशत 70.11 है।

जिले में मुख्यतः जाट, गूजर, मुसलमान, मेव, मीणा, ब्राह्मण, कायस्थ, बनिया, अहीर, माली और धाकड़ है और इनके अलावा कई दूसरी जातियाँ भी रहती हैं, मुसलमानों में अधिकांश संख्या मेवों की है।[8]

भरतपुर के प्रसिद्ध स्थान

भरतपुर – मुख्य शहर भरतपुर समतल भूमि पर बसा हुआ है। लड़ाई के दौरान बाहर की झीलों से इतना पानी छोड़ दिया जाता था। दुश्मन की ताकत नही कि शहर में घुस सकें। भरतपुर के किले का पुनः निर्माण करा कर महाराजा सूरजमल ने भरतपुर को अपनी राजधानी बनाया। शहर के अन्दर एक मजबूत और ऊँचा किला है।; जिसके चारों ओर बहुत चौडी और गहरी खाई बनी हुई है उसमे हमेशा पानी भरा रहने से शहर वासियों को बहुत–कुछ आराम मिलता है किलें में दो मुख्य द्वार है। और आठ बुर्ज हैं, और तीन महल हैं जिनमें एक मर्दाना महल, दूसरा जनाना कचहरी के रुप में काम में लिया जाता था। महाराज किले में नही रहते थे, उन्होंने शहर से पश्चिम की ओर लगभग 5 कि.मी. दूर सेवर गाँव के पास एक छावनी बसाकर रहना पसंद किया।

बयाना – बयाना भरतपुर जिले का एक कस्बा है, प्रारंभ में बयाना पर चंद्रवंशी राजपूतों का अधिकार रहा। उसके बाद दिल्ली सल्तनत का कब्जा रहा फिर मुगलों की कमजोर स्थिति का लाभ उठाकर बयाना पर भरतपुर वालों ने अधिकार कर लिया।

डी़ग – डी़ग भरतपुर में एक प्रसिद्ध स्थान हैं डीग के जलमहल विश्वभर में अपनी अलग पहचान रखते हैं डीग के महलों की मजबूती एवं बनावट, बागों की रौनक एवं फव्वारों की खूबसूरती की तुलना मुंशी ज्वाला सहाय ने आगरा के रौज–ए–मुमताज महल से की है डीग में एक सुदृढ़ किला भी बना हुआ है और उसके आस–पास कुछ झील भी है।

काँमा – यह एक प्राचीन कस्बा है। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार इस कस्बा को श्रीकृष्ण भगवान की ननिहाल माना जाता है।

रूपवास – यह एक छोटा सा कस्बा है, इस कस्बे में लाल पत्थर से निर्मित महल और उनके नीचे एक पक्का तालाब है, जो बादशाह अकबर के फतेहपुर सीकरी में रहने के समय तैयार कराये गये। यहाँ महाराजा वलवंत सिंह का बनाया हुआ एक बाग भी है।

पहाड़ी – पहाड़ी में साहिब खाँ खानजादह पीर की दरगाह है।[9]

खानवा – खानवा एक प्राचीन एवं ऐतिहासिक कस्बा है। मुगलवंश के संस्थापक बाबर और मेवाड़ के महाराणा संग्राम सिंह (सांगा) के मध्य 16 मार्च, 1527 ई. में इसी स्थान पर एक निर्णायक युद्ध हुआ जो भारतीय इतिहास में ''खानवा का युद्ध''[10] के नाम से जाना जाता है। खानवा गाँव अब भरतपुर जिले की रुपवास तहसील में स्थित है, जो 500 साल पहले इतिहास की किताब से फट गये पन्ने की भाँति आजाद भारत के पटवारियों की गिरदावरी और जमाबंदी में एक साधारण गाँव की भाँति दर्ज है।

धौलपुर

धौलपुर –

राजस्थान के पूर्वीद्वार पर स्थित धौलपुर जिला $26^o70'$ से उत्तरी अक्षांश व $77^o90'$ पूर्वीदेशान्तर के मध्य स्थित है। धौलपुर शहर चम्बल नदी के समीप ऊँचाई वाले स्थान पर बसा हुआ है। जिले की सीमा उत्तर में उत्तरप्रदेश के आगरा, दक्षिण में मध्यप्रदेश का मुरैना जिला, उत्तर–पश्चिम में राजस्थान का भरतपुर जिला तथा पश्चिम में राजस्थान के करौली जिले से लगती है। धौलपुर जिले का कुल क्षेत्रफल 3084 वर्ग कि. मी. है। राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या–3 आगरा से मुम्बई तक जाता है, जो धौलपुर से होकर गुजरता है जिले में उसकी कुल लम्बाई 28 कि.मी. है। चम्बल नदी के किनारे बसा होने के कारण यहाँ की अधिकांश भूमि कंकरीली एवं कम उपजाऊ है; जिसे स्थानीय भाषा में 'डांग' के नाम से जाना जाता है।

जिले की जलवायु प्रायः शुष्क है। ग्रीष्मकाल में यहाँ तेज हवाएँ चलती है, जिन्हें 'लू' कहा जाता है और शीतकाल में तेज सर्दी पडती है। जिले का अधिकतम तापमान 49 डिग्री तक पहुँच जाता है तथा न्यूनतम तापमान 1 डिग्री सेल्सियस तक पहुँच जाता है एवं औसत वार्षिक वर्षा 643 मि.मी. होती है। धौलपुर जिले की राजाखेड़ा, सैपऊ, बाडी व बसेड़ी तहसील मैदानी एवं समतल हैं, जबकि मुख्य धौलपुर के पश्चिम में पीरबाबा के पहाड़ से मचकुण्ड सैनिक स्कूल (केसरबाग) और वन विहार अभ्यारणय तक पहाडियां हैं, जबकि सरमथुरा तहसील पठारी भूमि है।[11]

जिलें में वर्ष भर बहने वाली एक मात्र नदी चम्बल है। चम्बल के अलावा पार्वती, बामनी, ऊँटगन जिले की मुख्य नदियाँ है लेकिन ये नदियाँ वर्षाकाल में ही जलयुक्त रहती है, वर्षाकाल के पश्चात सूख जाती है। चम्बल नदी राजस्थान की सबसे लम्बी एवं वर्षा वाहिनी नदी है। यह नदी राजस्थान के 6 जिलों में बहती हुई (चित्तौड़गढ़, कोटा, बूँदी, सवाईमाधोपुर, करौली तथा धौलपुर) धौलपुर में राजस्थान और मध्यप्रदेश की सीमा का निर्धारण करती है। धौलपुर में बहकर यह नदी उत्तरप्रदेश के मुरादगंज (इटावा) के समीप यमुना नदी में मिल जाती है। चम्बल नदी को चर्मण्वती, राजस्थान की कामधेनु आदि नामों से जाना जाता है।[12] पार्वती नदी पर आँगई गाँव में एक बाँध बना हुआ है, जो राजस्थान का सबसे बड़ा कच्चा बाँध है। इसका नाम पार्वती बाँध है। इस बाँध से नहर निकाली गई है जिससे आस–पास के क्षेत्रों में सिंचाई की जाती हैं।

धौलपुर में मुख्य झील है– मचकुण्ड और तालाबशाही। धौलपुर स्थित मचकुण्ड झील प्रकृति की गोद में बहुत ही सुन्दर एक प्राकृतिक झील है। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार मचकुण्ड झील का निर्माण सूर्यवंश के 24 वे राजा मुचुकुंद ने कराया था। इस झील के चारो ओर अनेक छोटे–छोटे मन्दिर तथा पूजाग्रह बने हुए है, जो पाल राजाओं के समय 775 ई. से 915 ई. तक के बने हुए हैं। कुछ मन्दिर व सीढियों का निर्माण धौलपुर के राणा भगवन्त सिंह (1856 ई.) के समय हुआ था। इस पवित्र सरोवर का ऐतिहासिक महत्व के साथ–साथ धार्मिक महत्व विशेष है। मान्यता है, कि मचकुण्ड में स्नान करने से चर्मरोग दूर हो जाते हैं। इस पवित्र सरोवर पर प्रतिवर्ष भाद्रपद माह में शुक्ल पक्ष की 6 को विशाल मेला लगता है। अजमेर स्थित तीर्थराज पुष्कर को जहाँ समस्त तीर्थ स्थलों का 'मामा' कहा जाता है, वहीं धौलपुर स्थित मचकुण्ड को तीर्थस्थलों का 'भांजा' कहा जाता है। मचकुण्ड की सुन्दरता को देखकर इसे छोटा पुष्कर या पूर्वी राजस्थान का पुष्कर कहा जाये तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।[13]

तालाबशाही झील राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 11B पर धौलपुर जिला मुख्यालय से लगभग 30 किमी. दुर बाडी के समीप खानपुर गाँव में स्थित है। इस झील का निर्माण 1622 ई. में बादशाह

जहाँगीर द्वारा शाहजहाँ के लिए जहाँगीर के मनसबदार सालेखांन ने आखेट यात्रा के दौरान कराया था।[14] झील के किनारे पर धौलपुर के प्रसिद्ध लाल पत्थर से निर्मित एक आलीशान भवन बना हुआ है। झील की पाल पर अनेक कलात्मक छतरियाँ बनी हुई हैं। ये इमारत और छतरीयाँ मुगलकालीन वास्तुकला का एक श्रेष्ट उदाहरण हैं। इस झील से एक नहर निकाली गई है, जिससे आस–पास के गाँवों में सिचाई होती है। झील में अनेक देशी पक्षियों के साथ–साथ कुछ विदेशी पक्षियों को भी जल–क्रीडा करते देखा जा सकता है। तालाबशाही झील में –ग्रेट व्हाइट पैलिकन' पक्षी बहुतायत में आते है। ये पक्षी दुनियां के बडे जलीय पक्षी की श्रेणी में आते हैं। पैलिकन पक्षी की पहचान इसकी लंबी चोंच उसके पीछे बनी गले की थैली है। इसका प्रयोग यह पक्षी शिकार के लिए करता है। एक बार में पैलिकन अपनी थैली में लगभग 10 लीटर पानी भर सकता है। यह पक्षी उथले पानी में एक साथ यू आकार में लाइन बनाकर मछलियों को छिछले पानी की ओर धकेलता है फिर अपनी लम्बी चोंच से आसानी से शिकार कर लेता है। ग्रेट पैलिकन की लम्बाई एक से दो फीट के बीच होती है, जबकि इसका वजन 10 से 12 किलो होता है। दुनियाँ भर में पैलिकन की 8 प्रजातियाँ पाई जाती है। इनमें तीन प्रजातियाँ ग्रेट व्हाइट पैलिकन स्पॉट बिल्ड दक्षिण पूर्वी एशिया के समुद्री तटों, नदियों, बडी झीलों के किनारे निवास करती हैं।

वर्तमान में पैलिकन भारत में मेहमान पक्षी के रुप में आते हैं, हालाँकि शहर में अभी तक व्हाइट पैलिकन ही देखा गया है। वही ग्रेटर फ्लेमिंगो पक्षी ग्रुपों मे ही साथ खाना खाते हैं। इनकी सबसे अच्छी अदा होती है, तब यह अपनी लम्बी गर्दन घुमाकर एक दूसरे के साथ फूड शेयरिंग करते हैं दोनों की गर्दन मिलकर घुमाव से दिल का आकार ले लेती है।

जिले में झीलों के अलावा तीन बडे बाँध भी है। उर्मिला सागर बाँध (धौलपुर–बाडी के बीच खनपुरा गॉव के पास) रामसागर बाँध (तालाबशाही से लगभग 7 किमी. दक्षिण दिशा की तरफ) पार्वती बाँध (ऑगई) वर्षा जल का इन बाँधो के द्वारा संग्रहण हो जाता है और फसल बुवाई के समय छोडा जाता है, इन बाँधो से नहरें निकाली गई है, जिनसे आस–पास के क्षेत्रों में सिंचाई होती है। महाराजा निहालसिंह के समय रामसागर नामक वन–प्रदेश को अभ्यारण्य घोषित किया गया था। 1904 ई. में वहाँ स्थित नदी पर बाँध बनने से एक कृत्रिम झील बन गई जिसे रामसागर के नाम से पुकारते है। 1904 ई. में महाराजा रामसिंह गद्दी पर थे तब से इसे रामसागर कहा जाने लगा। यहाँ हर समय पानी रहता है अतः नाव की सैर का आनन्द लिया जा सकता है। इस बाँध से बाडी के समीपवर्ती क्षेत्रों में सिचाई होती है। पार्वती बाँध की पाल पर 16 गेट बने हुए हैं, जब बाँध का जलस्तर अधिक हो जाता है, तब गेट खोल दिए जाते है। ये बाँध सिंचाई विभाग के नियंत्रण में है। बाँध से नहर निकाली गई है जिससे आस–पास के क्षेत्र में सिचाई की जाती है। वर्तमान में इस क्षेत्र के 84 गॉवो को पेय जलापूर्ति इसी बाँध से की जा रही है।

जिले में चम्बल राष्ट्रीय घडियाल अभयारण्य, वनविहार अभयारण्य, रामसागर अभयारण्य हैं। चम्बल राष्ट्रीय घडियाल अभयारण्य राजस्थान, उत्तरप्रदेश तथा मध्यप्रदेश की सीमाओ में स्थित होने के कारण तीनों राज्यो का संयुक्त रुप से नियंत्रण है। धौलपुर में चम्बल नदी के पानी में घडियाल पाये जाते हैं, पानी से निकलकर ये घडियाल चम्बल की रेत पर आनन्द लेने आ जाते हैं। इनको संरक्षण देने के लिए चम्बल के किनारे से रेत के दोहन पर रोक लगा दी गई है। वनविहार, रामसागर अभयारण्य में रीछ, हिरण, नीलगाय, बारहसिंगा, जरख, लौमडी, सियार आदि स्वछन्द रुप से विचरण करते हैं।[16]

जिले में बहुत बडा जंगल है, जिसमें खैर, धोक, बेर, बबूल आदि के वृक्ष पाये जाते है। जंगल मे स्थानीय लोग पशु–चारण करते है। जंगल से स्थानीय लोग लकडी काट कर अपना जीवन–निर्वाह करते है।

जिले का सम्पूर्ण भाग चम्बल घाटी के 'जलोदक' (भरका) के नाम से प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र में प्रायः लाल पत्थर पाया जाता है। समूचे जिले की आय का मुख्य साधन यह लाल पत्थर ही है, इसलिए इसे 'रैड डायमण्ड'' के नाम से जाना जाता है। यहाँ से प्राप्त पत्थर की चार किस्में हैं – सैण्ड स्टोन, मैसनरी स्टोन, लाइम स्टोन तथा बजरी। जिले के बाडी, बसेडी तथा सरमथुरा क्षेत्र में यह पत्थर निकलता है। सरमथुरा क्षेत्र में लाल पत्थर की खानें डौमपुरा, कौनेसा, हीरापुर, अमानपुरा, सूंड, 4 नम्बर तथा 7 नम्बर क्षेत्र में है। सरमथुरा क्षेत्र के 90 प्रतिशत लोगों की आजीविका का मुख्य साधन पत्थर का खनन कार्य है। पत्थर की कटाई एवं पॉलिश के लिए इस क्षेत्र में लगभग 100 गैंगसा मशीनें लगी हुई है। इस पत्थर का उपयोग भवन–निर्माण एवं सडक निर्माण कार्यों में होता है। नक्काशी के कार्यो के लिए भी यह पत्थर काफी उपयुक्त है। आगरा स्थित लाल किला धौलपुर के प्रसिद्ध लाल पत्थर से निर्मित एक मुगलकालीन इमारत है।[17] पत्थर के खनन कार्यो में लगे लोंगो में जानलेवा सिलकोसिस जैसी खतरनाक बीमारी उत्पन्न होने लगी है। धौलपुर के सरमथुरा क्षेत्र के गॉव डौमपुरा गॉव में विधवाओं की संख्या बढी है। खनन क्षेत्र के गॉवों में लोगों को सांस की बीमारी ज्यादातर पाई जाती है।[18] इस बीमारी से लोगो का शरीर बहुत ही कम समय में क्षीण होकर मृत्यु हो जाती है।

जिले में फसलों की पैदावार मानसून पर निर्भर है। रवी और खरीफ की दोनों फसलों की पैदावार होती है। अगर वर्षा ठीक व सही समय पर हो जाए तो यहाँ गेहूँ, बाजरा, गन्ना, जौ, चना, मोठ, उडद, मूंग, ग्वार, मूँगफली की खेती की जाती है। जायद की फसलो में कांकडी, तरबूज, खरबूजा, खीरा आदि की पैदावार की जाती है। धौलपुर जिले में 6 तहसीलें – धौलपुर, राजाखेडा, बाडी, बसेडी, सैपऊ, सरमथुरा तथा 5 पंचायत समितियॉ – बाडी, धौलपुर, सैपऊ, राजाखेडा, बसेडी है। धौलपुर जिले में चार विधानसभा क्षेत्र – बाडी, बसेडी, धौलपुर, राजाखेडा तथा 6 उपखंड है।

2011 की जनगणना के अनुसार धौलपुर जिले की कुल जनसंख्या 1207293 जिसमें 654344 पुरुष एवं 552949 महिला है। राजस्थान की कुल जनसंख्या में धौलपुर जिले की जनसंख्या 1.76 प्रतिशत है। 0–6 आयु वर्ग की कुल जनसंख्या 215567 है जो धौलपुर जिले की कुल जनसंख्या का 17.86 प्रतिशत है जिसमें 116276 बालक एवं 99291 बालिकाऐं है। धौलपुर जिले का लिंगानुपात 846 है एवं जनसंख्या घनत्व 398 प्रतिवर्ग किमी. है। धौलपुर जिले की कुल साक्षर संख्या 695597 है जिसमें 444051 पुरुष एवं 251546 महिलाऐ है तथा कुल साक्षरता तथा कुल साक्षरता प्रतिशत 70.14, जिसमें 82.53 प्रतिशत पुरुष एव 55.45 प्रतिशत महिलाऐं हैं।[19]

वर्तमान में शिक्षा की दृष्टि से जिले में एक स्नात्कोत्तर राजकीय महाविद्यालय, एक विधिमहाविद्यालय तथा एक बालिका महाविद्यालय संचालित है जिले के राजाखेडा एवं बाडी तहसील में भी एक–एक राजकीय महाविद्यालय संचालित है तथा जिले में अनेक निजी महाविद्यालय संचालित है।

जिले में कई जातियॉ निवास करती हैं। जिनमें राजपूत, गूजर, ब्राह्मण, कायस्थ, माली, मुसलमान, तमोली, मीणा, सुनार, कहार, जाटव, कोली, हरिजन तथा इनके अलावा और भी कई जातियॉ निवास करती है। जिले में सर्वाधिक जनसंख्या मीणाओं की है।

धौलपुर के प्रसिद्ध स्थान

राजाखेडा – धौलपुर से पूर्व दिशा में लगभग 35 किमी. दूर स्थित है। यहॉ राजपूतो की अच्छी आबादी है। वर्तमान में राजाखेडा विधायक प्रद्युम्न सिंह है।

बाडी – धौलपुर से पश्चिम दिशा में लगभग 35 किमी. दूर पर स्थित है। यहॉ एक किला बना हुआ है, जिसमें कई राजकीय कार्यालय संचालित है। वर्तमान में बाडी विधायक गिर्राजसिंह परमार है।

बसेडी – जिला मुख्यालय से 48 किमी. दूर तथा बाडी से 13 किमी. पश्चिम में बसेडी कस्बा स्थित है। बसेडी से वर्तमान विधायक रानी कोली हैं। कस्बे से लगभग 5 किमी. पूर्व में पार्वती नदी के तट पर शिवजी काएक प्राचीन मन्दिर बना हुआ है।

सैंपऊ – जिला मुख्यालय से लगभग 35 किमी. उत्तर–पश्चिम में स्थित है। यहाँ एक शिवजी का प्राचीन और विशाल मन्दिर बना हुआ है।

मनियां – धौलपुर से 15 किमी. दूर उत्तर में मनियां कस्बा स्थित है। यह कस्बा राजस्थान–उत्तरप्रदेश की सीमा का निर्धारण करता है। यह कस्बा राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 3 पर स्थित है।

सरमथुरा – धौलपुर से 65 किमी. दूर पश्चिम में तथा बाडी से 30 किमी. दूर, राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 11B पर सरमथुरा कस्बा स्थित है। यहाँ रावसाहब का रावर (महल) बना हुआ है। सरमथुरा से लगभग 15 कि.मी. दूर पश्चिम दिशा में बीलौनी गाँव है, जिसके समीप पार्वती नदी बहती है, जो धौलपुर–करौली की सीमा का निर्धारण करती है। यह एक ऐतिहासिक गाँव है यहाँ एक गढ़ी (छोटा किला) बनी हुई है और किले के पास चामुण्डा देवी का प्राचीन मन्दिर बना हुआ है। किले के पास में प्राचीन बाजार बना हुआ है, जो जर्जर अवस्था में है किन्तु प्राचीन बाजार व्यवस्था का एक श्रेष्ठ उदाहरण है।

ऐतिहासिक परिचय, भरतपुर–धौलपुर

भरतपुर –

भरतपुर के नोह नामक स्थान पर खुदाई में ईसा से 1200 वर्ष पूर्व के लौह अवशेष प्राप्त हुए हैं। खुदाई में प्राप्त विशाल चूल्हे, हवनकुण्ड,हड्डी की मोहरें, ईंटें, खिलौने तथा सिक्के बड़ी मात्रा में प्राप्त हुए है। यह सामग्री इस बात को प्रमाणित करती है, कि ईसा से कई शताब्दी पहले इस क्षेत्र में मानव सभ्यता एवं संस्कृति काफी उन्नत अवस्था में थी। खुदाई में शुंगकालीन एवं कुषाणकालीन अनेक देव प्रतिमाऐं तथा तांत्रिक उपकरण भी प्राप्त हुए हैं। यहाँ से प्राप्त पुरातात्विक सामग्री इस तथ्य के लिए काफी मजबूत आधार प्रदान करती है, कि आर्यो की वैदिक कालीन सभ्यता में यह स्थान प्रमुख केन्द्र था। मौर्यकाल में यह क्षेत्र मौर्य साम्राज्य के अधीन था। बयाना के पास विजयगढ़ से यौधेयों का ईसा के बाद तीसरी शताब्दी का एक लेख प्राप्त हुआ है, जिसके अनुसार कुषाणों की प्रारंभिक सत्ता इस क्षेत्र तक विस्तृत थी। गुप्तकाल में विजयगढ़ तथा बयाना शासन के प्रमुख केन्द्र थे। बयाना से लगभग 11 किमी. दूर नागा लाछेला से फरवरी 1946 ई. में गढा हुआ खजाना मिला था जिसमें गुप्तकालीन 1821 मुद्रायें भी थी। 550 ई. के बाद इस क्षेत्र में गुर्जर शक्तिशाली हो गये और क्षेत्र की सत्ता गुर्जरों के हाथों में आ गई। चीनी यात्री व्हेनसांग ने वर्तमान भरतपुर जिले के क्षेत्र को 'गुर्जरात्रा' राज्य में शामिल किया है एवं पश्चिमी भारत का दूसरा सबसे बडा राज्य बताया है। उस समय क्षेत्र की राजधानी बजाना थी जो बाद में बयाना नाम से प्रसिद्ध हुई। गुर्जरों के बाद प्रतिहारों का उदय हुआ जो गुर्जरात्रा क्षेत्र पर शासन करने के कारण 'गुर्जर प्रतिहार' कहलाये। प्रतिहार वंशीय राजा भोज प्रथम तथा महीपाल द्वितीय ने भी इस क्षेत्र पर अपनी सत्ता स्थापित की। नौ वीं शताब्दी में कन्नौज के शासको के अधीनस्थ के रूप में चौहानों ने भी इस क्षेत्र पर शासन किया, किन्तु सत्ता के वास्तविक स्वामी प्रतिहार ही बने रहे। अजमेर के चौहान शासक अजयराज द्वितीय ने 1110 ई. से 1135 ई. तक इस क्षेत्र में अपनी सत्ता का विस्तार किया और यह क्षेत्र चौहानों के अधीन हो गया। 1018 ई. में जब गजनी के शासक महमूद गजनी ने मध्यभारत पर आक्रमण किया तब मथुरा के निकट महावन में यदुवंशी शासक कुलचंद शासन करता था। महमूद गजनी वरण (बुलंदशहर) से चलकर महावन पहुँचा तो कुलचंद को सूचना मिली कि गजनवी अपनी विशाल सेना लेकर आ रहा है, तो वह घने जगंलों के बीच अपने दुर्ग में चला गया और वहाँ उसने महमूद का सामना किया किन्तु पराजय हाथ लगी। इसी यदुवंश का राजा जयपाल 11वी शदी के पूर्वार्द्ध में यादवों की गद्दी पर बैठा जिसका उत्तराधिकारी विजयपाल हुआ। इसी विजयपाल का उल्लेख बयाना के 1044 ई शिलालेख में है। विजयपाल का उत्तराधिकारी तहनपाल था जिसने बयाना से लगभग 25 कि.मी. दूर (करौली जिले के मासलपुर के पास) तहनगढ़ दुर्ग का निर्माण करवाया।[20]

1192 ई. में तराइन का द्वितीय युद्ध एक निर्णायक युद्ध रहा।[21] इस युद्ध के परिणामस्वरुप भारतीय सत्ता चौहानों के हाथ से निकलकर तुर्कों के हाथों में आ गई। मुहम्मद गौरी विजित क्षेत्रों की जिम्मेदारी अपने योग्य गुलाम कुतुबुद्दीन ऐवक को सौंपकर गजनी वापिस चला गया और ऐवक

भारत का शासक बन गया जिसने भारत में गुलाम वंश की नीम डाली। ऐवक की मृत्यु के बाद बयाना पर से तुर्कों का शासन कमजोर हो गया तथा यादवों ने अपना आधिपत्य स्थापित कर दिया किन्तु शीघ्र ही इल्तुतमिश ने यादवों को परास्त कर दिया तथा बयाना और तहनगढ़ पर अधिकार कर लिया। इल्तुतमिश के उत्तराधिकारी कमजोर साबित हुए जिसका लाभ मेवातियों ने उठाया और वे दिल्ली सल्तनत को खुली चुनौती देने लगे। किन्तु जब दिल्ली सल्तनत पर बलबन सत्तारुढ़ हुआ तो उसने मेवातियों को बुरी तरह से परास्त किया। खिलजीयों के समय में भी यह क्षेत्र दिल्ली सल्तनत के अधीन रहा। अलाउद्दीन खिलजी बयाना के काजी मुगीसुद्दीन से धार्मिक मामलों मे सलाह–मशबरा लिया करता था। तुगलकों के शासनकाल में मेवाती लोग और अधिक बडी समस्या बनकर खडे हो गये। 1421 ईं में दिल्ली के तख्त पर सैयद वंश का मुबारक खां आसीन हुआ उसने शम्सुलमुल्क सिकन्दर तुहफा को बयाना का शासक बनाया। मुबारक खां के पूरे शासन के दौरान मेवाती विद्रोही बने रहे 1451 ईं. में दिल्ली पर लोदी वंश की स्थापना हुई, जिसकी स्थापना बहलोल लोदी ने की। लोदी ने अहमद खां जलवानी को बयाना का शासक नियुक्त किया। बहलोल लोदी के बाद सिकंदर लोदी दिल्ली का सुल्तान बना तो उसका झगड़ा बयाना के गर्वनर सुल्तान शर्फ से हो गया (अहमद खां जलवानी का पुत्र) वह अपने पिता की मृत्यु के बाद बयाना का गर्वनर बना था। अहमद खां जलवानी बहलोल लोदी के नाम का खुतवा पढ़ा करता था। किन्तु सुल्तान शर्फ ने सिकंदर लोदी के नाम का खुतवा पढ़ने से मना कर दिया इस कारण सिकंदर लोदी ने 1492 ईं मे बयाना पर आक्रमण कर दिया।[22] 1517 ईं. में इब्राहिम लोदी दिल्ली का सुल्तान बना।[23] 1526 ईं. मे फरगना (मावरून नहर अथवा ट्रान्स–ऑक्सियाना क्षेत्र का उत्तरी भाग था, जो अब रूस के तुर्की प्रान्त का एक भाग है)[24] के शासक बाबर ने इब्राहिम लोदी पर आक्रमण कर दिया और पानीपत के प्रथम युद्ध में 21 अप्रैल 1526 ईं को इब्राहिम लोदी को पराजित कर दिया।[25] इस युद्ध के परिणामस्वरुप दिल्ली सल्तनत का अध्याय समाप्त हो गया और भारत में एक नई सत्ता का उदय हुआ जो इतिहास में मुगलवंश के नाम से जानी जाती है।

पानीपत की पहली लड़ाई के बाद बाबर दिल्ली और आगरा का स्वामी तो हो गया, किन्तु हिन्दुस्तान का सम्राट बनने के लिए कई विकट विरोधियो और शक्तिशाली शत्रुओं से मोर्चा लेना वाकी था, तब कहीं हिन्दुस्तान का सम्राट होने की बात सोची जा सकती थी।

बाबर को हिन्दुस्तान का सम्राट बनने के लिए मेवाड़ के शासक राणा संग्राम सिंह (साँगा) से युद्ध करना अवश्यमभावी था। इस बीच बाबर ने बयाना पर अधिकार करने के लिए मंहदी ख्वाजा को भेजा और ठ़ीक उसी समय राणा साँगा भी बयाना पहुँचा और उसने बयाना के दुर्ग को घेर लिया। उस समय निजाम खां बयाना का शासक था। साँगा ने निजाम खां से बयाना का किला छीन लिया और बाबर देखता ही रह गया। बाबर समझ गया कि उसे हिन्दुस्तान में रहना है तो साँगा से निपटना होगा। अतः 1527 ईं में खानवा के मैदान में दोनों के मध्य घमासान युद्ध हुआ जिसमें अन्तिम विजय बाबर की हुई। जिस प्रकार पृथ्वीराज चौहान की पराजय के 335 साल बाद तक हिन्दु नरेश पराजय और अधीनता की टीस झेलते रहे, ठ़ीक उसी प्रकार राणा साँगा की पराजय के पूरे 350 साल बाद तक हिन्दुस्तान इस्लाम के अधीन हो गया।[26] इसी क्रम में औरंगजेब

की क्रूरता, कठोरता और धर्मान्धता ने इस क्षेत्र के हिन्दुओं को मुगल सत्ता के बिल्कुल खिलाफ कर दिया। 17 वीं शताब्दी आते आते आगरा, मथुरा, कोइल (अलीगढ़) मेवात की पहाढियाँ तथा आमेर राज्य की सीमाओं से लेकर उत्तर में दिल्ली से मेरठ, होड़ल, पलवल तथा फरीदाबाद से लेकर दक्षिण में चम्बल नदी के पार गोहद तक जाट जाति का खूब प्रसार हो गया। इस कारण यह विशाल क्षेत्र 'जटवाडा' के नाम से विख्यात होने लगा। ये जाट मुस्लिम सत्ता के लिए मेवातियों से भी अधिक बड़ा सिरदर्द साबित होने लगे।[27]

मुगल सम्राट औरंगजेब ने अपने जीवन के अन्तिम 25 वर्ष दक्षिण भारत में बिताए थे। जब वह दक्षिण भारत में मराठों के साथ जीवन और मरण के संघर्ष में रत था तब उत्तर भारत पर उसकी पकड़ कमजोर पड़ गई। हिन्दुओं ने स्थान–स्थान पर विद्रोह प्रारंभ कर दिए तथा साम्राज्य की जडें हिला दीं।

भरतपुर का जाट राजवंश सिनसिनीवार कबीले से सम्बन्धित है। इस वंश का संस्थापक मदनपाल था जो कि जादौन राजपूत वंश से सम्बन्धित बताया जाता है। मदनपाल के पिता का नाम तहनपाल था जो बयाना का शासक था। मदनपाल के वंश में बालचन्द नाम के एक व्यक्ति ने एक जाट स्त्री से विवाह किया जिसके दो पुत्र उत्पन्न हुए इन पुत्रों का नाम क्रमशः सिजय तथा विजय रखा गया। जाट स्त्री से उत्पन्न होने के कारण सिजय और विजय को जादौन राजपूत समुदाय ने अपनी जाति में स्वीकार नही किया। तब इन दोनों ने अपने को अपने पैतृक गाव ''सिनसिनी '' के नाम पर सिनसिनीवार कहना प्रारंभ कर दिया। इसी वंश में बृज नामक एक जमींदार ने मुगल शासक औरंगजेब के विरुद्ध संघर्ष किया तथा वह मारा भी गया। इसके पश्चात ही जाटों का मुगल साम्राज्य से संघर्ष हुआ। बृज का छठा पुत्र चूडामन जाट हुआ जिसने गोकुला एवं राजाराम के बाद जाटों का नेतृत्व किया। [28]

वदनसिंह को भरतपुर के जाट राज्य का संस्थापक माना जाता है। अपने प्ररंभिक जीवन में वह चूडामन का सहयोगी था तथा मुगल साम्राज्य के विरुद्ध जाटों के विद्रोह में उसका योगदान प्रमुख था। चूडामन के बाद उसका पुत्र मोहकम सिंह उसका उतराधिकारी बना। बदन सिंह की मोहकम सिह से अनवन हो गई अतः वह भागकर आमेर के शासक सवाई जयसिंह से मिल गया।[29] उसकी सहायता से जयसिंह ने थूण पर आक्रमण किया। मोहकम सिंह ने अपनी पराजय निकट देखकर बारूद में आग लगा दी तथा खजाना लेकर रातों रात भाग गया। जयसिंह ने थूण के किले की ईंट से ईंट बजा दी तथा उस भूमि को गधों से जोतकर हल चलवा दिया। यह घटना सन् 1722 ई की है। इस सफलता से प्रसन्न होकर जय सिंह ने वदनसिंह को ब्रजराज की पदवी दी तथा उसे जाट क्षेत्र का शासक घोषित कर दिया।[30] बदले में बदन सिंह ने जय सिंह को 83000 रुपये की पेशकश कीं। फिर भी बदन सिंह ने कभी भी अपने को नरेश घोषित नही किया तथा वह अपने को आमेर का सामंत कहा करता था। 1756 ई में बदन सिंह की मृत्यु हो गई किन्तु मृत्यु से पहले उसने सूरजमल को अपना दत्तक पुत्र घोषित कर दिया सूरजमल के कार्यकाल को दो भागों में बाँटा जा सकता है प्रथम काल लगभग 1752 से 1756 तक ''कुवरबहादुर'' के रूप में तथा दूसरा 1756 से 1765 तक भरतपुर के स्वतंत्र शासक के रुप में।

सूरजमल ने अनेक युद्धों में भाग लिया तथा कुशल प्रबंधन कर राज्य का संचालन किया दिसम्बर 1763 ईं में सूरजमल ने बिलौचियों के अन्तिमगढ़ फर्रुखनगर जीता तथा तत्पश्चात नजीब पर भी आक्रमण किया। इसी युद्ध में 25 दिसम्बर 1763 ईं को उसे वीरगति प्राप्त हुई।[31] सूरजमल के बाद जवाहर सिंह भरतपुर की गद्दी पर बैठा। 27 अगस्त 1768 ईं को जवाहर सिंह की मृत्यु हो गई फिर उसका छोटा भाई रतन सिंह राजा बना, किन्तु 11 अप्रैल 1769 ईं को रुपानन्द गुंसाई द्वारा रतनसिंह की हत्या कर दी गई। रतन सिंह के बाद जवाहर सिंह के बेटे केसरी सिंह 12 अप्रैल 1769 ईं को भरतपुर की गद्दी पर बैठा। केसरी सिंह की अल्पवयस्कता के कारण रतन सिंह का सौतेला भाई नवल सिंह वास्तविक शासक बन गया। उसी के समय में सौंख की प्रसिद्ध लड़ाई हुई तथा जाट पराजित हुए विजयी मराठों ने भरतपुर को खूब लूटा तथा धनकौर की लड़ाई में मुगलो ने जाटों को बुरी तरह पराजित किया। 1775 ईं में नवल सिंह की मृत्यु हो गई और उसके स्थान पर रणजीत सिंह नाबालिंग राजा केसरी सिंह की तरफ से राज्य का संचालन करने लगा। रणजीत सिंह के नसीब से कुछ समय बाद ही 7 अप्रैल 1777 ईं को केसरी सिंह की मृत्यु हो गई और 8अप्रैल 1777 ईं को रणजीत सिंह वास्तविक राजा बन गया।[32]

1803 ईं. में अंग्रेज अफसर जनरल लेक और रणजीत सिंह के मध्य सन्धि हो गई, लेकिन यह सन्धि अधिक समय तक नही रही। जनवरी 1805 ईं मे जनरल लेक ड़ाउन वैल की सेना ने भरतपुर का दुर्ग घेर लिया, किन्तु अंग्रेज भरतपुर को नही जीत सके।[33] 6 दिसम्बर, 1806 ईं. को रणजीत सिंह की मृत्यु हो गई उसके बाद रणजीत सिंह का पुत्र रणधीर सिंह 7 दिसम्बर 1806 ईं को भरतपुर की गद्दी पर बैठा। रणधीर सिंह के समय में अंग्रेजों और जाटों के सम्बन्ध कटु रहे। 7 अक्टुबर 1823 ईं को रणधीर सिंह की मृत्यु हो गई उसके बाद रणधीर सिंह का छोटा भाई बलदेव सिंह 8 अक्टूबर 1823 ईं को गद्दी पर बैठा। किन्तु बलदेव सिंह की मृत्यु डेढ़ वर्ष बाद ही हो गई। उसकी मृत्यु के बाद रणजीत सिंह के सबसे छोटे पुत्र लक्ष्मण सिंह के बेटे दुर्जनशाल ने 13 मार्च 1825 ईं को राजसत्ता पर अधिकार कर लिया। दुर्जनशाल के गद्दी पर बैठते ही अंग्रेज अफसर ऑक्टर लोनी ने (बलदेव सिंह को दिए गये वचन के अनुसार कि बलदेव सिंह की मृत्यु के बाद उसके पुत्र बलवन्त सिंह को राज्य दिला देगा) भरतपुर पर आक्रमण कर दिया।

इस पर दुर्जनशाल ने गवर्नर जनरल एम्हर्स्टन को ऑक्टर लोनी की मिली भगत के बारे में बताया तो गर्वनर जनरल ने ऑक्टर लोनी को आदेश दिया कि भरतपुर पर आक्रमण न करे। इस बात से दुखी होकर लोनी ने पद से इस्तीफा दे दिया और उसके स्थान पर 'मेटकॉफ' को नियुक्त किया गया। मेटकॉफ ने गर्वनर जनरल को समझाया और भरतपुर पर आक्रमण कर दिया और किले पर अधिकार कर लिया। दुर्जनशाल भरतपुर छोड़कर भाग गया। इस प्रकार भरतपुर अंग्रेजो के अधीन हो गया। मेटकॉफ ने बलदेव सिंह के पुत्र बलवंत सिंह को 19 जनवरी 1826 ईं को भरतपुर का राजा बना दिया। 1835 ईं मे बलवंत सिंह को शासन के पूरे अधिकार सौंप दिए। 1853 ईं में बलवंत सिंह की मृत्यु हो गई बलवन्त सिंह की मृत्यु के समय उसका पुत्र जसवंत सिंह छोटा बच्चा ही था। 1855 ईं में राजपूताना का रेजीडेन्ट सर हेनरी लॉरेन्स भरतपुर आया और उसने पोलिटिकल एजेण्ट मेजर मैरीसन को भरतपुर का शासनाधिकार सौंप दिया। 1857 ईं के प्रथम

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भरतपुर राज्य काफी तनाव में रहा। विद्रोहियों के डर से जुलाई 1857 ईं को मिस्टर कोल्विन भरतपुर छोडकर भाग गया। 1871 ईं में जसवंत सिंह बालिग हो गया और उसे समस्त अधिकार सौंप दिए गये। 1893 ईं में जसवंत सिंह की मृत्यु हो गई तथा उसका पुत्र राम सिंह गद्दी पर बैठा। रामसिह न तो जनता में प्रिय था और न ही अंग्रेज उसे चाहते थे। 1900 ईं में अंग्रेजो ने उसे गद्दी से उतार कर कुछ माह के शिशु सवाई किशन सिंह को गद्दी पर बिठा दिया और शासन प्रबन्ध स्टेट कौंसिल के द्वारा किया जाता रहा। 1914 ईं में प्रथम विश्व युद्ध हुआ तो किशन सिंह ने अंग्रेजो की मदद की किन्तु कुछ समय बाद ही किशन सिंह और अंग्रेजो के सम्बन्ध बिगड गये और 27 मार्च, 1929 ईं को किशन सिंह की मृत्यु हो गई। किशन सिंह के बाद उसके 11 वर्षीय पुत्र बृजेन्द्र सिंह को भरतपुर का राजा बनाया गया और उसे पढ़ने के लिए इग्लैंड भेज दिया गया। भरतपुर की शासन व्यवस्था मैकेंजी के हाथों मे रही। 1938 ईं भरतपुर प्रजामण्डल की स्थापना की गई जिसे शासको द्वारा अवैध घोषित कर दिया। दिसम्बर 1939 ईं में प्रजामण्डल और सरकार के बीच समझौता हो गया जिसके अनुसार प्रजामण्डल का नाम बदलकर ''भरतपुर राज्य प्रजा परिषद'' कर दिया तथा इसके कार्यो उद्देश्यों व कार्य क्षेत्र में भी परिवर्तन किया गया।[34]

15 अगस्त, 1947 ई. को देश अंग्रेजों की दासता से स्वतंत्र हो गया। देश को जब आजादी मिली उस समय राजा और प्रजा के सम्बन्ध घृणा के उच्चतम स्तर पर थे। देश के प्रथम गृहमंत्री लौह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल को देश के एकीकरण का श्रेय प्राप्त है। राष्ट्रीय एकीकरण के कार्य में सरदार पटेल की सेवाऐ उन्हें आधुनिक भारत के चाणक्य की श्रेणी में ला खडा करती हैं। सरदार पटेल को उनके योगदान के कारण 'भारत का विस्मार्क' कहा जाता है।

3 अक्टूबर, 1947 ई. भरतपुर के लक्ष्मण मन्दिर पर आयोजित सभा में महाराजा ने लोकप्रिय मंत्रिमण्डल बनाकर उसमें चार मंत्रियों को शामिल करने एवं 11 सदस्यों की संविधान निर्मात्री समिति के गठन की घोषणा की दिसम्बर, 1947 ई. को प्रजा परिषद के आदित्येन्द्र एवं गोपीलाल यादव को, हिन्दू–महासभा के हरिदत्त शर्मा को एवं जमींदार किसान सभा के ठाकुर देशराज को मंत्रिमण्डल में शामिल किया गया। 18 मार्च, 1948 को अलवर, भरतपुर, धौलपुर तथा करौली रियासतों को मिलाकर ''मत्स्य संघ'' का निर्माण किया गया।[35] अलवर को मत्स्य संघ की राजधानी बनाया गया। महाराजा धौलपुर उदयभानु सिंह को राजप्रमुख तथा महाराजा करौली को उपराज प्रमुख और अलवर प्रजामण्डल के प्रमुख नेता शोभाराम कुमावत को मत्स्य संघ का प्रधानमंत्री बनाया गया। मत्स्य संघ का उद्घाटन केन्द्रीय मंत्री एन. वी. गाडगिल ने किया तथा इसे मत्स्य संघ का नाम श्री के. एम. मुंशी के आग्रह पर दिया गया।[36] भारत सरकार ने शंकरदेव समिति की सिफारिश पर 15 मई, 1949 ई. को मत्स्य संघ का विलय वृहद राजस्थान में कर दिया तब से भरतपुर राजस्थान का जिला बना हुआ है।[37]

धौलपुर

धौलपुर –

राजस्थान की पूर्वी सीमा एवं चम्बल नदी तट पर बसे शहर धौलपुर का इतिहास वैदिक काल के दौरान का है। उस समय धौलपुर मत्स्य जनपद में शामिल था। मौर्य युग के समय यह मौर्य साम्राज्य में ही रहा।[38] 846 ई. में यहाँ चौहान राजवंश ने शासन किया था।[39] समय के साथ यह अलग–अलग शासकों के अधीन आता–जाता रहा। 8 वीं व 10 वीं सदी के दौरान इस पर चौहान शासकों ने राज किया। 1194 ई. में यह शहर मोहम्मद गोरी के अधीन रहा।[40] मूलरुप से यह नगर 11 वीं शताबदी में तोमर राजा धवलदेव ने बसाया था। पहले इसका नाम धवलपुर था अपभ्रंश होकर इसका नाम धौलपुर हो गया। इसके बाद यह शहर मुगलों, भरतपुर के जाट राजाओं, ग्वालियर के सिन्धियाँ राजाओं के आधिपत्य में रहा सन् 1782 ई. में यह राणा राजाओं के पास आ गया।[41] धौलपुर के शासक जाट कुल दिवाकर राणा वंश के है। कहा जाता है कि राणा जाट सूर्यवंशी है। कुछ लोग कहते है कि राणा जाट सिसोदिया वंश के हैं। वास्तव में यह बात हो सकती है कि सिसोदिया और राणा एक ही वंश–वृक्ष की दो शाखाऐं हैं। रस्म–रिवाजों के अन्तर से कुछ लोग इनमें से राजपूत हो गए और शेष जाट कहलाने लगे। 1505 ई. के आसपास राणा लोग आरम्भ में बमरौली (आगरा के पास) में बसे थे वहाँ से ग्वालियर पहुँचे तथा उनका मुस्लिम शासकों से युद्ध जारी रहा। ग्वालियर से हटकर राणाओं ने गोहद में अपना राज्य स्थापित किया और अपने सरदार सुर्जनसिंह देव को गोहद का राणा बनाया। मराठों के उत्कर्ष के समय राणा भी सचेत हुए तथा जाटों की संख्या कम होने के कारण मराठों के साथ मिलकर ही वह अपनी वीरता के खेल दिखाने लगे। राणाओं के सहयोग से मराठा भी खूब लाभ उठाते थे पेशवा बाजीराव को राणाओं ने खूब सहयोग दिया, इसलिए मराठों ने भी राणाओं को गोहद का राजा मान लिया था। जब पानीपत का तृतीय युद्ध 1761 ई. में हुआ तो गोहद के राणा भीमसिंह ने मराठों की सहायता नहीं की क्योंकि राणाओं ने मराठों के साथ जितना सहयोग किया था उसका मराठों ने कोई मूल्य नहीं दिया। यही कारण था कि जब मराठे पानीपत की लडाई में अहमदशाह अब्दाली से पराजित होने के बाद शक्ति–संचय करने में व्यस्त थे, तो राणाओं ने इसके लाभ उठाते हुए ग्वालियर पर अधिकार कर लिया। मराठे 6 वर्ष तक सैनय गतिविधियों से दूर रहे। किन्तु 1767 ई. में उन्होनें सैनय शक्ति का संचय कर राणा पर चढाई कर दी। मराठा सेना का नेतृत्व पेशवा रघुनाथ राव कर रहा था जबकि जाट सेना का नेतृत्व राणा लोकेन्द्रसिंह के हाथों में था। मराठे बडी वीरता एवं अदम्य साहस के साथ लडे, किन्तु जाट सिपाहियों ने पीछे हटना तो सीखा ही नहीं था। उन्हें तलवार पर विश्वास था। अतः जाटों के युद्ध कौशल को देखकर रघुनाथराव की समझ में आ गया कि जाट, मुगल और पठानों की भाँति मराठों से भयभीत होने वाले सैनिक नहीं है। इसलिए रघुनाथराव ने लोकेन्द्रसिंह (राणा) से सन्धि कर ली। मराठे वापस लौट गये।[42]

अंग्रेजी सरकार ने ऐसे बहादुर और मराठों के विरोधी राणा से लाभ उठाने की सोची। अनेक राजनैतिक कारणों से प्रेरित होकर अंग्रेजों ने राणा लोकेन्दसिंह से मैत्री सम्बन्ध स्थापित

करने की इच्छा प्रकट की और 2 दिसम्बर, 1778 ई. को अंग्रेजों और राणा लोकेन्द्रसिंह के मध्य फोर्ट विलियम किला कलकत्ता में सन्धि की शर्तों पर मुहर लग गई। सन्धि के अनुसार 1778 ई. में 2400 सैनिको के साथ कप्तान 'पोफम' के नेतृत्व में अंग्रेजो ने राणा की सहायता के लिए सेना भेज दी। कप्तान पोफम ने राणा की सेना की सहायता से मराठों को लाहौर के किले से बाहर कर दिया और लाहौर पर राणा लोकेन्द्रसिंह का अधिकार हो गया। 4 अगस्त, 1778 ई. को ग्वालियर पर भी विजय प्राप्त कर ली। अब गोहद के राणा का ग्वालियर पर भी अधिकार हो गया।

13 अक्टूबर, 1781 ई. को अंग्रेजी सरकार और ग्वालियर के माधौजी सिंधिया के मध्य इकरार हुआ, जिसके अनुसार गोहद के राणा लोकेन्द्रसिंह को जो सम्पत्ति दी गई थी, कि जब तक इकरार पर कायम रहेंगे, ग्वालियर और अन्य समीपवर्ती क्षेत्र उनकी सम्पति समझे जायेंगे और सिंधिया उसमें हस्तक्षेप नहीं करेगें। किंतु 1781 ई. व 1782 ई. में अंग्रेजों के विरुद्ध जो संगठन बना था, उसमें राणा ने भाग लिया इसलिए अंग्रेजों ने राणा से सन्धि तोड ली।[43]

इसका लाभ माधौजी सिंधिया ने उठाया और ग्वालियर को वापस प्राप्त करने के लिए राणा पर आक्रमण कर दिया। राणा ने सिंधिया का बडी वीरता के साथ मुकाबला किया किंतु आखिरकार राणा को ग्वालियर से हाथ धोना पडा और गोहद भी महाराणा के हाथ से निकल गया एवं राणा साहब कैद कर लिए गये। 1804 ई. में सिंधिया और अंग्रेजों के मध्य फिर मनमुटाव हो गया और माधौजी सिंधिया एवं अंग्रेजों के मध्य युद्ध हुआ। इस युद्ध के परिणामस्वरुप अंग्रेजों ने ग्वालियर पर अपना अधिकार कर लिया और गोहद राणा लोकेन्द्रसिंह के पुत्र महाराज कीरतसिंह को सौंप दिया किंतु एक वर्ष बाद ही अंग्रेजों को सिंधिया से सन्धि करनी पडी, जिसके अनुसार ग्वालियर और गोहद वापस माधौजी सिंधिया को देने पडे। अंग्रेजों ने गोहद राणा कीरतसिंह से सिंधिया को दिला दिया, किंतु उसके बदले में धौलपुर, बाडी और राजाखेडा के परगने राणा कीरतसिंह को अंग्रेजों ने दिए अब गोहद के राणा की बजाय धौलपुर के राणा कहलाने लगे। चम्बल नदी धौलपुर और ग्वालियर की सीमारेखा नियुक्त हुई।[44]

राणा कीरतसिंह ने दिसम्बर सन् 1805 में अपने पूर्वजों के द्वारा स्थापित सत्ता (गोहद) छोडकर धौलपुर प्रस्थान किया था। जागाओं (प्रशस्तिकारों) के अनुसार राणा को प्राप्त धौलपुर, बाडी तथा राजाखेडा की वार्षिक आय 9 लाख रुपये थी। कहा जाता है कि गोहद से प्रस्थान के समय बगथरा ग्राम में राणा कीरतसिंह के राजतिलक के समय उपस्थित जाट सरदारों सहित 57 व्यक्ति जो उनके उमराव तथा प्रमुख सामन्त थे वे भी राणा के साथ धौलुपर गये। उनके साथ 11 हाथी, 50 घुडसवार, 10 ऊँट, 27 तोंपे और लगभग 150 जाट सैनिक भी थे। जनवरी, 1806 ई. के प्रारंभिक दिनों में राणा कीरतसिंह धौलपुर पहुँचे। धोलपुर आगमन के पश्चात राणा ने चम्बल नदी के बीहडों में स्थित प्राचीन शेरगढ के किले को अपना निवास बनाया किंतु यह पुराना दुर्ग खण्डहर की स्थिति में था, अतः इस किले से लगभग 6 किमी. पश्चिम में उसने अपनी नई राजधानी की नींव रखी, इस स्थान को वर्तमान में पुरानी छावनी कहा जाता है। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि जाट राणा जो छत्रसिंह के समय अंग्रेजों के वफादार मित्र बन गये थे, धौलपुर प्रस्थान के

बाद अन्ततोगत्वा अंग्रेजो के पूर्ण रुपेण आश्रित हो गये। जाटों की राजनैतिक महत्वकांक्षाओं का अंत हो गया तथा उनकी गतिविधिया मात्र अपने राज्य की सीमाओं तक ही सीमित हो गई।[45]

सन् 1836 ई. में (वैशाख सुदी 5, सम्वत 1892) में राणा कीरतसिंह की धौलपुर में मृत्यु हो गई। राणा कीरत सिंह की मृत्यु के बाद पुहुपसिंह धौलपुर की राज गद्दी पर बैठा किन्तु 9 माह शासन करने के पश्चात् उसकी अकाल मृत्यु हो गई।[46] राणा पुहुप सिंह की असामयिक मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई भगवन्त सिंह धौलपुर का शासक बना। गद्दी पर बैठते समय उसकी उम्र 13 वर्ष थी। देवहंस इस समय धौलपुर रियासत का दीवान था। 1857 ईं. की क्रान्ति में धौलपुर के शासकों ने अंग्रेजों का साथ दिया तथा अनेक शरणागत अंग्रेजों की रक्षा की। उनके इस कार्य के फलस्वरुप बाद में उन्हें अग्रेजों द्वारा के.सी.एस.आई. की उपाधि प्रदान की गई। [47] 1873 ईं. में राणा भगवन्त सिंह की मृत्यु हो गई। उनके सम्बन्ध में तत्कालीन पोलिटिकल एजेण्ट ने लिखा था– ''महाराज साहब निहायत खुशमिजाज बामुरव्वत व हरदिल अजीज हैं। सरकार अंग्रेजी के निहायत वफादार और श्रीमती साम्राज्ञी मलिका महान् अधीश्वरी इंगलिस्तान व हिन्दुस्तान के पूर्णतः हितचिन्तक हैं। इस बात में वे कुछ भी संकोच नही करते। इधर से गुजरने वाले यूरोपियन अंग्रेज यात्री और सरकारी कर्मचारियों की आव–भगत बहुत अच्छी तरह से करते हैं।'' धौलपुर पहले राजनैतिक दृष्टि से आबू से सम्बन्ध रखता था, किन्तु बाद में भरतपुर के पोलिटिकल एजेण्ट से सम्बन्धित हो गया। भगवन्त सिंह की मृत्यु का समाचार पाकर भरतपुर के पोलिटिकल एजेण्ट मि. राबर्ट धौलपुर आए और राज्य का शासन–सूत्र चलाने का प्रबन्ध किया, क्योंकि महाराज निहाल सिंह अभी अवयस्क थे। सर दिनकर राव को राज्य का दीवान बनाया गया।[48]

भगवन्त सिंह के दत्तक पुत्र का नाम महाराज सिंह (कुलेन्द्र सिंह) था। (1862 ईं. में धौलपुर राणा भगवन्त सिंह को ब्रिटिश शासन द्वारा पुत्र गोद लेने का अधिकार एक सनद द्वारा प्रदान किया गया था) किंतु कुलेन्द्र सिंह की सिंहासन पर बैठने से पूर्व ही मृत्यु हो गई। अतः भगवन्त सिंह की मृत्यु के बाद उसका पौत्र (कुलेन्द्र सिंह का अल्पवयस्क पुत्र) निहाल सिंह 11 वर्ष की अल्पआयु में धौलपुर की गद्दी पर बैठा। यह अल्पवयस्क राजा ''प्यारे राजा साहब'' के नाम से प्रसिद्ध था। 19 फरवरी 1883 ईं. मे अंग्रेज सरकार द्वारा शासन प्रबन्ध के पूर्ण अधिकार निहाल सिंह को सौंप दिए गये। 1901 ईं. में पहाडी स्थान यशोब्रा (शिमला) में निहाल सिंह की मृत्यु हो गई।[49] राणा निहाल सिंह की मृत्यु बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र (अवयस्क) राम सिंह ने धौलपुर की राजसत्ता संभाली। अवयस्क राणा की देखभाल तथा राज्य प्रबन्ध के लिए अंग्रेजी सरकार ने एच. सी. क्लोगस्टोन को राज्य का सुपरिन्टेण्डेन्ट नियुक्त किया गया। [50] मार्च 1905 ईं. में राज्य का पूर्ण प्रबन्ध राणा रामसिंह के हाथों में आ गया। उसकी प्रतिभा से प्रभावित होकर सरकार ने उनको के.सी.आई.ई. की उपाधि प्रदान की। शासन प्रबन्ध को और अधि सुदृढ़ बनाने के लिए धौलपुर को 6 परगनों मे बाँटा गया था। इन परगनों के नाम : (1) मनियाँ (2) कौलारी (3) बाड़ी (4) बसेड़ी (5) राजाखेड़ा और (6) धौलपुर थे। धौलपुर–बाडी छोटी रेलवे–लाइन (नेरोगेज) का निर्माण भी 1908 ईं. में इन्ही के राज्यकाल में प्रारम्भ हुआ। राणा राम सिंह की मृत्यु 29 मार्च 1911 ईं. को हो गई।[51]

राणा रामसिह की मृत्यु के बाद महाराज उदयभानु सिंह धौलपुर की गद्दी पर बैठे। इनका जन्म 12 फरवरी 1893 ईं. को हुआ था। इनके पिता का नाम निहाल सिंह था। महाराजा उदयभानु सिंह अपने बडे भाई महाराजा राम सिंह की मृत्यु के बाद 29 मार्च 1911 ईं. को धौलपुर की गद्दी पर बैठे।[52] उदयभानु सिंह की शिक्षा–दीक्षा अंग्रेज सरकार द्वारा राजकुमारों की शिक्षा के विशेष रुप से स्थापित किए गए मेयो कॉलेज अजमेर में हुई। साथ ही उन्होनें देहरादून के भारतीय सैनिक प्रशिक्षक कॉलेज में सैनिक शिक्षा ग्रहण की। वह सन् 1911 ईं. के सम्राट जार्ज पंचम के सम्मान में आयोजित दिल्ली दरबार में भी सम्मिलित हुए। 1912 ईं. मे उन्होंने यूरोप का भ्रमण किया। 5 अक्टूबर 1913 ईं. को रियासत के शासन की बागडोर संभाली। अक्टूबर 1913 ईं. को राज्य के पूर्ण अधिकार उदयभानु सिंह को प्राप्त हुए।

इनके शासनकाल में प्रथम विश्वयुद्ध (1914–1918 ई.) तथा द्वितीय विश्वयुद्ध (1939–1945) हुए। प्रथम विश्व युद्ध में उदयभानु सिंह ने अंग्रेजों की सहायता की,[53] जिसके परिणामस्वरुप अंगेजी सरकार ने उन्हें 1 जनवरी 1918 ईं. को के. सी. एस. आई. तथा 24 अक्टूबर 1921 ईं. को लेफ्टीनेन्ट कर्नल 17 मार्च 1922 ईं. को के. सी. बी. ओ. एवं 19 जून 1931 ईं. को जे. सी. आई. की उपाधियों से विभूषित किया। महाराजा का उपाधि सहित पूरा नाम ''रईसउद्दौला सिपाहदार उल्मुल्क महाराजाधिराज श्री सवाई महाराज राणा लेफ्टीनेन्ट कर्नल सर उदयभानु सिंह लोकेन्द्र बहादुर दिलेरजंग जयदेव के. सी. एस. आई. के. सी. बी. ओ. जी. सी.आई. था।'' [54]

लंदन में आयोजित गोलमेज सम्मेलन (कान्फ्रेंस) में उन्होंने दो बार राजा महाराजाओं का प्रतिनिधित्व किया। [55] 15 अगस्त 1947 ईं. को भारत स्वतंत्र हो गया तथा सरदार बल्लभ भाई पटेल के प्रयासों से 18 मार्च 1948 ईं. अलवर, भरतपुर, धौलपुर तथा करौली को मिलाकर ''मत्स्य संघ'' का निर्माण किया गया।[56] 15 मई, 1949 ईं. को मत्स्य संघ का विलय वृहद राजस्थान में कर दिया गया।[57] इसके उपरान्त धौलपुर की भरतपुर जिले के एक उपखण्ड के रूप में पहचान बनी तथा राज्य सरकार द्वारा 15 अप्रैल 1982 ईं. को धौलपुर को राज्य का 27 वां जिला बनाया गया।[58]

संदर्भ

1. जयपुर : जिलेवार एवं सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, भरतपुर जिला, पृ. 184।
2. महाराजा अरिसिंह 3, वीरविनोद, भरतपुर का जुआफियह, पृ. 1637।
3. राजस्थान पत्रिका, भरतपुर विशेष, दि. 24.08.16।
4. महाराणा अरिसिंह 3, वीरविनोद, भरतपुर का जुआफियह, पृ. 1636।
5. जयपुर : जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, भरतपुर जिला, पृ.184।
6. महाराणा अरिसिंह 3, वीर विनोद, भरतपुर का जुआफियह, पृ. 1638।
7. लक्ष्य, रीट लेवल II सामाजिक अध्ययन, पृ. 491–92।
8. महाराणा अरिसिंह 3, वीर विनोद, भरतपुर का जुआफियह, पृ. 1639।
9. वही, पृ. 1640–41।
10. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, (1000–1707) पृ. 305।
11. सम्पादक हरिओम सिंह गुर्जर, हौंसले की उडान जिला धौलपुर (दिस.2003 से दिस. 2005), पृ.5–6।
12. दक्ष, प्रतियोगी परीक्षा वरिष्ठ अध्यापक, पृ.12।
13. हरिओम सिंह गुर्जर, हौंसले की उडान जिला धौलपुर, पृ. 7।
14. वही, पृ. 10।
15. समाचार पत्र ,दैनिक भास्कर, धौलपुर भास्कर।
16. धौलपुर पत्रिका, अध्याय 7, पृ. 47–48, हरिओम गुर्जर, हौंसले की उडान, पृ. 7। धौलपुर मीडिया, जाट की पत्रिका, पृ. 26।
17. हरिओम गुर्जर, हौंसले की उडान, जिला धौलपुर, पृ. 6।
18. समाचार पत्र, दैनिक भास्कर, 13 नवम्बर, 2014, पृ. 5।
19. लक्ष्य रीट लेवल II, पृ. संख्या 491–492।
20. जयपुर : जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, (भरतपुर जिला) पृ. 185–187।
21. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास (1000–1707) पृ. 32।
22. जयपुर : जिलेवार सांस्कृतिक व ऐतिहासिक अध्ययन (भरतपुर जिला) पृ. 188–189।
23. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, (1000–1707) पृ. 193।
24. वही पृ. 290।
25. वही पृ. 299।
26. जयपुर : जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, (भरतपुर जिला) पृ. 190।
27. वही पृ. 199।
28. डॉ. अजय अग्निहोत्री, जाटों का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृ.111।
29. सतीश चन्द्र उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास पृ. 149।
30. मनोहर सिंह राणावत, भरतपुर महाराजा जवाहरसिंह जाट, पृ. 10।
31. डॉ. अजय अग्निहोत्री, जाटों का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृ.115।
32. महाराजा अरिसिंह 3, वीरविनोद, भरतपुर की तवारीख, पृ. 1643–1645।
33. जयपुर : जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, (भरतपुर जिला) पृ. 199।
34. वही पृ. 201।
35. लक्ष्य, रीट लेवल II, सामाजिक अध्ययन, पृ. 525 (मनु प्रकाशन अजमेर)।
36. वही पृ. 536।
37. वही पृ. 539।
38. राजस्थान पत्रिका (समाचार पत्र) 15 अप्रैल, 2016।
39. दैनिक भास्कर (समाचार पत्र) 15 अप्रैल, 2016 पृ. 18।

40. राजस्थान पत्रिका (समाचार पत्र) 15 अप्रेल, 2016।
41. हरिओम गुर्जर, हौंसले की उडान जिला–धौलपुर (दिस. 2003 से 2005) पृ. 5–6।
42. ठा. देशराज, जाट इतिहास, पृ. 366–367।
43. वही पृ. 370।
44. वही पृ. 370।
45. डॉ. अजय अग्निहोत्री, जाटों का राजनैतिक सांस्कृतिक इतिहास (गोहद, धौलपुर, भरतपुर) पृ.64–65।
46. सदगुरु प्रसाद : प्रोग्रेसिव्ह धौलपुर, पृ. 6।
47. डॉ. अजय अग्निहोत्री, जाटों का राजनैतिक सांस्कृतिक इतिहास (गोहद, धौलपुर, भरतपुर) पृ.65।
48. ठा. देशराज, जाट–इतिहास, (राजस्थान के जाट राज्य), पृ. 272–273।
49. डॉ. अजय अग्निहोत्री, जाटों का राजनैतिक सांस्कृतिक इतिहास पृ. 66–67।
50. सदगुरु प्रसाद : प्रोग्रेसिव्ह धौलपुर।
51. डॉ. अजय अग्निहोत्री, जाटों का राजनैतिक सांस्कृतिक इतिहास पृ. 67।
52. संपादक – महेश कुमार भार्गव, जार की पत्रिका, धौलपुर मीडिया, पृ. 41।
53. डॉ. अजय अग्निहोत्री, जाटों का राजनैतिक सांस्कृतिक इतिहास पृ. 68।
54. ठा. देशराज, जाट–इतिहास, (राजस्थान के जाट राज्य), पृ. 376।
55. जाट की पत्रिका, धौलपुर मीडिया, पृ. 41।
56. लक्ष्य रीट लेवल II, सामाजिक विज्ञान, पृ. 536।
57. वही पृ. 539।
58. समाचार पत्र, दैनिक भास्कर, पृ.18।

शोध योजना

प्रस्तुत शोध की योजना सैद्धान्तिक सर्वेक्षणात्मक शोध पद्धति के अनुरुप है। उपलब्ध प्रकाशित एवं अप्रकाशित साक्ष्यों एवं ग्रन्थों का समग्र अध्ययन करने के उपरान्त प्रस्तावित कार्य योजना के अनुरुप अनुशीलन किया गया है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध सामाजिक विज्ञान की सर्वेक्षणात्मक शोध प्रबिधि पर आधारित है।

प्रस्तुत शोध योजना के अन्तर्गत जाट एवं मुगल : ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध (18 वीं सदी) भरतपुर–धौलपुर के विशेष संदर्भ में सर्वेक्षण किया गया है। प्रस्तुत शोध योजना इतिहास की विश्लेषणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। उपलब्ध जाट एवं मुगल सम्बन्धों का परीक्षण कर शोध योजना पूरी की गई है। उपलब्ध जाट एवं मुगल सम्बन्धों का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विश्लेषण किया गया है।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में जाट एवं मुगल सम्बन्धों पर भारतीय विश्वविद्यालयों में अनेक शोध कार्य हो चुके है। जिनमें से मैंने कालिकारंजन कानूनगो कृत 'हिस्ट्री ऑफ जाट'' उपेन्द्रनाथ शर्मा कृत ''जाटों का इतिहास'' गिरीश चन्द द्विवेदी कृत जाट और मुगल साम्राज्य महाराजा सूरजमल शोध संस्थान जनकपुरी नई दिल्ली, राजकीय पुस्तकालय भरतपुर, हिन्दी साहित्य सेवा समिति, भरतपुर, राजकीय पुस्तकालय धौलपुर, मनोहरसिंह रानावत कृत भरतपुर के जाट राजा जवाहरसिंह और उनका युग, उपेन्द्रनाथ शर्मा कृत ''जाटों का नवीन इतिहास, अजय अग्निहोत्री कृत गोहद, धौलपुर, भरतपुर के जाटों का इतिहास, भरतपुर गजट, धौलपुर गजट पत्र–पत्रिकाऐं आदि का विस्तृत अध्ययन कर प्रस्तुत शोध को पूर्ण तथा तथ्यपरक बनाने के उद्देश्य से अन्तर–विषय शोध–सिद्धान्तो को भी दृष्टिगत रखा है।

प्रस्तुत शोध कार्य के पूर्ण होने पर मध्यकालीन भारत के इतिहास में जाट एवं मुगल सम्बन्धों, जाट एवं अफगान सम्बन्धों, जाट–मराठा सम्बन्धों, जाट–राजपूत सम्बन्धों पर शोध के नवीन आयाम खुल जायेंगे यथा जाट एवं मुगलों के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सम्बन्धों को जानने में एक महत्वपूर्ण उपलब्धी होगी।

प्रस्तुत शोध अध्येयताओं के लिए उपादेय होगा। प्रस्तुत शोध कार्य विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के छात्रों के लिए उपलब्ध हो सकेगा।

शोध के उद्देश्य

➢ **सैद्धान्तिक उद्देश्य –**

(1) जाटों की उत्पत्ति एवं विकास की अवधारणा का विश्लेषण करना।

(2) मुगलों की उत्पत्ति एवं भारत आगमन का विवेचन करना।

(3) जाट एवं मुगल सम्बन्धों का विवेचन करना।

(4) जाट एवं मुगल : ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्धों का भरतपुर–धौलपुर के संदर्भ में विशेष विश्लेषण करना।

(5) भारत के अन्य हिस्सों में स्थित जाट–जाति का भरतपुर–धौलपुर के जाटों से सम्बन्ध स्थापित करना।

(6) जाटों का मुगलों के अलावा तत्कालीन राजनीतिक शक्तियों अफगानों, मराठों और राजपूतों से सम्बन्धों की विवेचना करना।

➢ **भावात्मक उद्देश्य –**

(1) अन्य अनुसंधान कर्त्ताओं के विरोधी विचारों, निष्कर्षो एवं दृष्टिकोणों के प्रति सहनशीलता का विकास करना।

(2) अन्य अनुसंधान कर्त्ताओं के शोध परिणामों एवं उपागमों की प्रशंसा करना।

(3) अनुसंधानकर्त्ता में भावात्मक स्थिरता एवं प्रेरणाओं एवं उपागमों को प्रोन्नत करना।

(4) अन्य अनुसंधानकर्ताओं के प्रति सम्मान की भावना का विकास करना।

➢ **ज्ञानात्मक उद्देश्य –**

(1) अनुसंधानकर्ता में आलोचनात्मक एवं मूल्यांकन सम्बन्धी योग्यताओं का विकास करना।

(2) अनुसंधान कर्ता में संश्लेषणात्मक एवं मूल्यांकन सम्बन्धी योग्यताओं का विकास करना।

(3) अनुसंधानकर्ता में निरीक्षण तथा अनुभवों के प्रस्तुतीकरण की क्षमताओं का विकास करना।

(4) उच्च चिन्तन का निर्माण करना ।

(5) नवीन तथ्यों की खोज कर वर्तमान घटनाओं को समझने का प्रयास करना।

प्रथम अध्याय

मुगल साम्राज्य का केन्द्रीय ढाँचा अपने विरोधावास के कारण 18वीं शताब्दी के आरम्भ से टूटने लगा था। इस की सैनिक तथा सांस्कृतिक उपलब्धियां जो भी रही हों मुगल सम्राट देश की विभिन्न जातियों में एक राष्ट्र की भावना जगाने अथवा सामूहिक प्राण उत्पन्न करने में पूर्णतया असफल रहे थे। विद्रोह तथा द्रोह के उदाहरण तो मुगल साम्राज्य के उत्कृष्टतम काल से ही विद्यमान थे परन्तु 18 वीं शताब्दी में उन्होने एक भयानक रूप धारण कर लिया। दुर्बल मुगल राजकुमार जल्दी–जल्दी सिंहासन पर बैठे अथवा बिठलाए गये और परिस्थिति बिगड़ती ही चली गई। अब नियम था 'दुर्बलतम की अतिजीविता'। सम्राट अपने शक्तिशाली षडयंत्रकारी तथा स्वार्थी अभिजात वर्ग के हाथों की कठपुतलियां बन गये थे। शक्ति के भूखे, बंगाल ,अवध तथा दक्कन के सूबेदार,लगभग स्वतंत्र बन चुके थे। स्वार्थ तथा राज्य प्रसार की होड में लगे वे मुगल सम्राटों की भी अनदेखी कर के सम्राट के शत्रुओं अथवा यूरोपीय कम्पनियों से जोड़–तोड़ में लगे रहते थे। 1739 ई. में हुए नादिरशाह के आक्रमण के उपरान्त मुगल साम्राज्य पूर्णरूप से ''धराशायी तथा लहूलुहान'' पडा था और कोई भी शक्ति उसे समाप्त कर भारत की स्वामी बन सकती थी।

उत्तरी भारत में साम्राज्य के लिए तीन मुख्य दावेदारों,मुगलों,अफगानों तथा मराठों के बीच त्रिकोणीय संघर्ष हुआ। अहमदशाह अब्दाली के नेतृत्व में अफगानों ने तथा पेशवाओं के अधीन मराठों ने मुगलों की शक्ति को नीचा दिखाया और उनके साम्राज्य की सीमाएं घटा दी। फिर अब्दाली ने मराठों को पानीपत की तीसरी लडाई (1761 ई.) में परास्त कर दिया और ऐसा लगता था कि अब वह भारत में निष्कण्टक राज्य स्थापित करने में सफल हो जाएगा, परन्तु अफगानिस्तान की आन्तरिक परिस्थितियों के कारण उसे लौटना पडा। इस दुःखान्त नाटक में रुहेला सरदारों, अवध के नबाव तथा राजपूत राजाओं ने एक गौण भूमिका निभाई और परिस्थिति और भी सम्भ्रान्त हो गई। यद्यपि ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने 18 वीं शताब्दी में साम्राज्य के लिए कोई विशेष युद्ध नही लडा, परन्तु देशी शक्तियों ने आपसी युद्धों के कारण एक –दूसरे की शक्ति को हानि पहुँचाई, जिससे कम्पनी की महत्वाकांक्षाओं को बल मिला। इस समय भारत में कोई शक्तिशाली शासक नही बचा था। ठीक साम्राज्यवादी ढंग से लिखते हुए पी.स्पीयर ने इन परिस्थितियों का इस प्रकार वर्णन किया हैः ''इस प्रकार अंग्रेज हिन्दुस्तान की लावारिस जागीर के उत्तराधिकारी सिद्ध हुए''।

दक्षिण भारत में भी निजाम, मैसूर तथा मराठों के बीच एक त्रिकोणीय संघर्ष हुआ इसी प्रकार एक अन्य त्रिकोणीय संघर्ष हुआ अंग्रेजी, फ्रांसीसी तथा डच कम्पनियों के बीच, जिससे स्थिति और भी उलझ गई। यह छः शक्तियां आपसी जोड–तोड षडयंत्रों तथा साजिशों में लग गईं। षडयंत्र तथा प्रतिषडयंत्र रचे गए जो आज भी समस्त राजनीति विश्लेषकों को विचलित कर देते है। वास्तव में यूरोपीय कम्पनीयों ने इस राजनैतिक अव्यवस्था में और भी उलझनें पैदा कर दीं क्योंकि ये कम्पनियां अपने राजनीतिक समझौतों तथा गठबन्धनों को यूरोपीय सरकारों के कहने पर तोडती–जोडती रहती थी। डचों ने पुर्तगालियों को भारत, श्रीलंका तथा इन्डोनेशिया से खदेड दिया

परन्तु उनको स्वयं अंगेजों तथा फ्रांसीसियों के साथ निपटना पडा। जब वे भारत तथा इण्डोनेशिया दोनों जगह अपने हितों की रक्षा नही कर सके तो उन्होने भारत छोडकर इण्डोनेशिया पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया जहाँ वे 1948 ईं. तक जमे रहे। शेष बची दो यूरोपीय शक्तियां अंग्रेज तथा फ्रांसीसी ने कर्नाटक में तीन युद्ध लडे जिसमें अंग्रेज विजयी रहे विजयी अंग्रेजो ने दक्षिण की तीनों शक्तियों–निजाम, मैसूर तथा मराठों को भी परास्त कर दिया तथा 19 वीं शताब्दी के दूसरे दशक तक उत्तरी–पश्चिमी भारत (पंजाब) तथा सिंध को छोडकर शेष समस्त भारत उनके सीधे प्रशासन अथवा संरक्षित राज्यों का भाग बन चुका था।[1]

जिस मुगल साम्राज्य ने समकालीन संसार को अपने विस्तृत प्रदेश, विशाल सेना तथा सांस्कृतिक उपलब्धियों से चकाचौंध कर दिया था, 18 वीं शताब्दी के आरम्भ में वह अवनति की ओर जा रहा था। औरंगजेब का राज्यकाल मुगलों का सांध्याकाल था। साम्राज्य को अनेक व्याधियों ने घेर रखा था और यह रोग धीरे–धीरे समस्त देश में फैल रहा था। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात आने वाले 52 वर्षों में 8 सम्राट दिल्ली के सिंहासन पर बैठे। भारत के अलग–अलग क्षेत्रों में देशी और विदेशी शक्तियों ने अनेक छोटे बडे राज्य स्थापित किए। बंगाल,अवध और दक्कन आदि प्रदेश मुगल नियंत्रण से बाहर हो गए। उत्तर–पश्चिम की ओर से विदेशी आक्रमण होने लगे तथा विदेशी व्यापारी कम्पनियों ने भारत की राजनीति में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया। परन्तु इतनी कठिनाईयों के होते हुए भी मुगल साम्राज्य का दबदबा इतना था कि पतन की गति बहुत धीमी रही। 1737 ईं. में बाजीराव प्रथम और 1739 ईं. नादिरशाह के दिल्ली पर आक्रमण ने मुगलों के खोखले साम्राज्य की पोल खोल दी और 1740 ईं. तक यह पतन स्पष्ट हो गया।

मार्च 1707 ईं. में औरंगजेब की मृत्यु, उसके पुत्रों मे उत्तराधिकार के युद्ध का बिगुल था। मुहम्मद मुअज्जम (शाह आलम), मुहम्मद आजम और कामबख्श में से सबसे बडे पुत्र मुहम्मद मुअज्जम की विजय हुई। उसने जाजऊ के स्थान पर 18 जून, 1707 ईं. को आजम को और हैदराबाद के पास 13 जनवरी, 1709 ईं. को कामबख्श को पराजित कर मार डाला और स्वयं बहादुरशाह प्रथम की उपाधि धारण कर सिंहासन पर बैठ गया।

उस समय उसकी आयु 63 वर्ष की थी और वह एक सक्रिय शासक के रुप में कार्य नही कर सकता था। इस मुगल सम्राट ने शांति प्रिय नीति अपनाई यद्यपि यह कहना कठिन है कि यह नीति उसकी शिथिलता की घोतक थी अथवा उसकी सोच–समझ का परिणाम था। उसने शिवाजी के पौत्र शाहू को जो 1689 ई. से मुगलों के पास कैद था, मुक्त कर दिया और महाराष्ट्र जाने की अनुमति दे दी। राजपूत राजाओं ने भी शांति स्थापित कर ली और उन्हें उनके प्रदेशों में पुनः स्थापित कर दिया। परंतु बहादुरशाह को सिक्खों के विरुद्ध कार्यवाही करनी पडी उनके नेता बन्दा बहादुर ने पंजाब में मुसलमानों के विरुद्ध एक व्यापक अभियान आरंभ कर दिया था। बन्दा बहादुर लोहागढ के स्थान पर हार गया। मुगलों ने सरहिन्द को 1711 ई. में पुनः जीत लिया परंतु यह सब होते हुए भी बहादुर शाह सिक्खों को मित्र नहीं बना सका और न ही कुचल सका। 27 फरवरी, 1712 ई. को बहदुरशाह की मृत्यु हो गई प्रसिद्ध लेखक सर सिडनी ओवन के अनुसार, ''यह अंतिम मुगल सम्राट था जिसके विषय में कुछ अच्छे शब्द कहे जा सकते हैं। इसके पश्चात मुगल साम्राज्य

का तीव्रगामी और पूर्ण पतन, मुगल साम्राटो की राजनीतिक तुच्छता और शक्ति हीनता का घोतक था।''

1712 ई. में बहादुरशाह की मृत्यु की पश्चात उसके चारों पुत्रों, जहाँदरशाह, अजीम–उस–शान, रफी–उस–शान और जहानशाह में उत्तराधिकार को लेकर युद्ध आरंम्भ हो गया। इस उत्तराधिकार के प्रश्न को हल करने में उसके पुत्रों ने इतनी निर्लज्ज शीघ्रता की कि बहादुशाह का शव एक मास तक दफन भी नही किया जा सका। दरवार में ईरानी दल के नेता जुलफिकार खाँ की सहायता से जहाँदरशाह (मार्च 1712 से फरवरी 1713) सफल हुआ। कृतज्ञ सम्राट ने जुलफिकार खाँ को अपना प्रधानमंत्री नियुक्त कर दिया। 10 माह के अन्दर ही जहाँदरशाह को अजीब–उस–शान के पुत्र फर्रुखसियर ने सैयद बन्धुओं की सहायता से चुनौती दी और 11 फरवरी, 1713 ई. को उसे पराजित कर मार डाला। कृतज्ञ फर्रुखसियर (1713–1719) में अब्दुल्ला खाँ को वजीर और हुसेन अली को मीर बख्शी नियुक्त कर दिया। परंतु शीघ्र ही सम्राट ने सैयद बन्धुओं के जुए को उतार फेखने की सोची और इस हेतु षडयंत्र रचा। परन्तु सैयद बंधु सम्राट से अधिक चालाक थे और उन्होने मराठा सैनिकों की सहायता से 28 अप्रैल, 1719 ई. को सम्राट का गला घोट दिया। फर्रुखसियर के राज्यकाल में मुगलों की सिक्खों पर विजय–दुंदुभी बजती देखी। गुरदासपुर के स्थान पर उनका नेता बन्दा बहादुर पकड लिया गया और दिल्ली में 19 जुन, 1716 ई. को उसका वध कर दिया गया। 1717 ई. में सम्राट ने ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी को बहुत सी व्यापार सम्बन्धी रियायतें दे दी। इन से बिना सीमा शुल्क के बंगाल के रास्ते व्यापार भी किया जा सकता था।

फर्रुखसियर की मृत्यु के पश्चात सैयद बन्धुओं ने शीघ्रातिशीघ्र एक के बाद एक सम्राट दिल्ली के सिंहासन पर बैठाए। इस प्रकार रफी–उद्–दरजात (28फरवरी से 4 जून, 1719), रफी–उद–दौला (6 जून से 17 सितम्बर, 1719) और फिर मुहम्मदशाह (सितम्बर 1719 से अप्रैल 1748) सम्राट रहे। घटना–चक्र ने पूरा चक्कर काट डाला और तूरानी अमींरो के नेतृत्व में 9 अक्टूबर 1720 ई. को हुसैन अली का वध कर दिया गया और 5 नवम्बर, 1720 ई. को अब्दुल्ला खाँ बन्दी बना लिया गया। इसी मुहम्मदशाह के राज्यकाल में निजाम–उल–मुल्क ने दक्कन में एक स्वतंत्र राज्य बना लिया। सआदतखां ने अवध में मुरशिदकुली खां ने बंगाल, बिहार और उडीसा प्रान्तों में लगभग स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिए। मार्च, 1737 ई. में बाजीराब प्रथम केवल 500 घुडसवार लेकर दिल्ली पर चढ आया। सम्राट डर कर भागने को तैयार था। 1739 ई. नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण किया और साम्राज्य को औंधा और जख्मी बना कर छोड गया।

नए मुगल सम्राट अहमदशाह (1748–54) और आलमगीर द्वितीय (1754–1759) इतने निर्बल थे कि वे इस पतन को रोक नहीं सके। उत्तर–पश्चिम की ओर से अहमदशाह अब्दाली ने 1748, 1749, 1752, 1756–1757 और 1759 ई. में आक्रमण किए और वह अधिकाधिक उदण्ड होता चला गया। शीघ्र ही पंजाब पठानों ने और मालवा और बुन्देलखण्ड मराठों ने छीन लिए तथा अन्य स्थानों पर भी आक्रमण किए। शाहआलम द्वितीय (1759–1806) और उसके उत्तराधिकारी केवल नाममात्र के ही सम्राट थे और अपने अमीरों, मराठों अथवा अंग्रेजो के हाथ की कठपुतलियाँ ही थे। 1803 ई.

में अंग्रेजो ने दिल्ली जीत ली। अंग्रेजों ने मुगल साम्राज्य का ढोंग 1858 ई. तक बनाए रखा जब अंतिम मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर को रंगून में निर्वासित कर दिया गया।[2]

उत्तरकालीन मुगल राजनीति मे एक बहुत बुरी बात जो उभर कर सामने आई, वह थी एक ऐसे शक्तिशाली सरदारों का उत्थान था जो अब 'सम्राट निर्माता' (King-makers) की भूमिका निभाने लगे थे। उत्तराधिकार के युद्ध तो मुगलकाल के अच्छे दिनों में भी होते थे जिनमें शक्तिशाली मनसबदार मुख्य लडने वालों का साथ देते थे परन्तु पश्चातवर्ती मुगलकाल में ये महत्वाकांक्षी अमीर और सरदार की मुख्य भूमिका निभाने लगे थे और मुगल राजकुमार तो केवल शतरंज के मोहरे मात्र रह गये थे। सरदार लोग अपने स्वार्थ के लिए राजकुमारों को सिंहासन पर बैठा देते थे। अथवा हटा देते थे। जहाँदर शाह अपनी शक्ति से नही अपितु ईरानी दल के नेता जुलफिकार खाँ के उत्तम नेतृत्व के कारण सम्राट बना। इसी प्रकार फर्रुखसियर को सैयद बन्धुओं ने ही 1713 ईं. में सिंहासन पर बैठाया और फिर जब 1719 ईं. में वह उनके लिए बेकार हो गया तो सिंहासन से उतार दिया।

उसी प्रकार तीन कठपुतली सम्राट रफी–उद–दरजात, रफी–उद–दौला और मुहम्मदशाह सैयद बन्धुओं ने सिंहासन पर बैठाए। 1720 ईं. में सैयद बन्धुओं का पतन इसलिए नही हुआ कि वे सम्राट का विश्वास खो बैठे थे अपितु इसलिए कि निजाम–उल–मुल्क और मुहम्मद अमीन खाँ के नेतृत्व में तूरानी दल अधिक बलशाली हो गया था। ये दल आधुनिक दलों की भांति भिन्न–भिन्न नीतियों पर आधारित नही थे अपितु केवल स्वार्थ भाव से ही प्रेरित थे और प्रायः मुगल सम्राटों और देश के हितों के विपरीत ही कार्य करते थे।

प्रसिद्ध लेखक विलियम अरविन के अनुसार, मुगल दरबार में बहुत से दल थे। इनमें चार प्रमुख थे, तूरानी,ईरानी,अफगानी और हिन्दुस्तानी। इनमें पहले तीन मध्य एशियाई, ईरानी और अफगान सैनिकों के वंशज थे जिन्होने भारत को जीता था और यहाँ राज्य स्थापित करने में सहायता दी थी। उनकी संख्या औरंगजेब के अन्तिम 25 वर्षों में बहुत बढ़ गई थी, विशेषकर जब वह दक्षिण में युद्धों में व्यस्त था। इनके वंशज भारत के अलग–अलग भागों में सैनिक और असैनिक पदों पर नियुक्त थे।इनमें ऑक्सस नदी के पार वाले तूरानी और फारस और खुरासान के अफगान प्रायः सुन्नी थे और ईरानी अधिकतर शिया थे इस मुगल अथवा विदेशी दल के विपरीत एक भारतीय दल था जिसमें वे लोग थे जिनके पूर्वज बहुत पीढीयों पहले भारत में बस गये थे अथवा हिन्दुओं से मुसलमान बन गये थे। इस दल को राजपूत,जाट तथा हिन्दू जमींदारों को समर्थन भी प्राप्त था। छोटे–छोटे पदों पर नियुक्त हिन्दू भी इसी दल का समर्थन करते थे। परन्तु यह कहना ठीक नही होगा कि ये दल केवल रक्त,जाति और धर्म पर ही आधारित थे। डॉ. सतीश चन्द्र ने ठीक ही कहा है कि '' अमीरों द्वारा धर्म और जाति की दुहाई केवल अपने निजी प्रयोजन के लिए ही दी जाती थी, वास्तविक दल प्रायः धर्म और जाति के बन्धनों से ऊपर होते थे।[3] 1713 ईं. से 1720 ईं. तक मुगलदरबार में सैयद बन्धु अब्दुल्ला खां और हुसैन अली सबसे शक्तिशाली थे। ये लोग हिन्दुस्तानी दल के नेता थे और प्रायः मुगल विरोधी और अर्द्ध–राष्ट्रीय हितों का नेतृत्व करते थे।

सैयद जो हजरत मुहम्मद के वंशज थे, बहुत शताब्दियों से भारत में बसे हुए थे, विशेषकर दो आब और मुजफ्फरनगर के प्रदेशों में। ये लोग अकबर की सेना में भर्ती हो गए थे और उनके अभियानों में भाग ले चुके थे। बाढ़ा (संभवतः 12 गांव जो इनके थे, उससे बिगड़ कर बना शब्द) के अब्दुल्ला खां और हुसैन अली अबुलफरह के वंशज थे। यह व्यक्ति मैसोपोटामिया से आया था और कुछ शताब्दियों पूर्व पटियाला के समीप के प्रदेश में बस गया था। इनके पिता सैयद मियां ने बीजापुर और अजमेर में सूबेदार के रुप में कार्य किया था और फिर राजकुमार मुअज्जम के साथ मिल गया था। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात हुए युद्धों में दोंनो बन्धुओं ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। सम्राट ने इन सेवाओं के लिए उन्हें उचित रुप से पुरस्कृत किया और उन्हें 4000 का मनसबदार नियुक्त किया। बडे भाई हसन अली को अब्दुल्ला खां की उपाधि भी दी। 1708 ई. में राजकुमार अजीम–उस–शान ने हुसैन अली को बिहार में एक प्रमुख पद पर नियुक्त किया और 1711 ई. में अब्दुल्ला खां को इलाहाबाद सूबे में अपना नायब नियुक्त कर दिया। राजुकमार अजीम–उस–शान के इन अनुग्रहों के कारण ही 1713 ई. में इन बन्धुओं ने अजीम–उस–शान के पुत्र फर्रुखसियर की ओर से युद्ध में भाग लिया और जहाँदरशाह को हराकर मार दिया और दिल्ली का मुकुट फर्रुखसियर को पहना दिया। अनुगृहीत सम्राट फर्रुखसियर ने सैयद अब्दुल्ला खां को अपना बजीर अथवा प्रधानमंत्री नियुक्त कर दिया और नवाब कुत्व–उल–मुल्क, यमीन–उद–दौला, सैयद अब्दुल्ला खां बहादुर, जफरजंग, सिपहसालार, यार–ए–वफादार की उपाधियों से विभूषित किया। छोटे भाई हुसैन अली खां को मीरबख्शी, जो वास्तव में मुख्य सेनापति ही था, नियुक्त कर दिया तथा उमादुलमुल्क, अमीरुल उमरा बहादुर फीरोज जंग सिपहसालार की उपाधियों से विभूषित किया।[4]

प्रसिद्ध लेखक खाफी खां का मत है कि फर्रुखसियर की यह प्रथम भूल थी कि उसने अब्दुल्ला खां को अपना बजीर बना लिया और फिर उससे वह छुटकारा नहीं पा सका परन्तु सम्भवतः फर्रुखसियर के पास स्पष्ट रुप से सैयद बन्धुओं से झगडा किए बिना और कोई रास्ता भी नहीं था। सैयद बन्धुओं को इतने महत्वपूर्ण पद देने से तूरानी और ईरानी सरदारों की ईर्ष्या भडक उठी और उन्होंने इन दोनों बन्धुओं को अपमानित करने तथा हराने के लिए कोई कसर नहीं छोडी।

इन सैयद बन्धु विरोधी सरदारों में सब से सक्रिय मीर जुमला था जो सम्राट का कृपापात्र था। उसे तूरानी सरदारों की सहानुभूति और समर्थन भी प्राप्त था। निःशक्त सम्राट जिसमें चरित्र बल तथा स्वतन्त्र विचार का सामर्थ्य नहीं था, इन शक्तिशाली दलों के हाथ की कठपुतली बन गया। परिणाम घातक सिद्ध हुए। सम्राट ने मीर जुमला को अपनी ओर से राजाज्ञाओं पर हस्ताक्षर करने की अनुमति दे दी। सम्राट ने कहा था ''मीर जुमला के शब्द और हस्ताक्षर मेरे शब्द और हस्ताक्षर हैं। दूसरी ओर अब्दुल्ला खां का यह कहना था और यह ठीक भी था कि कोई मनसब देना, पदोन्नति अथवा नियुक्ति प्रधानमंत्री के परामर्श के बिना नहीं हो सकती। खाकी खां का मत है कि सैयद बन्धु ठीक थे और सम्राट का अपनी शक्ति को मीर जुमला को हस्तान्तरण करना वजारत के पद के नियमों के विरुद्ध था। सम्राट तथा सैयद बन्धुओं के मतभेद तब सामने आए जब सम्राट ने हुसैन अली को दक्कन का सूबेदार नियुक्त कर दिया। हुसैन अली अपने भाई को दरबार

के षडयंत्रों के मध्य अकेला नहीं छोडना चाहता था और उसका नायब उसकी ओर से दक्कन के कार्य करेगा। मीर जुमला के कहने पर सम्राट ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और हुसैन अली को ही दककन जाने की आज्ञा दी।

ये मतभेद इस सीमा तक बढे कि सैयद बन्धुओं ने दरबार में आना बन्द कर दिया और अपनी रक्षा के पूरे प्रबन्ध कर लिए। राजमाता के बीच–बचाव से बाहरी शिष्टाचार पुनः स्थापित हो गया और निशचित हुआ कि हुसैन अली ही स्वयं दक्कन की सूबेदारी सम्भालने जाएगा और मीर जुमला भी इस प्रकार पटना भेज दिया जाएगा।[5] परंतु सम्राट इस ऊपरी बीच–बचाव से सन्तुष्ट नहीं था। उसने गुजरात के सूबेदार दाऊद खां को कई सन्देश भेजे कि वह हुसैन अली को मार डाले और उसके बदले उसे बहुत से पुरस्कार देने का वचन दिया। हुसैन अली को इस षडयंन्त्र का भेद खुल गया और उसने दाऊद खां से युद्ध कर उसे मार डाला।

फर्रुखसियर ने फिर हुसैनअली के विरुद्ध षडयन्त्र रचा और शाहू और कर्नाटक के जागीरदारों को गुप्त संदेश भेजा कि वे हुसैन अली का आदेश न मानें। हुसैन अली फिर सम्राट से अधिक चालाक सिद्ध हुआ। उसने दक्कन में अपनी कार्यविधि ही बदल दी और दक्कन में मुगल शासन स्थापित करने के स्थान पर मराठों से मित्रता कर ली और शाहू से 1719 ई. में एक सन्धि कर ली जिसके अनुसार मराठों को बहुत सी रियायतें दे दी गई जिसके बदले मराठों ने दिल्ली सत्ता के लिए हो रहे संघर्ष में उसे सैनिक सहायता देने का वचन दिया। इसी बीच सम्राट एक निम्नकुल के कश्मीरी मुहम्मद मुराद इत्काद खां के प्रभाव में आया। यह तो सर्वविदित समाचार था कि सम्राट अब्दुल्ला खां के स्थान पर इत्काद खां को वजीर बनाना चाहते है। फर्रुखसियर ने ईद–उल–फितर के अवसर पर लगभग 70,000 सैनिक एकत्रित कर लिए। अब्दुल्ला खां ने इस धोखाधडी से डरकर एक विशाल सेना एकत्रित कर ली। चर्चा थी कि अब्दुल्ला खां को बन्दी बना लिया जाएगा। सम्राट और बजीर की सेनाओं की टक्कर की सम्भावना कोई बडी बात नहीं थी। हुसैन अली को अपने भाई और सम्राट के सम्बन्धों का पता चला और वह मराठा सैनिक दिल्ली पर चढ आया। सम्राट और सैयद बन्धुओं के बीच टक्कर निशचित थी। उधर अब्दुल्ला खां ने भी पूर्ण व्यवस्था कर ली थी। उसने मुख्य सरदारों को लालच देकर अपने साथ मिला लिया था जिनमें सरबुलन्द खां, निजाम–उल–मुल्क और अजीत सिंह जैसे प्रमुख व्यक्ति भी शामिल थे। जब समय अनुकूल हो गया तो सैयद बन्धुओं ने सम्राट के सामने अपनी मांगे रखी। सम्राट ने सभी मांगे स्वीकार कर लीं जिनमें सम्राट की समस्त अभिभावकता उनके हाथों में सौपना, सैयद बन्धुओं द्वारा नियुक्त व्यक्तियों के हाथों में भी सभी दुर्ग दे देना, इत्काद खां को पदच्युत करना इत्यादि शामिल थे। परन्तु आपस में इतना अविश्वास था कि सैयद बन्धुओं ने 28 अप्रैल, 1719 ई. को सम्राट का वध कर डाला।

फर्रुखसियर के वध के पश्चात सैयद खां का प्रभुत्व पूर्णरुपेण स्थापित हो गया। उन्होंने रफी–उद–दरजात को सम्राट बना दिया। जब उसकी क्षय रोग से मत्यु हो गई तो उन्होंने रफी–उद–दौला को सम्राट बना दिया। उसकी भी पेचिश से मृत्यु हो गई तो सम्राट निर्माताओं ने जहानशाह के 18 वर्षीय पुत्र मुहम्मदशाह को सिंहासन पर बैठा दिया। अब सैयद बन्धुओं का प्रभुत्व

इतना था कि उनके कार्यकर्ता महलों में परिचारक थे, उन्हीं के सैनिक रक्षक थे और इस नवयुवक के विषय में इस प्रकार लिखता है, ''सम्राट के चारों ओर भृत्य तथा पदाधिकारी पहले की नाईं अब्दुल्ला के ही व्यक्ति थे। अब्दुल्ला के अनुचरों ने एक प्रकार से सम्राट को बन्दी सा बना रखा था। यदि वह बाहर जाता अथवा शिकार पर जाता तो यही लोग उसे घेरे रहते और उसे लेकर जाते अथवा वापिस लाते।'' राजमाता ने एक स्थान पर लिखा है कि सम्राट को केवल नमाज पढने के लिए जाने की अनुमति थी अन्यथा वह सर्वप्रकारेण सैयद बन्धुओं के अधीन था। सैयद बन्धु हिन्दूओं के समर्थन पर भी निर्भर थे। एक रत्नचन्द को जो एक साधारण गल्ले का व्यापारी था, राजा की उपाधि से विभूषित किया गया और उसे शासन तथा राज्य के बहुत से अधिकार दे दिए गए थे। लेखक खाफी खां कहता है कि रत्नचन्द की सत्ता दीवानी, माल तथा कानूनी सभी मामलों में थी, यहाँ तक कि काजियों तथा अन्य पदाधिकारयों की नियुक्ति में भी उसी का हाथ होता था। दूसरे पदाधिकारियों की अनदेखी होने लगी और उसी की आज्ञा पालन होने लगा। दो राजपूत महाराजे, आमेर के जयसिंह तथा जोधपुर के अजीतसिंह भी सैयद बन्धुओं के अंतरंग थे। मराठे भी उनके समर्थक थे, फर्रुखसियर की मृत्यु के पश्चात जजिया पुनः हटा दिया गया और अहमदनगर के सूबेदार अजीतसिंह ने वहाँ गोहत्या बंद कर दी थी।

सैयद बन्धुओं ने ईरानी और तूरानी सरदारों को लगभग शून्य के बराबर कर दिया था। मुगल रक्त का गौरव और साम्राज्य की भावना एकीकरण की एक बहुत बडी भावना थी। इस प्रति–क्रान्ति का नेता था चिनकिलिच खां जिसे जनसाधारण निजामुलमुल्क भी कहते थे। सैयद बन्धुओं ने उसे मालवा का सूबेदार बना कर दिल्ली से बाहर भेज दिया था। निजामुलमुल्क ने अनुभव किया कि बल–प्रयोग से राज्य–परिवर्तन सम्भव नहीं और वह दक्कन की ओर चल पडा। उसने असीरगढ और बुरहारनपुर के दुर्ग जीत लिए और आलम खां को, हुसैन अली का दत्तक पुत्र और दक्कन का नायब सूबेदार था, मार डाला। उधर दिल्ली में एतमादुद्दौला, सआदतअली खां और हैदर खां ने एक षडयंत्र रचा। राजमाता भी जो अब्दुल्ला खां की आश्रित थी, इस षडयंत्र में सम्मिलित थी। हैदर खां ने हुसैनअली को मारने का बीडा उठाया। जब हुसैन अली दरबार से वापिस लौट रहा था तो हैदर खां ने छुरे से उसकी हत्या कर दी। अर्विन इस पर यों टिप्पणी करता है, ''भारतीय करबला में दूसरे यदीज ने दूसरे हुसैन को शहीद कर दिया।'' (8 अक्टूबर, 1720 ई.)

अपने भाई का बदला लेने के लिए अब्दुल्ला खां ने एक विशाल सेना एकत्रित की ओर मुहम्मदशाह के स्थान पर एक कठपुतली को सिंहासन पर बैठाने का प्रयत्न किया परंतु अब्दुल्ला खां 13 नवम्बर, 1720 ई. को हसनपुर के स्थान पर हार गया और बन्दी बना लिया गया। 2 वर्ष पश्चात 11 अक्टूबर, 1772 ई. को उसे जहर दे दिया गया। कम से कम सैयद बन्धुओं के साथ फर्रुखसियर ने पाप किया। सम्राट के निरन्तर षडयंत्रों के कारण वे लोग निराशा की चरम सीमा तक पहुंच गए थे और उनकी सुरक्षा सम्राट को समाप्त करने में ही थी। सैयद बन्धुओं ने अपने प्रतिद्वन्द्वियों को निरस्त कर दिया और इसके पश्चात होने वाले सम्राटों को उन्होंने लगभग शून्य के बराबर कर दिया। सैयद बन्धु हिन्दुस्तानी मुसलमान थे और वे इसमें गौरव अनुभव करते थे। वे

तूरानीदल की श्रेष्ठता को स्वीकार करने को उद्यत नहीं थे और न ही अपने आप में हीनत्व की भावना का अनुभव करते थे। यह कहना तो बहुत कठिन है कि वे एक ऐसा शासन चाहते थे जो मुगल न हो अथवा विदेशी शासकों के स्थान पर एक राष्ट्रीय शासन चाहते थे। सैयद बन्धु धार्मिक क्षेत्र में सहिष्णुता की नीति का अनुसरण करते थे जो कि अकबर के दिनों का स्मरण करा देती थी। इससे प्रभावित होकर उन्होंने 1713 ई. में जजिया हटा दिया और जब वह पुनः लगाया तो पुनः हटा लिया गया उन्होने हिन्दुओ का विश्वास जीता और उन्हें ऊँचे पद प्रदान किये। रत्नचन्द्र की दीवान के रुप में नियुक्ति इस बात की घोतक थी। उन्होंने राजपूतों को भी अपनी ओर मिला लिया और महाराजा अजीतसिंह को विद्रोही के स्थान पर मित्र बना लिया। यहाँ तक कि अजीत सिंह ने अपनी बेटी का विवाह फर्रुखसियर से कर दिया। सैयद बन्धुओं ने जाटों से भी सहानुभूति दिखलाई और उन्ही के हस्तक्षेप से जाटों ने थूरी दुर्ग का घेरा उठा लिया और चूडामन अप्रैल, 1718 ईं. में दिल्ली आया । सबसे प्रमुख बात यह थी कि मराठों ने भी सैयद बन्धुओं का साथ दिया और छत्रपति मुगल सम्राट का नायब बन गया। निश्चय ही भारत का इतिहास सर्वथा भिन्न होता यदि सैयद बन्धुओं की प्रवुद्ध धार्मिक नीति का अनुसरण उनके उत्तराधिकारी भी करते रहते।[6]

गुलाम हुसैन सलीम – इन दोंनो प्रसिद्ध व्यक्तियों के गुणों में कुछ असमानताएं थी। यह तो सर्वमान्य था कि विधाता ने छोटे भाई को कई गुणों में अपने बडे भाई से अधिक श्रेष्ठ बनाया था। वास्तविक शक्ति में भी वे समकालीन शासकों से ही नहीं अपितु उन व्यक्तियों से जो इतिहास में अमर हो गए है, बहुत शक्तिशाली थे। परन्तु न ही उनकी शक्ति और न ही उनकी आयु चिरस्थायी हो सकी। यदि वे रहते तो सम्भवतः जो देश की दुर्दशा हम देख रहे हैं वह न होती। न ही देश का इतना अपमान होता और देश के अभिजात वर्ग और भद्र जनों की जो दुर्दशा हम देख रहे हैं वह न होती।[7]

खाफी खाँ : मुन्तखब–उल–लुबाब का लेखक–दोनो भाई अपने जीवन–काल में सब व्यक्तियों के प्रति उदारता के लिए प्रसिद्ध थे। वे लोग जो कट्टरपंथी और स्वार्थी नही थे, उन्हें सैयद बन्धुओं के शासन से कोई शिकायत नही थीं। बुद्धिजीवी और गरीब लोगों के प्रति दया और उदारता में और अच्छे लोगों की रक्षा करने में अपने भाई से हुसैन अली खां बहुत आगे थे। सत्य ही वे अपने समय के हातिम थे। लोगो को उनके यहॉ से कच्चा और पक्का भोजन प्राप्त होता था । जब औरंगाबाद मे सूखे की स्थिति आई तो उन्होने बहुत सा अन्न और धन निर्धनो और विधवाओं के लिए निश्चित कर दिया । अपने गॉव बाढा मे उन्होने सराय, पुल और अन्य जन –सुविधा के लिए भवन बनवाये । सैयद अब्दुल्ला अपने धैर्य, सहनशीलता और सहानुभूति के लिए प्रसिद्ध थे।[8]

सिड़नी जे ओवन– भारत के भविष्य पर इस प्रतिक्रान्ति के प्रभाव के विषय मे अतिशयोक्ति करना संभव नही है । यदि हत्यारे द्वारा मुख्य व्यक्ति समाप्त न कर दिया जाता तो सम्भवतः सैयद बन्धु परिस्थिति पर काबू पा जाते । सम्भवतः भारतीय मुसलमानों तथा हिन्दू राजाओ की सहायता से वे एक सुदृढ प्रशासन और शक्तिशाली सरकार स्थापित करने मे सफल हो जाते।[9]

नवीन राज्यों का उत्थान

मुगल साम्राज्य के शिथिल हो रहे राजनैतिक ढांचे तथा इसके सैन्य बल के कम होने के कारण भारत मे एक प्रकार से राजनैतिक शून्य स्थिति उत्पन्न हो गई जिससे महत्वाकांक्षी सूबेदार तथा प्रादेशिक सरदारों को अर्ध स्वतंत्र अथवा स्वतंत्र राज्य बनाने की ,तथा पश्चिमोत्तर सीमा पार के साहसी वीरो को भारत पर पुनः आक्रमण करने की प्रेरणा मिली। भारत के अपने आन्तरिक तथा बाहरी शत्रुओ के कारण स्थिति बहुत गंम्भीर हो गई जिसके राजनैतिक अव्यवस्था बढ़ गई तथा मुगल साम्राज्य का पतन हो गया । भारत के विभिन्न भागो मे पारंपरिक राज्यों के पुनः शक्तिशाली बनने के साथ दक्षिण और उत्तर मे नये–नये राज्यो का उद्‌भव हुआ।

(1) **दक्कन के निजाम** – हैदराबाद के आसफजाही वंश के प्रवर्तक चिनकिलिच खां थे जिन्हे प्रायः निजामुलमुल्क भी कहा जाता था। यह जुल्फिकार खां था। जिसने पहली बार दक्कन मे स्वतंत्र राज्य का स्वप्न देखा था। 1708 ई.मे बहादुरशाह के औदार्य के कारण जुल्फिकार खां दक्कन का वाइसराय बना । वह दक्कन का कार्य अपने नायब दाऊदखां द्वारा चलाता रहा। 1713 ई.मे जुल्फिकार खां की मृत्यु हो गई और यह योजना समाप्त हो गई । तब चिनकिलिच खां सैयद बन्धुओ के प्रयास से दक्कन का बाइसराय बना । 1715 ईं. में सैयद हुसैन अली को ही दक्कन का वाइसराय नियुक्त किया गया। हुसैन अली के वध के पश्चात चिनकिलिच खां का भाग्य पुनः चमका और वह दक्कन का सूबेदार नियुक्त हो गया । 1722 ई. में निजाम को दिल्ली मे वजीर नियुक्त किया गया । उसने दिल्ली मे सुव्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न किया परन्तु सम्राट और उसके कामुक मित्रों ने सभी प्रयास विफल कर दिए। उसने सम्राट को कर्तव्य पालन का पाठ पढ़ाने का प्रयत्न किया । उसके कठोर अनुशासान से लोगो के मनों मे उसके प्रति ईर्ष्या और द्वेष उत्पन्न हो गया । दुःखी होकर निजाम ने दक्कन जाने का विचार कर लिया । वजीर के रूप मे उसने मालवा और गुजरात को दक्कन की सूबेदारी मे सम्मिलित करवा लिया। 1723 ई.के अन्त मे उसने शिकार अभियान के बहाने दक्कन की ओर प्रस्थान किया ।

सम्राट मुहम्मद शाह को यह बुरा लगा। उसने मुबारिज खां को पूर्णरूपेण दक्कन का वाइसराय बना दिया और आज्ञा दी कि निजाम को जीवित अथवा मृत उपस्थित करे । निजाम मुबारिज खां से कहीं अधिक शक्तिशाली था और अक्टूबर, 1724 ई मे शकूरखेडा के युद्ध मे मुबारिज खां मारा गया और निजाम दक्कन का स्वामी बन गया । सम्राट बेबस था और वाहय रूपेण अपनी मर्यादा बनाए रखने के लिए उसने किलिच खां को दक्कन का वाइसराय नियुक्त कर दिया और उसे आसफजाह की उपाधि भी दे दी। निजाम को मराठों के आक्रमणों के कारण कुछ समय तक कठिनाई रही। उसने बाजीराव के विरुद्ध युद्ध किया और हार खाई (दिसम्बर 1737) उसने सम्राट के साथ नादिरशाह के विरुद्ध करनाल के युद्ध में भाग लिया। दिल्ली में लौटने के पूर्व नादिरशाह ने सम्राट को निजाम के विरुद्ध सचेत भी किया कि यह व्यक्ति आवश्यकता से अधिक

महत्वकांक्षी और चालाक है। नादिरशाह के लौटने के पश्चात निजाम दक्कन चला गया और लौटकर उसने अपनी स्थिति सुदृढ कर ली।

निजाम में सभी गुण थे जो स्वतंत्र राज्य बनाने के लिए आवश्यक होते है। वह सफल कूटनीतिज्ञ और परोपकारी शासक था उसने शांति और व्यवस्था स्थापित की। कृषि और उधोग को बढावा दिया और लोकप्रिय बन गया।

सिडनी ओवन के अनुसार वह एक चालाक, कूटनीतिज्ञ तथा अवसरवादी था, उसने मुगल सम्राज्य को पैरो पर खडा करने का प्रयत्न किया और जब उसे ऐसा होना असंभव लगा तो वह स्वयं एक नौका में बैठ, कुछ अन्य व्यक्तियों के साथ डूबती हुई स्थिति से अपने आप को बचाकर ले गया।[10]

(ii) **अवध** – अवध के स्वतंत्र राज्य का संस्थापक सआदत खां अथवा बुरहानुलमुल्क था। सआदत खां शिया था और निशापुर के सैयदों का वंशज था। 1720 ईं में वह बयाना का फौजदार नियुक्त किया गया। उसने सैयद बन्धुओं के विरुद्ध षडयंत्र में भाग लिया और सम्राट की दृष्टि में ऊपर उठ़ गया। फलस्वरुप पहले उसे पंचहजारी और फिर सप्तहजारी का मनसब मिला और बुरहानुलमुल्क की उपाधि भी मिली। 1720 ई. से 1722 ई. तक वह आगरा का गवर्नर भी रहा जिसका शासन उसने अपने नायब नीलकण्ठ नागर के द्वारा चलाया। परन्तु शीघ्र ही वह दरबार का कृपापात्र नहीं रहा और उसे राजधानी से बाहर अवध का गवर्नर नियुक्त किया गया। शीघ्र ही उसने अपने लिए अवध का स्वतन्त्र मुस्लिम राज्य स्थापित कर लिया। 1739 ई. में सआदत खां को नादिरशाह के विरुद्ध लडने के लिए दिल्ली बुलाया गया। वह वीरता से लडा परन्तु बन्दी बना लिया गया। उसने नादिरशाह को दिल्ली पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया परन्तु यह दांव उल्टा पडा। उसने आक्रमणकारी को 20 करोड की आशा दिलाई थी और जब उससे यह धन मांगा गया तो सआदत खां ने विष खा कर आत्महत्या कर ली। उसके पुत्र नहीं था। उसने अपनी लडकी की शादी अपने भतीजे सफदरजंग से कर दिया था और इसी कारण यह उसका उत्तराधिकारी बना। सम्राट मुहम्मदशाह ने एक फरमान द्वारा सफदरजंग को अवध का नवाब नियुक्त कर दिया। 1748 ई. में सम्राट मुहम्मदशाह ने सफदरजंग को अपना वजीर नियुक्त कर लिया और उसके उत्तराधिकारी प्रायः नवाब बजीर कहलाने लगे। 1819 ई. में इस वंश के सातवें शासक सआदत खां ने राजा की उपाधि धारण कर ली।

(iii) रुहेले तथा बंगश पठान – गंगा की घाटी में रुहेलों तथा बंगश पठानों ने अपने लिए स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिए। एक अफगान वीर दाऊद तथा उसके पुत्र अली मुहम्मद खां ने बरेली में एक छोटी सी जागीर का विस्तार कर रुहेलखण्ड का एक स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया जो कि उत्तर में कुमाऊं से दक्षिण में गंगा नदी तक फैल गया। इससे कुछ दूर पूर्व में मुहम्मद खां बंगश ने, जो एक अन्य अफगान वीर था, फर्रुखाबाद की जागीर को एक स्वतंत्र राज्य बना लिया। बाद में इसने बुन्देलखण्ड तथा इलाहाबाद के प्रदेशों पर अपना प्रभुत्व जमा लिया।

(iv) बंगाल – बंगाल के स्वतन्त्र राज्य के संस्थापक मुर्शिदकुली खां थे। औरंगजेब के काल से ही मुर्शिदकुली खां को बंगाल के दीवान तथा नायब गवर्नर का पद मिला हुआ था। पहले राजकुमार अजीमुशान के अधीन और फिर राजकुमार फर्रुखसियर के अधीन 1713 ई. में मुर्शिदकुली खां को बंगाल का गवर्नर नियुक्त कर दिया गया। 1719 ई. में उडीसा भी उसके अधीन कर दिया गया। मुर्शिदकुली खां एक सफल शासक था और उसके अधीन बंगाल ने व्यापार और वाणिज्य में बहुत उन्नति की।

1727 ई. में मुर्शिदकुली खां की मृत्यु के पश्चात उसका जामाता शुजाउद्दीन उसका उत्तराधिकारी बना। 1733 ई. में सम्राट मुहम्मदशाह ने बिहार का कार्यभार भी उसी पर डाल दिया। 1739 ई. में शुजाउद्दीन की मृत्यु हो गई उसके बाद उसका पुत्र सरफराज खां गवर्नर बना। परन्तु 1740 ई. में बिहार के नायब सूबेदार अलीवर्दी खां ने विद्रोह कर दिया और अप्रैल में सरफराज खां को घेरिया के स्थान पर हरा कर मार डाला। अब अलीवर्दी खां, बिहार और उडीसा का गवर्नर बन बैठा। उसने सम्राट को दो करोड रुपया नजराने के रुप में देकर सम्राट की अनुमति भी प्राप्त कर ली। 1746 ई. में सम्राट ने अलीवर्दी खां से कुछ और धन मांगा परंतु उसने कोई ध्यान नहीं दिया। इस प्रकार बंगाल, बिहार और उडीसा के प्रान्त सम्राट के अधिकार क्षेत्र से लगभग निकल ही गए। अलीवर्दी खां मराठों के विरुद्ध भी रक्षा के लिए सम्राट पर निर्भर नहीं रहा। परन्तु फिर भी उसने निजाम और नवाब वजीरों की नाईं मुगल राजसत्ता को झूठमूठ बनाए रखा।[11]

(v) राजपूत – राजपूतों ने जो औरंगजेब की राजनीति से अप्रसन्न थे, 18 वीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य की कमजोरी से लाभ उठाकर अपनी प्राचीन स्वतंत्रता पुनः स्थापित कर ली तथा चारों दिशाओं में अपने राज्यों का विस्तार कर लिया। राजपूतों तथा मुगलों के आपसी प्रेम–घृणा सम्बन्धों से प्रेरित होकर बहादुरशाह ने 1708 ई. में जोधपुर पर आक्रमण कर दिया। अजीतसिंह ने अधीनता स्वीकार कर ली परन्तु शीघ्र ही उसने जयसिंह द्वितीय तथा दुर्गादास राठौर के साथ मिल कर मुगलों के विरुद्ध एक गठजोड बना लिया। 1714 ई. मुगल सेनापति हुसैन अली ने जोधपुर पर आक्रमण किया तथा अजीतसिंह को अपनी पुत्री का विवाह मुगल सम्राट फर्रुखसियर से करके शान्ति मोल लेने पर बाध्य किया।

दिल्ली में हुए फर्रुखसियर–सैयद बन्धु झगडे में जयपुर तथा जोधपुर के राजाओं ने अपने हितों की रक्षा हेतु तटस्थता की नीति अपनाई। सैयद बन्धुओं ने अजीतसिंह को अपनी ओर मिलाने के लिए उसे अजमेर तथा गुजरात की सूबेदारी प्रदान की, जिस पद पर वह 1721 ई. तक बना रहा। सैयद बन्धु–विरोधी दल ने जयपुर के महाराजा जयसिंह द्वितीय को 1721 ई. में आगरा का सूबेदार नियुक्त कर दिया तथा सम्राट मुहम्मदशाह के काल में उसे गुजरात की सरकार का क्षेत्र भी दे दिया गया।

इस प्रकार एक समय, दिल्ली के पश्चिम में 100 मील (160कि.मी. लगभग) से लेकर भारत के पश्चिमी तट स्थित सूरत तक का समस्त देश राजपूतों के अधीन था। परन्तु राजपूतों के

आन्तरिक झगडों के कारण वे अपनी स्थिति को दृढ नहीं कर पाए तथा मराठों के हस्तक्षेप का शिकार बन गए।

(vi) सिक्ख – सिक्खों के अन्तिम गुरु, गुरु गोविंद सिंह ने धर्म तथा स्वतत्रंता की रक्षा के लिए सिक्खों को योद्धाओं में परिणत कर दिया। 1708 ईं में इनका नेतृत्व बन्दा बहादुर ने लिया तथा आने वाले 8 वर्ष तक वह मुगलों से जूझता रहा। युद्ध में अपने ही सहयोगियों ,द्वारा विश्वासघात किए जाने पर वह बन्दी बना लिया गया तथा 1716 ईं. में उसकी निर्मम हत्या कर दी गई। इससे सिक्ख मिसलों (बराबर के लोगों का संगठन) को स्वर्ण अवसर मिल गया तथा उन्होनें 1760 ईं के पश्चात पंजाब में अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

(vii) मराठे – सम्भवतः मुगलों की उत्तरी तथा दक्षिणी भारत में सबसे बडी चुनौती मराठों की ओर से मिली। पेशवाओं के योग्य नेतृत्व में मराठों ने मुगलों को मालवा तथा गुजरात से उखाड फेंका तथा 1730 ईं. के पश्चात राजस्थान में भी अपना प्रभुत्व बना लिया तथा मुगलों के विघटन से उत्पन्न हुए रिक्त स्थान को भरने का पूर्ण प्रयत्न किया। कुछ समय तक मराठे बहुत चमके तथा 1750 ईं. के पश्चात ऐसा लगा कि वे ही मुगल सत्ता के अधिकारी बनेगें। परन्तु अहमदशाह अब्दाली ने उन्हें चुनौती दी तथा पानीपत के तीसरे युद्ध 1761 ईं. में उन्हें पराजित कर दिया। किन्तु इस पराजय के बाद मराठे शीघ्र ही पुनः उठ़ खडे हुए तथा उन्होनें अंग्रजों को सबसे कडी चुनौती प्रस्तुत की।

(viii) जाट– दिल्ली, मथुरा तथा आगरा के समीपवर्ती क्षेत्रों में कृषि कार्य में लगे जाट लोगों ने औरंगजेब की नीति के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। यद्यपि विद्रोह तो दब गया था। परन्तु वहाँ अशान्ति ही बनी रही। चूडामन ने थीम के स्थान पर एक सुदृढ़ दुर्ग बना लिया तथा इस प्रदेश में मुगलों की शक्ति को चुनौती दी। 1721 ईं. में आगरा के सूबेदार जयसिंह द्वितीय के अधीन मुगल सेना ने इसके विरुद्ध अभियान किया तथा दुर्ग जीत लिया। चूडामन ने आत्महत्या कर ली। उसके बाद चूडामन के भतीजे बदन सिंह ने जाटों का नेतृत्व संभाल लिया। उसने अपनी सेना को शक्तिशाली बना लिया तथा ड़ीग,कुम्हेर,वैर,तथा भरतपुर में चार दुर्ग बना लिए। नादिरशाह के आक्रमण के पश्चात हुई अव्यवस्था से लाभ उठाकर उसने आगरा तथा मथुरा पर अधिकार कर लिया तथा भरतपुर राज्य की नींव डाली। अहमदशाह अब्दाली ने इस परिस्थिति को स्वीकार कर लिया तथा बदन सिंह को राजा की उपाधि दे दी जिसमें 'महेन्द्र' शब्द भी जोड दिया गया।

1756 ईं. में सूरजमल इस जाट राज्य का उत्तराधिकारी बना। उसने इस जाट राज्य को अपनी ''चतुराई सूक्ष्मबुद्धि तथा स्पष्ट दृष्टि'' दी। लोग उसको जाटो का अफलातून (PLATO) के नाम से याद करते हैं। 1763 ईं. में सूरजमल की मृत्यु के हत्या का हिसाब बराबर किया।[12]

भारत में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच स्पर्धा

अपनी व्यापारिक और उसके साथ चलने वाली राजनैतिक और सैनिक गतिविधियों से यूरोप के लोगों को भारत की फूट और सैनिक कमजोरियों का पता चल गया। उन्होनें समझ लिया कि जब तक यूरोपवासी अपनी नौ सेना और तोपों का समुचित प्रयोग करते रहेगें भारतवासी उनके सामने सिर नही उठायेगें बल्कि अपनी आपसी फूट के कारण उनकी सहायता ही मांगेगे। इन स्थितियों में स्वभाविक रुप से भारत में अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए यूरोपवासी लालायित हुए और प्रयत्न करने लगे। ऐसे प्रयत्नों में पुर्तगाली और डच असफल रहने के कारण शिथिल पड गए। किन्तु अंग्रेज और फ्रांसीसी पहले व्यापार पर एकाधिकार प्राप्त करने और उसी के तहत बाद में अपनी राजनैतिक सत्ता स्थापित करने के लिए प्रयासरत हुए। इन प्रयासों में स्वाभाविक रुप में भारत में अंग्रेजों और फ्रांसीसीयों के मध्य टकराव उत्पन्न हुआ।

भारत में औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात ज्यों ही केन्दीय सत्ता कमजोर पडी त्यों ही अंग्रेजों और फ्रांसीसीयों की महत्वाकांक्षा जगी। इस समय अंग्रेजों का पडला भारी था। उनके पास कलकत्ता,मद्रास और मुबई जैसी महत्वपूर्ण बस्तियाँ थी। व्यापार में भी अंग्रेज फ्रांसीसीयों से आगे थे। इस बात को फ्रांसीसी स्वयं अनुभव करते थे। अतः फ्रांसीसीयों ने व्यापार में होड का इरादा छोडकर भारतवासियों की फूट का लाभ उठाने के इरादे से भारत में अपनी राजनैतिक शक्ति बढाने का इरादा किया। लेकिन, ऐसा इरादा अंगेज पहले ही कर चुके थे। ऐसी स्थिति में भारत में 18 वीं सदी के पूर्वार्द्ध में अपनी राजसत्ता स्थापित करनें के लिए फ्रांसीसीयों और अंग्रेजों के मध्य संघर्ष हुआ।

उस समय लगभग सम्पूर्ण भारत राजनैतिक दृष्टि से अराजकता की स्थिति में था। स्थानीय शासक अपने स्वार्थ के लिए घटिया से घटिया स्तर पर उतर सकते थे। इस वास्तविकता को अंग्रेजो और फ्रांसीसीयों दोनो ने भली प्रकार से समझ लिया था और दोनों ने इसका लाभ उठाने का इरादा किया था। अतः दोनों के मध्य युद्ध लाजमी था। 1740 ईं. में ऑष्ट्रिया के उत्तराधिकारी के प्रश्न पर प्रांरभ होने वाले युद्ध में अंग्रेज और फ्रांसीसी विरोधी खेमों में थे, अतः संसार में जहाँ–जहाँ भी अंग्रेज और फ्रांसीसी साथ–साथ थे वहाँ–वहाँ उनमें विरोध होना स्वभाविक था, तो ऐसी स्थिति में भारत कैसे अछूता रह सकता था। इसलिए फ्रांसीसी विचारक वाल्टेयर ने यह लिखा था कि ''अपने देश में छोडे गए तोप के पहले गोले ने अमरीका और एशिया में हमारे सभी तोपखानों में आग लगा दी।''[13]

कर्नाटक का प्रथम युद्ध (1740–1748 ईं.) : यूरोप में 1740 ईं में होने वाले युद्ध के समाचार ज्यों ही भारत पहुँचे त्योंही भारत में अंग्रेजो और फ्रांसीसीयों की कम्पनियों के गर्वनरों के कान खडे हुए। इस समय भारत में फ्रांसीसीयों का गर्वनर 'डूप्ले' था और अंगेजों का 'मोर्स'। इस समय फ्रांसीसी अपने जलसंसाधनों में अंग्रेजों के मुकाबले कमजोर थे। इसलिए 'डूप्ले' ने यूरोप में युद्ध प्रांरभ हो

जाने का समाचार मिलते ही अंग्रेज गर्वनर को यह संदेश भेजा कि भारत में अंगेजों और फ्रांसीसीयों को आमने– सामने नही होना चाहिए। किन्तु अपनी नाविक शक्ति की प्रबलता के सथ इग्लैंड से कप्तान बार्नेट के नेतृत्व में भारत के लिए एक जहाजी बेड़ा भेज दिए जाने की खबर के कारण 'मोर्स' ने 'डूप्ले' को कोई जबाव नही दिया। तब डूप्ले ने अपनी सुरक्षा के लिए उपाय किये। उसने अर्काट या कर्नाटक के नबाब अनबरुद्दीन से आग्रह किया कि वह अपने राज्य में किसी प्रकार से युद्ध न होने दे। इसका कारण यह था कि फ्रांसीसीयों की बस्ती पांडेचेरी और अंग्रेजो की बस्ती मद्रास दोनों तब कर्नाटक या अर्काट राज्य में थे। यही नही डूप्ले ने अपनी सुरक्षा के उपाय के तहत फ्रांसीसीयों की मॉरिशस स्थित बस्ती के गर्वनर 'लाबुर्दोने' को भी भारत में फ्रांसीसीयों की सहायता के लिए बुला लिया। इस पर 'लाबुर्दोनं' अपने जहाजी बेडे के साथ रवाना हुआ। भारत की तरफ आते हुए लाबुर्दोने का सामना अंगेजों के उस जहाजी बेडे से हो गया, जो भारत में अंग्रेजों की सहायता के लिए भेजा गया था। तब लाबुर्दोने उस पर हमला करके उसे भगा दिया। इसी के साथ भारत में अंग्रेजों और फ्रांसीसीयों के बीच युद्ध प्रारंभ हो गया, जिसे इतिहास में कर्नाटक का प्रथम युद्ध के नाम से जाना जाता है।

कर्नाटक के पहले युद्ध में अपनी पहली सफलता से उत्साहित होकर फ्रांसीसीयों ने अंग्रेजों की बस्ती मद्रास पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया उनके दूसरे किले सैंट डेविड पर धावा बोला। इधर अंग्रेजों ने भी अपने नये जहाजी बेड़े के साथ फ्रांसीसी बस्ती पांडेचेरी को घेर लिया, लेकिन इसी समय यूरोप में युद्ध समाप्त हो गया और वहाँ दोनों पक्षों में लक्स–ला–शापेल की सन्धि हो गई। परिणामस्वरुप भारत में भी अंग्रेजो और फ्रांसीसीयों के मध्य अपने आप युद्ध बन्द हो गया। अंग्रेजों एवं फ्रांसीसीयों के लिए यह युद्ध निरर्थक प्रमाणित हुआ, लेकिन इस युद्ध की घटनाओं के कारण अर्काट या कर्नाटक के नबाव और फ्रांसीसीयों के बीच युद्ध प्रारम्भ हो गया। इसका कारण डूप्ले की धोखाधडी था। डूप्ले ने अर्काट या कर्नाक के नबाब अनवरुद्दीन को यह कहकर मद्रास पर आक्रमण किया था कि मद्रास जीतकर वह उसे सौंप देगा। किन्तु डूप्ले ने ऐसा नही किया।

इस पर नबाब अनवरुद्दीन ने अपने पुत्र महफूज खाँ को सेना के साथ डूप्ले पर आक्रमण के लिए भेजा, डूप्ले ने महफूज खां को 'सेण्ट थोम' नामक स्थान पर परास्त कर दिया। फ्रांसीसीयों एवं कर्नाटक के नबाब की सेना के बीच होने वाले इस युद्ध को अडियार का युद्ध कहा जाता है। इस युद्ध में विजय से फ्रांसीसीयों का दक्षिणी भारत में प्रभाव जम गया। भारतीयों की सैन्य कमजोरी प्रकट हुई। विदेशियों को तब भारत की राजनीति में घुस कर अपना हस्तक्षेप करने की प्रेरणा मिली और इतिहासकार डॉडबेल के शब्दों में '' यूरोपवासी अधीन प्रजा की स्थिति से उछल कर भारत के नरेशों की समानता की स्थिति में आ गए तथा भविष्य में डूप्ले और क्लाइब के लिए मार्ग खुल गया।''

कर्नाटक का दूसरा युद्ध (1748–1754 ई.) : कर्नाटक के पहले युद्ध के बाद 1748 ई. में अंग्रेज और फ्रांसीसी फिर आमने–सामने हो गए। इसका मूल कारण तो इन दोनों की शत्रुता और भारत में

अपनी प्रभुता कायम करने की लालसा ही थी। किन्तु तात्कालिक कारण के रुप में हैदराबाद में उत्तराधिकार के लिए और कर्नाटक में नबाब अनवरुद्दीन और उसके बहनोई चाँदा साहब के बीच कर्नाटक की नबाबी को लेकर उठने वाले झगडे थे। हुआ यूँ कि 1748 ई. में हैदराबाद के नबाब आसफ जहाँ निजामुलमुल्क की मृत्यु हो गई। तब उसका दूसरा पुत्र नासिर जंग हैदराबाद की गद्दी पर बैठा, लेकिन आसफ जहाँ के बडे पुत्र के लडके मुजफ्फर जंग ने हैदराबाद की गद्दी पर अपना अधिकार जताया और चाचा भतीजा आपस में झगड़ने लगे।इसी समय में कर्नाटक में या अर्काट में नबाब अनवरुद्दीन के बहनोई चाँदा साहब ने कर्नाटक की नबाबी हासिल करने के लिए झगडा शुरु किया। दोनों राज्यों में झगडे खडे कर चाँदा साहब और मुजफ्फरजंग ने आपस में मिलकर युद्ध करने का निश्चय किया और सफलता के लिए फ्रांसीसी गर्वनर डूप्ले से सहायता माँगी।

डूप्ले इस प्रकार के अवसर की तलाश में ही था। इसलिए वह सहायता के लिए तैयार हो गया। तब फ्रांसीसीयों ने नबाव अवनरुद्दीन पर आक्रमण कर दिया अम्बर नामक स्थान पर यह युद्ध हुआ।इस युद्ध में अनवरुद्दीन का पुत्र मुहम्मदअली भाग कर त्रिचनापल्ली के दुर्ग में चला गया। पूरे अर्काट पर चाँदा साहब का अधिकार हो गया। अपनी सहायता के पुरस्कार के रुप में चाँदा साहब ने फ्रांसीसीयों को लम्बी चौडी जमीन दी। इससे अंग्रेजों के मन में ईर्ष्या पैदा हुई। अंग्रेजों ने सोचा कि यदि फ्रांसीसीयों का इस तरह प्रभुत्व बढता रहा तो उन्हें अपनी बोरी बिस्तर भारत से बाँधने पडेंगे। तब उन्होंने नासिरजंग और मुहम्मदअली का पक्ष लिया। फिर अंग्रेजो से सहायता प्राप्त कर नासिरजंग और मुहम्मदअली ने चाँदा साहब और मुजफ्फरजंग पर आक्रमण किया। ये दोंनो व इनके सहयोगी फ्रांसीसी पराजित हुए। इसी समय डूप्ले ने मूसलीपट्टम और जिंजी पर अधिकार कर लिया और इसी अवधि में हैदराबाद के नासिरजंग की हत्या कर दी गई।

जब डूप्ले ने मुजफ्फर जंग को हैदराबाद का नवाब घोषित कर दिया और पुरस्कार के रुप में मुजफ्फरजंग से खूब सारी जमीन प्राप्त की, लेकिन मुजफ्फरजंग जब फ्रांसीसी सेनापति बूसी के साथ हैदराबाद की तरफ बढ रहा था तब रास्ते में उसकी मृत्यु हो गई। इस स्थिति में बुसी ने हैदराबाद के निजाम के अन्य पुत्र सलावतजंग को हैदराबाद का निजाम बना दिया और हैदराबाद पर फ्रांसीसी प्रभाव बनाए रखा। इसी समय अंग्रेजो ने साण्डर्स नामक व्यक्ति को मद्रास का नया गवर्नर बना कर भेजा। उसने मुहम्मद अली को समर्पण न करने की राय दी और त्रिचनापल्ली, जहाँ चाँदा साहब शरण लिए पडा था, पर आक्रमण के लिए सेना भेजी। परिणामस्वरुप कर्नाटक में चारों तरफ युद्ध फैल गया।

अर्काट का घेरा :– कर्नाटक में इस तरह युद्ध के फैल जाने पर कर्नाटक की नवाबी के दावेदार मुहम्मदअली ने अंग्रेजों को अर्काट पर आक्रमण करने का सुझाव दिया। कुछ इतिहासकार यह मानते है कि यह सुझाव एक अंग्रेज युवक राबर्ट क्लाइव ने दिया था। लेकिन, वास्तविकता यह है कि सुझाव मुहम्मदअली का ही था। उसके सुझाव पर रावर्ट क्लाइव को सेनापति बनाकर 200 अंग्रेज और 300 भारतीय सैनिकों के साथ अर्काट पर आक्रमण के लिए भेजा गया था। क्लाइव ने राजधानी अर्काट को घेर कर उस पर कब्जा कर लिया। तब त्रिचनापल्ली से चाँदा साहब ने अपने

पुत्र रजाखाँ के नेतृत्व में आधी सेना अर्काट भेजी। रजाखाँ ने अर्काट को घेर लिया। क्लाइव मुसीबत में फँस गया, किन्तु 53 दिन तक भूख–प्यास बर्दाश्त करता हुआ वह किले में जमा रहा। जब मेजर लारेन्स के नेतृत्व में अंग्रेजो ने सेना भेजी जिसके आने पर रजा खाँ ने अपना घेरा उठा लिया। तब क्लाइब और लारेन्स ने साथ–साथ आगे बढकर त्रिचनापल्ली पर अधिकार कर लिया। चाँदा साहब पराजित होकर भाग गया। बाद में उसे पकड कर कई फ्रांसीसी सैनिकों के साथ मौत के घाट उतार दिया गया। कर्नाटक पर मुहम्मद अली का अधिकार हो गया। उसे कर्नाटक का नवाब बना दिया गया।[14]

इस प्रकार 18 वीं शताब्दी के मध्य तक भारत में फ्रांसीसी और अंग्रेज अपने–अपने व्यापारिक हितों के अलावा राजनैतिक हस्तक्षेप करते हुए दिखाई देते है। दोनों यूरोपीय शक्तियों ने आर्थिक एवं राजनैतिक लाभ प्राप्त करने के लिए भारत को रणभूमि बना दिया। तत्कालीन भारत की कमजोर राजनीतिक व्यवस्था का लाभ उठाते हुए, भारतीय राजा–महाराजाओं, नरेशों और नवाबों को दोनों शक्तियों ने अपना–अपना सहयोग देना प्रारंभ कर दिया, जिसका परिणाम यह हुआ भारतीय शासकों की शासन व्यवस्था दोनों शक्तियों पर ही निर्भर हो गयी। 18 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक अंग्रेज और फ्रांसीसी दोनों शक्तियॉ भारत में एक 'आवश्यक बुराई' के रुप में उभर कर सामने आई। फ्रांसीसीयों ने हैदराबाद में और अंग्रेजों ने कर्नाटक में अपना राजनैतिक हस्तक्षेप कायम कर लिया।

उत्तर–पश्चिम से विदेशी आक्रमण

मुगल शासन की शिथिलता स्पष्ट थी, क्योंकि इन लोगों ने उत्तर–पश्चिमी सीमा पर सुरक्षा प्रबन्ध ढीले कर दिए थे। औरंगजेब ने उत्तर–पश्चिमी सीमाओं की सुरक्षा और प्रान्तों के प्रशासन पर विशेष ध्यान दिया था। काबुल का प्रशासन बहुत उत्तम ढंग से चल रहा था और लोग ठीक ढंग से अपना कर देते थे। सीमाओं पर रहने वाली जन–जातियॉ शान्त थी। उन्हें आर्थिक सहायता निश्चित रुप से मिल रही थी राजमार्ग खुले रहते थे और दिल्ली और काबुल के बीच प्रशासनिक पत्र–व्यवहार समुचित ढंग से चल रहा था। परन्तु 1707 ई. में बहादुरशाह के काबुल से चले आने पर काबुल और गजनी का प्रशासन बिगड गया। मुगल साम्राज्य की शक्ति को घुन लग चुका था। और यह इस बात से सिद्ध हो जाता है कि सीमाएं पूर्णतया असुरक्षित पडी थीं। वही स्वार्थ, भ्रष्टाचार और असावधानी जिसके कारण गुजरात और मालवा मराठों के आक्रमणों के शिकार बने, यहाँ पर भी विधमान थे। इसी कारण नादिरशाह की महत्वकांक्षाएं जाग्रत हुई। सियारुलमुत्खैरीन के लेखक गुलाम लिखते हैं कि पक्षपात के कारण अयोग्य वाइसराय नियुक्त होते थे। उत्तर–पश्चिमी सीमाओं पर नियुक्त सेना सर्वथा उपेक्षित थी। जन–जातियों को दिया जाने वाला धन रोक लिया जाता था और यह धन अधिकारी अथवा उनके आश्रित लोग ही खा जाते थे। स्वेच्छाचारी सम्राट अथवा उसके मन्त्री पर्वतो के उस पार की अवस्था से पूर्णतया उदासीन हो गए थे। उदाहरणस्वरुप जब मुगल गवर्नर ने फारस से आक्रमण के भय का समाचार दिल्ली भेजा तो खान–ए–दौरान ने

कपोल–कल्पित कह कर इसकी हंसी उडाई और जब गवर्नर ने कहा कि सैनिकों का वेतन पिछले 5 वर्षों से बकाया है तो उसे टाल दिया गया।

नादिरकुली का जन्म 1688 ई. में खुरासान के तुर्कमान वंश में हुआ। उसका यौवन तूफानी दौर से गुजरा। जब अफगाानों ने फारस पर आक्रमण किया तो वह फारस का रक्षक बन कर सामने आया। अफगानों ने महमूद नाम के एक व्यक्ति के नेतृत्व में कन्धार फारसी लोगों से छीन लिया और 1722 ई. फारस की राजधानी इसफहान को भी जीत लिया। नादिरशाह ने देश को अफगानों से मुक्त कराने का बीडा उठाया और 1727 ई. निशापुर से अफगानों को निकाल दिया। नादिरशाह अपने को सफवी राजा शाह तहमासप का मुख्य सेनापति ही मानता था। शीघ्र ही समस्त फारस अफगानों से मुक्त हो गया।

कृतज्ञ शाह ने उसे आधा राज्य दे दिया जिसमें वह पूर्ण स्वतंत्र होकर अपने सिक्के भी चला सकता था। 1736 ई. में सफवी वंश का अन्तिम सम्राट मर गया और नादिरशाह समस्त देश का स्वामी बन गया। नादिरशाह एक महत्वाकांक्षी शासक था और उसने अपने पडौस में अपने राज्य विस्तार का मन बनाया। पहला लक्ष्य कन्धार को जीतना था क्योंकि उसके साम्राज्य की शान्ति कभी भी भंग हो सकती थी। इसके बिना वह सफवी वंश का पूरा उत्तराधिकारी भी नहीं कहला सकता था। उसने कन्धार के अफगान शासको को अकेला करने की इच्छा से मुगल सम्राट मुहम्मदशाह को लिखा कि कन्धार के अफगान शासकों को काबुल में शरण नहीं मिलनी चाहिए। मुहम्मदशाह ने ऐसा विश्वास दिलाया परन्तु नादिरशाह ने 1738 ई. में कन्धार पर आक्रमण किया तो वहाँ के अफगानों ने गजनी और काबुल में शरण ली। नादिरशाह के सैनिकों ने मुगल साम्राज्य की सीमाओं का आदर किया और अफगान भगोडों का काबुल और गजनी में पीछा नहीं किया। परन्तु उसने एक दूत दिल्ली भेजा। इस दूत और उसके साथियों की मुगल सैनिकों ने जलालाबाद में हत्या कर दी।

जिस अवहेलना से मुगल सैनिकों ने नादिरशाह के दूतों के साथ व्यवहार किया था, उसी को नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण का कारण बना लिया। दूसरी ओर मुहम्मदशाह ने नादिरशाह से दूतो का आदान–प्रदान भी स्वीकार नहीं किया था यद्यपि नादिरशाह से पहले दोनों देशों के दूतो का आदान–प्रदान बना हुआ था। यह भी नादिरशाह का अपमान था। इसके अतिरिक्त नादिरशाह को भारत लूटने की भी इच्छा थी। उसे मुगलों की सैनिक दुर्बलता का भी आभास था। उसे निश्चित रुप से मुगल शासन के पतन का भी पता था और आन्तरिक झगडों के कारण मुगल शक्ति के क्षीण होने की भी सूचना थी। यहाँ तक कि मुगल दरबारियों ने भी उसे आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया था। नादिरशाह ने 11 जून को गजनी नगर में प्रवेश किया और 29 जून को काबुल पर अधिकार कर लिया। नादिरशाह ने एक दयालु शत्रु और उदारस्वामी के रुप में अपनी ख्याति बना रखी थी। वह भगोडों को भिन्न–भिन्न प्रलोभन देता था। काबुल के मुगल शासक नादिर खां ने बिना प्रतिरोध के नादिरशाह के सम्मुख घुटने टेक दिए और फिर क्षमा याचना कर, नादिरशाह से काबुल और पेशावर की गवर्नरी स्वीकार कर ली। नादिरशाह ने अटक के स्थान पर सिन्ध नदी को पार किया और बहुत सरलता से लाहौर के गवर्नर को हरा दिया। नासिर खां की नाईं वह भी नादिरशाह से मिलकर दिल्ली की ओर बढा।

करनाल का युद्ध, 24 फरवरी, 1739 ई. – नादिरशाह के इस तीव्रगामी आक्रमण से मुगल सम्राट घबरा गया। 80,000 सैनिक और निजामुलमुल्क, कमरुद्दीन और खान–ए–दौरान को साथ लेकर वह आक्रमणकारी से टक्कर लेने चल पडा। शीघ्र ही सआदत खां भी उससे आ मिला। मुगलों की दुर्बलता का अनुमान इस बात से भी लग सकता है कि सम्राट को यह भी मालूम नहीं था कि आक्रमणकारी किस स्थान पर है। उसे आक्रान्ता का तब पता लगा जब नादिरशाह के अग्रिम सैनिकों ने सआदत खां की संभरण गाडियों पर आक्रमण कर दिया। मुगलों के पास निश्चित कार्यवाही की भी कोई योजना नहीं थी। न ही कोई निश्चित नेता था। करनाल का युद्ध केवल तीन घंटे चला। खान–ए–दौरान युद्ध में मारा गया और सआदत खां बन्दी बना लिया गया। निजामुलमुल्क ने अब शान्ति दूत की भूमिका निभाई। यह निश्चित हुआ कि नादिरशाह को 50 लाख रुपया मिलेगा, 20 लाख तुरंत और 10–10 लाख की तीन किस्तें लौटाते हुए, लाहौर, अटक और काबुल में। सम्राट, निजामुलमुल्क की इस सेवा से इतना प्रसन्न हुआ कि उसने निजाम को तुरंत मीरबख्शी नियुक्त कर दिया क्योंकि यह स्थान खान–ए–दौरान की मृत्यु के कारण रिक्त हो चुका था।[15]

मुगल सरदारों ने स्वार्थभाव तथा आपसी द्वेष का जो रुप इस समय दिखलाया वह इससे पहले सम्भवतः भारत के इतिहास में कभी देखने को नहीं मिला। सआदत खां ने जो स्वयं मीरबख्शी बनना चाहता था, जब यह देखा कि वह इस पद से वंचित रह गया है तो उसने नादिरशाह से भेट की और कहा कि यदि आप दिल्ली पर आक्रमण करें तो 20 लाख नहीं 20 करोड रुपया आपको मिल सकता है। नादिरशाह को मुगल राजनीति का आभास निजाम से पहले ही मिल चुका था। नादिरशाह ने निजाम से पूछा कि उस जैसे वीर योद्धाओं के होते हुए मराठे मुगल साम्राज्य का इतना बडा भाग कैसे जीत सके थे तो निजाम ने स्पष्ट रूप से कह दिया था कि दरबार में गुटबन्दी के कारण ही यह सम्भव हुआ था और इसीलिए वह दुःखी होकर दक्कन चला गया था। अब निजाम के कथन का सत्य नादिरशाह के सम्मुख था। उसने दिल्ली की ओर प्रस्थान की आज्ञा दे दी। 20 मार्च, 1739 ईं को वह दिल्ली पहुँचा। नादिरशाह के नाम का खुतबा पढ़ा गया तथा सिक्के जारी किए गए। मुगल राज्य समाप्त हो गया और फारसी राज्य आरम्भ हो गया। 22 मार्च को यह दिल्ली में अफवाह फैल गई कि नादिरशाह की मृत्यु हो गई है। नगर मे विद्रोह हो गया और नादिरशाह के 700 सैनिक मार दिए गए। इस पर नादिरशाह ने आम नर–संहार की आज्ञा दे दी। लगभग 30,000 व्यक्ति हताहत हुए। मुहम्मदशाह की प्रार्थना पर ही यह आज्ञा वापिस ली गई। नादिरशाह दिल्ली में लगभग दो माह ठहरा और अधिकाधिक लूटने का प्रयत्न किया। समस्त अमीरों और जनता को इसमें अपना योग देने को कहा गया। सआदत खां को स्पष्ट कहा गया कि यदि 20 करोड रुपया इकत्रित नहीं हुआ तो उसे शारीरिक यातना दी जाएगी। उसने विष खा लिया।

सआदत खां के उत्तराधिकारी सफदर जंग ने 2 करोड रुपया दिया और नादिरशाह लगभग 30 करोड रुपया नकद और सोना, चाँदी, हीरे, जवाहरात के अतिरिक्त 100 हाथी, 7000 घोडे, 10,000 ऊँट, 100 हीजडे, 130 लेखपाल, 200 उत्तम लोहार, 300 राज, 100 संगतराश और 200 बढई भी ले गया। शाहजहान का तख्तेताऊस (मयूर सिंहासन) जिसका मूल्य एक करोड रुपये था इसके अतिरिक्त था। मुगल सम्राट ने अपनी पुत्री का विवाह नाादिरशाह के पुत्र नासिरुल्लाह मिर्जा से कर दिया। इसके अलावा कश्मीर तथा सिन्ध नदी के पश्चिमी प्रदेश भी नादिरशाह को मिल

गए। थट्टा का प्रान्त और उसके अधीनस्त बन्दरगाहें भी दी गईं। पंजाब के गर्वनर ने 20 लाख रुपया वार्षिक कर देना स्वीकार किया और यह भी वचन दिया कि नादिरशाह की सिंध पार सेना को शिकायत का कोई अवसर नही मिलेगा।

दूसरी ओर नादिरशाह ने मुहम्मदशाह को पुनः मुगल साम्राज्य का सम्राट घोषित कर दिया, खुतबा पढ़ने और सिक्के चलाने का भी अधिकार लौटा दिया। प्रस्थान से पूर्व नादिरशाह ने मुहम्मदशाह को कुछ सुझाव दिए और दिल्ली के लोगों की उसकी आज्ञा मानने का आदेश दिया। राज्य को आड़े समय में सैनिक सहायता का वचन भी दिया।

अहमदशाह अब्दाली एक अच्छे कुल का अफगाान पदाधिकारी था। नादिरशाह उसका बहुत आदर करता था। उसने एक बार कहा भी था। कि मैंने अहमद शाह अब्दाली जैसे चरित्र का व्यक्ति पूरे ईरान, तूरान और हिन्दुस्तान में नही देखा। 1747 ई. में नादिरशाह की हत्या कर दिए जाने पर अहमद शाह अब्दाली कन्धार का स्वतंत्र शासक बन बैठा और उसने अपने सिक्के भी चला दिए। शीघ्र ही उसने काबुल को जीत लिया और आधुनिक अफगान राज्य की नींव रखी। उसने 50,000 से इकत्रित की और नादिरशाह के वैध उत्तराधिकारी के रुप में पश्चिमी पंजाब पर अपना दावा किया। 1748 ई. में उसने पंजाब पर प्रथम आक्रमण किया, किन्तु असफल रहा। परन्तु वह सुगमता से हार मानने वाला नही था और 1749 ई. में उसने पुनः आक्रमण किया और पंजाब के गर्वनर मुईनुलमुल्क को परास्त किया। परन्तु 14,000 रुपया वार्षिक कर के वचन देने पर वह लौट गया। नियमित रुप से कर न मिलने पर उसने 1752 ई. में पंजाब पर तीसरा आक्रमण किया।[16]

भारत पर आक्रमण करके अहमदशाह अब्दाली ने पंजाब और मुल्तान पर अधिकार कर लिया। 1756 ई. में मुगलों ने पुनः पंजाब को अपने अधिकार में ले लिया। तब 1756 ई. के अंत में अब्दाली ने पुनः भारत पर आक्रमण करके पंजाब पर अधिकार कर दिल्ली को लूटा और पंजाब पर अपने पुत्र तैमूर खां को सूबेदार नियुक्त किया।[17] अपनी वापिसी से पहले अब्दाली भारत में आलमगीर द्वितीय को सम्राट, इमादुलमुल्क को बजीर और रुहेला सरदार नजीबुद्दौला को साम्राज्य का मीर बख्शी और अपना मुख्य एजेन्ट बना कर वापिस चला गया।

मार्च 1757 ई. में पेशवा रघुनाथ राव दिल्ली पहुँचा और उसने नजीबुद्दौला को दिल्ली से निकाल दिया। फिर पंजाब को लूटा और अंत में अदीना बेग खां को अपनी ओर से पंजाब का गर्वनर नियुक्त कर लौट गया। अहमदशाह अब्दाली मराठों की इस उद्दण्डता का बदला लेने के लिए पुनः भारत आया।[18] उसने पंजाब और दिल्ली पर अधिकार कर लिया। इस पर बालाजी बाजीराव ने अपने बडे पुत्र विश्वासराव एवं चचेरे भाई सदाशिव राव भाऊ के सेनापतित्व में मराठों की विशाल सेना अब्दाली से मुकाबला करने के लिए भेजी। परिणाम स्वरुप 14 जनवरी, 1761 ई. के दिन पानीपत के प्रसिद्ध मैदान में मराठों एवं अहमद शाह अब्दाली की सेना के मध्य घोर संग्राम हुआ। यह संग्राम भारत के इतिहास में पानीपत के तीसरे युद्ध के नाम से जाना जाता है। इस संग्राम में मराठों की पूर्ण पराजय हुई। सेनापति सदाशिवराव भाऊ एवं बालाजी बाजीराव के पुत्र विश्वास राव के साथ कई प्रमुख मराठा सरदार और हजारों सैनिक संग्राम में मारे गए और मराठों की विस्तृत होती हुई शक्ति को भारी आघात पहुँचा।[19] अहमदशाह ने 20 मार्च, 1761 ई. को दिल्ली छोडने से पहले पुनः शाहआलम को सम्राट, नजीबुद्दौला को मीर बख्शी और इमादुलमुल्क को बजीर नियुक्त किया। अहमदशाह अब्दाली का अन्तिम आक्रमण 1767 ई. में हुआ। अहमदशाह अब्दाली के

आक्रमणों से मुगल साम्राज्य के पतन की गति और भी तेज हो गई। उसके बार–बार आक्रमण करने से मुगल साम्राज्य का खोखलापन और भी स्पष्ट हो गया और देश में अराजकता और गडबढ़ी फैल गई।

मुगल सम्राट की शक्तिहीनता का उदाहरण यह था कि सम्राट शाहआलम द्वितीय बारह वर्ष तक दिल्ली में प्रवेश नही कर सका और केवल मराठा सेना ही 1772 ई. में उसे दिल्ली लेकर आई और सिंहासन पर बैठाया। रुहेला सरदार नजीबुद्दौला, उसके पश्चात् उसका पुत्र जाब्ता खां और फिर उसका पोता गुलाम कादिर दिल्ली के एकमात्र स्वामी थे। 30 जुलाई, 1788 ई. को गुलाम कादिर ने राजमहल में प्रवेश कर शाहआलम को सिंहासन से उतार उसकी आँखें निकलवा दीं। परन्तु अक्टूबर, 1788 ई. महादजी सिंधिया ने पुनः सम्राट की ओर से, दिल्ली पर अधिकार कर लिया और फिर 1803 ई. में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया और शाहआलम कम्पनी का पेन्शन भोगी बन गया।[20]

संदर्भ

1. बी. एल. ग्रोवर, आधुनिक भारत का इतिहास, xxiii-xxiv
2. वही, पृ. 1–2।
3. Satish Chandra : Parties and Politics at the Mughal Court 1707-40PP. 257-58
4. बी. एल. ग्रोवर यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ. 3।
5. वही, पृ. 4।
6. वही, पृ. 5–6।
7. Siyar-ul-Mutakherin Brigg's, Translation.P, 128
8. Elliat and Doulson, Vol. VIII, P 519-20
9. The fall of the Mughal Empire, P, 133
10. बी. एल. ग्रोवर यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ. 6–7।
11. वही, पृ. 7–8।
12. वही, पृ. 8–9।
13. डॉ. राजशेखर व्यास, भारत का इतिहास एवं संस्कृति, भाग–2 (1526–1947ई.), पृ. 194–195।
14. वही, पृ. 195–199।
15. बी. एल. ग्रोवर यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ. 9–10।
16. वही, पृ. 11।
17. डॉ. राजशेखर व्यास, भारत का इतिहास एवं संस्कृति, भाग–2 (1526–1947ई.), पृ. 178।
18. बी. एल. ग्रोवर यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ. 12।
19. डॉ. राजशेखर व्यास, भारत का इतिहास एवं संस्कृति, भाग–2 पृ. 178।
20. बी. एल. ग्रोवर यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ. 12।

द्वितीय अध्याय

जाटों की उत्पत्ति – जाट एक ऐसी जाति है जो इतनी अधिक व्यापक और संख्या की दृष्टि से इतनी अधिक है कि उसे लगभग एक राष्ट्र की संज्ञा प्रदान की जा सकती है जिस क्षेत्र में जाट निवास करते है उसे मोटे तौर पर इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है उत्तर में उसका सीमांकन हिमालय के नीचे की पर्वत श्रृंखला से होता है और पश्चिम में सिन्धु नदी से : दक्षिण में हैदराबाद से शुरु होकर अजमेर और फिर भोपाल तक फैला है, तथा पूर्व में गंगा नदी उसके सीमान्तों को प्रदर्शित करती है दूसरे शब्दों में अगर जाट राष्ट्र की संरचना को स्पष्ट किया जाये तो वह एक पंखे के आकार के जैसी है जिसका आधार सिंध में है। सिंधु नदी के उस पार भी पेशावर, वलूचिस्तान, यहाँ तक कि सुलैमान पर्वत माला[1] के पश्चिम में भी हमें जहाँ तहाँ जाट मिल जाते है पंजाब, सिन्ध, राजस्थान तथा गंगा के दोआव के पश्चिम भाग में इस जाति के द्वारा कृषक विरादरियों की रीढ की हड्डी की रचना होती है। 13 वीं शताब्दी तक जाट एक सुसम्बद्व लोग थे उनमें रक्त भाषा और धर्म की एकता पाई जाती थी परन्तु अब उनमें एक तिहाई मुसलमान है बीस प्रतिशत सिख है और शेष हिन्दू हैं। परन्तु जाट चाहे वह हिन्दू हो या सिख या मुसलमान, वह आखिर जाट है, वह मजबूती के साथ अपने पुराने जातीय के नाम के साथ उसे अपना गौरव पूर्ण उत्तराधिकार मानकर चिपका रहता है और उसके साथ रक्त सम्बन्ध की परम्परा चलती रहती है।

जाट नि:संदेह बहादुर किसान हैं, अपनें देश का गौरव हैं, जो हल और तलवार दोनों के प्रयोग में समान रुप से सिद्धहस्त हैं, परिश्रम तथा साहस में वह किसी भी भारतीय जाति से कम नही हैं। शरीर की बनावट में वे राजपूत तथा क्षत्रिय जैसै हैं और वे जाति के उस प्रारुप का प्रतिनिधित्व करते हैं जो भारत के परम्परागत उपनिवेश वादी आर्यो के सम्बन्ध में बताया गया हैं। वे अधिंकाशत: लम्बे हैं, उनका रंग साफ हैं और आँखे काली हैं, उनके चेहरे पर बाल बहुतायत से पाये जाते हैं उनका सिर लम्बा होता है नाक परिमित और सुव्यक्त होती हैं परन्तु वह बहुत लम्बी नही होती है।[2] चरित्र में जाट पुराने एंग्लो–सैक्सन तथा पुराने रोमनों से मिलता जुलता है निःसंदेह उसमें कैल्टिक की अपेक्षा टयूटन विशिष्टताओं का आधिक्य है वह हट्टा–कट्टा है, उसमें प्रतिभा की कमी है किन्तु उसमें दृढता यथेष्ट मात्रा में पाई जाती है उसमें अध्यवसाय है तथा उसकी बुद्धी व्यवहारिक है। ठोस तथ्यों के बिना केवल शब्दों के द्वारा कोई भी बात उसके गलें के नीचे नहीं उतरती। जैसा कि इब्बेटशन ने लिखा है, दृढता, स्वतंत्रता तथा अध्यवसाय एवं कठोर परिश्रम उसके चरित्र के कुछ अच्छे गुण हैं। जाट चरित्र की एक दूसरी विशिष्टता जैसा कुछ श्रेष्ठ पर्यवेक्षकों ने अवलोकित किया है, उसका ''व्यक्तिवाद'' है।

''पंजाब की जनजातियों में से जाट कबायली अथवा बिरादरी के नियंत्रण को बरदाश्त करने के मामले में अधिक अधीर है, और वह उन लोगों में से है, जो मजबूती के साथ वैयक्तिक स्वतंत्रता का दावा करते हैं। हरियाणा के कुछ इलाकों में, जहाँ जाटों के पास अपनी जमीन हैं और जहाँ उन्हें प्रतिद्वन्दी जातियों अथवा शत्रुओं के कारण किसी दूसरे से झगडा करने के लिए दूसरे की

सहायता लेने के लिए बाध्य होना पडता है, जातीय बंधन मजबूत है। परंतु जहाँ तक नियम का सम्बन्ध है, जाट ऐसा व्यक्ति है जो वहीं काम करता है जो उसे उचित लगता है, कभी–कभी वह ऐसा काम भी करता है जो उसे अनुचित लगते है। वह स्वतंत्र है और वह स्वेच्छा से प्रेरित होता है, किन्तु वह समझदार है यदि उसके साथ हस्तक्षेप न किया जाये तो वह शान्तिप्रिय है।''[3]

जाट अभी भी सामाजिक विकास के जनजातीय चरण में है, वह जाति पर आधारित भेदभाव अथवा कुलीनवाद को मान्यता प्रदान नही करता। जाति के सभी सदस्य समानता के स्तर पर हैं, केवल बुजुर्गों को आदतन सम्मान दिया जाता है। जाट निरपवाद रुप से अपने बडे भाई की विधवा से विवाह कर लेता है, केवल इसी आधार पर उसे शुद्व क्षत्रिय मानने में आपति की जा सकती है, क्योंकि क्षत्रिय वर्ग इस प्रथा को स्वीकार नही करता है। परन्तु यह एक ऐसी प्रथा है जो वैदिक काल मे शुद्ध आर्यों के ऊपर की तीनों जातीयों में पाई जाती थी।[4]

''जाटों और राजपूतों का उद्भव एक ही मूलवंश में हुआ है, लेकिन उसमें अन्तर है, तो केवल इस बात का कि जाट जिस प्रथा पर अमल करता है राजपूत उससे दूर रहते हैं, जिसे सापेक्ष स्थिति को परखने की मूलभूत कसौटी माना जाता है।''[5] अपने गाँवों की शासन–प्रणाली में जाट राजपूतों की अपेक्षा अधिक लोकतात्रिंक हैं, आनुवांशिक अधिकार के प्रति उनमें सम्मान की भावना बहुत मजबूत है। वे आनुवांशिक झगडा पवित्र कर्तव्य की भाँति निवाहते हैं। एक वृद्ध जाट तब तक शान्ति से नही मर सकता जब तक कि वह अपने उत्तरधिकारियों कों यह बताकर अपनी छाती का बोझ कम न कर ले कि उसके पडोसियों ने उसकें और पूर्वजों के साथ क्या बुरा क्या अच्छा किया है तथा जब तक वह उन्हें बुराई का बदला और भलाई का भले कामों सें बदला चुकाने का आदेश न दे दे। एक कुनबा दूसरे कुनबे से लड सकता है, एक गोत्र की दूसरे गोत्र से लडाई हो सकती है, परन्तु जब भी जातीय सम्मान का प्रश्न उठता है अथवा किसी दूसरी बिरादरी के साथ संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है तो जाति के सभी सदस्य जिनमें लाठी पकडनें की सामर्थ्य है, अपने पारस्परिक मतभेदों कों अल्पकाल के लिए भुलाकर निष्ठा के साथ जातीय बुजर्गों के आदेशों का पालन करनें के लिए एकत्रित होते है।

जाटों की उत्पत्ति का इण्डो–सिथियन सिद्धान्त

इण्डो–सिथियन सिद्धान्त उन महान विद्वानों के नाम के साथ जुडा हुआ है, जो भारतीय इतिहास एवं मानव जाति–विज्ञान के क्षेत्र में अत्यधिक ख्याति प्राप्त हैं। इस सिद्धान्त के अन्तिम समर्थक विद्वान विन्शेण्ट स्मिथ ने लिखा है, ''जब छठी शताब्दी के बहुसंख्यक कवायली, झुण्डबाला, इण्डो–सिथियन, गूजर और हूण स्थापित हो गये तो उनके राज परिवारों को राजपूत के रुप में मान्यता दे दी गई, जबकि उन लोगों को जिन्होंने कृषि को रोजगार के रुप में अपनाया वे जाट कहलाए।''[6]

एक दूसरे स्थान पर स्मिथ ने लिखा है कि ''इस बात पर विश्वास करने का कारण है कि जाट भारत में गूजरों के बाद में आये, शायद लगभग उसी समय।''[7]

''भारतीय विद्वानों में सर यदुनाथ सरकार ने प्रमुख रुप से जाटों के विदेशी उत्पत्ति के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। उन्होंने जाटों को ''सीथों आर्यन'' कुनवे से सम्बधित बताया है।''[8]

विदेशी नामों मे जाट जैसें शब्द मिलतें हैं यूरोप मे जैसे गाथ, गेटी, जेटी। चीन में यूची यूली ऐसे नाम हैं जो स्वर मे जाट शब्द के समान हैं। ऐसे शब्दो की समानता का आधार देखकर इतिहास कारों ने जाटों को मंगोलियन और सिथियनों का उत्तराधिकारी बताया है। उक्त मत का उल्लेख उपेन्द्रनाथ शर्मा द्वारा लिखित 'जाटों का इतिहास' में भी मिलता है। उपेन्द्र नाथ शर्मा नें अपनी पुस्तक में कई इतिहासकारों का उद्धरण देते हुए लिखा है कि

''भारतीय सीमाओं का भौगोलिक अंग हाने के बाद भी भारतीय आर्य जाति के प्रतिनिधियों के शाक्द्वीप (सिन्धु पंचनद प्रदेश) में जाकर बसनें के कारण ही विदेशी शक अथवा 'इण्डो–सिथियन' (भारतीय शक) प्रमाणित करने का प्रयास किया है।''[9]

इण्डो–सिथियन सिद्धान्त की आलोचना

विदेशी इतिहासकारों ने जिनमें सर हेनरी, इलियट प्रमुख हैं, उन्होंने इसके अलावा जातियों की पहचान के लिए कई साधन निकाले हैं, इनमें सें दो मुख्य हैं– ?

(i) शरीरिक बनावट

(ii) भाषा–विज्ञान

शरीर–शास्त्र के साधनों सें अन्वेषकों नें मनुष्य को पाँच भागो में विभक्त कर दिया है

(1)आर्य, (2) मंगोलियन, (3) मलय, (4) हबसी, (5) अमेरिकन।[10]

जाटों की शारीरिक संरचना को अन्य विदेशी जातियों से मिलातें हुए कई इतिहासकारों ने इनको विदेशी स्वीकार किया है परन्तु शोध में प्रकति के साथ पूर्ववर्ती प्रजातियों की धारणाओं नृतत्व शास्त्री विधियों मे पर्याप्त परिवर्तन हुआ है। जों तथ्य पूर्व मे सिद्ध किये जा चुके थे अब उनके सम्बन्ध में इन नई विधियों के कारण नई शंकाएं उत्पन्न हुई है। आर्यन तथा सिथियन को जाट–जाति से सम्बन्धित करने बाला दृष्टिकोण अब आलोचित हो रहा है।

मानव संरचना एवं भाषा–विज्ञान के अनुसार जातियों को पहचानने की जो व्यवस्था है, इसके अनुसार भी जाट आर्य ही नजर आते हैं। सर हेनरी, एम. इलियट ने ''डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ दी रेसेज ऑफ दी नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज ऑफ इण्डिया'' में कहा है कि – करॉची से पेशावर तक जाट शेष जातियों से पृथक नही है। भाषा से जो अर्थ निकाला गया है वह उनके आर्य हानें के पक्ष में एक जोरदार तर्क है। यदि वे सिथियन है तो सिथियन भाषा कहाँ लुप्त हो गई ? चूंकि इस क्षेत्र में जाटों की भाषा में किसी भी प्रकार का सिथियन होनें का प्रमाण नही मिलता।[11]

इण्डो–सिथियन सिद्धान्त के विरुद्ध निम्न तर्क और प्रस्तुत किए जा सकते हैं –

(i) कर्नल टॉड ने 409 ई. के एक जाट राज–परिवार के अस्तित्व के सम्बन्ध में एक शिला लेखीय साक्ष्य दिया है।[12]

(ii) राजपूत एवं जाट की पारम्परिक शत्रुता से यह बात अत्यन्त सन्देह पूर्ण लगती है कि यदि उन्होंने भारत में कहीं बाहर से प्रवेश किया – तो वे यहाँ साथियों के रुप में आयें, परन्तु बाद में वे दो विरोधी गुटों में विभक्त हो गए। हम सर्वत्र यह पाते है कि भूमि की आरंम्भिक स्वामी जाटों में नये राजपूत अप्रावासियों ने भूमि छीनी। परमारों ने जाटों को मालवा से बेदखल किया और तुनवारों (तौमरों) ने उनसे दिल्ली छीन ली।[13] राठौंरो ने बीकानेर से उनको भगा दिया और भट्टियों ने जैसलमेर में उन पर अपना नियंत्रण स्थापित कर दिया।

(iii) सिथियन जो सम्भवतः कद में छोटे और मजबूत होते थे, जिनके चेहरे चौंडे और ठोडी ऊंची होती थी, वे लम्बे सिरवाले जाटों के पूर्वज नहीं हो सकते।

(iv) इण्डो–सिथियन सिद्धान्त के जोशीले समर्थकों ने एक बडी भूल यह की है कि उन्होंने उन लोगों के देशान्तरण की दिशा की उपेक्षा की है जो अपने को आज जाट कहते हैं। पंजाब के सभी

जाट कबीलों की परम्परा[14] (जिसमें डेरा गाजी खाँ के अभारतीय बब्बर जाट भी शामिल हैं) यह बताती है कि पूर्व अथवा दक्षिण पूर्व–अवध, राजपूताना अथवा मध्य भारत उनका मूल आवास स्थान था। यदि लोक–गाथाओं का कुछ अर्थ है, तो उनसे यह संकेत मिलता है कि वे मूलतः भारतीय आर्य थे जो पूर्व से पश्चिम की ओर आये थे, इण्डो–सिथियन नहीं जिन्होंने आक्सास घाटी से इस देश में प्रवेश किया। निःसन्देह जाटों के एक समूह ने जैसलमेर के भट्टी राजपूतों के साथ देशान्तरण किया तथा कई शताब्दियों के बाद उन्हें फारस के सीमान्तों से भगाकर सिन्धु नदी के पूर्व में धकेल दिया गया। परन्तु केवल इसी आधार पर उनको विदेशी आक्रमणकारी नहीं कहा जा सकता। सम्भवतः ऐतिहासिक साक्ष्य कें नियमों के विरुद्ध जाटों की पहचान गेटे, यूची, येथा अथवा अन्य इन्डो–सिथियन लोगों के साथ इसलिए नहीं की जा सकती क्योंकि उनके नामों के बीच साम्य है, यद्यपि भाषा–विज्ञान एवं नृजाति– विज्ञान इस निष्कर्ष के विरुद्ध है। यदु जाति के वंश वृक्ष में जाटों अथवा सुजाटों के स्थान की खोज करना भी निरर्थक है, क्योंकि स्वयं यदु जाति की उत्पत्ति भी संदेह से परे नही है।

कर्नल टॉड़ ने राटासे, चीनीयों तथा चन्द्रवंशीय आदि क्षत्रियों के उद्‌भव का एक स्त्रोत सिद्ध करने का प्रयास किया है। ऐसा करने के लिए उन्होंने इन तीनों जातियों के वंशवृक्षों तथा उनकी व्युत्पत्ति से सम्बद्ध लोक कथाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया है (क्रुक द्वारा सम्पादित, राजस्थान, पृ.71–72)। विल्सन को जिसके अनुसार पुराण 1045 ई. से पहले के नहीं है, यह संदेह था कि हिन्दुओं के 'हयाओं' तथा 'हैहेयों' का हिआ से कुछ सम्बन्ध था जिनका चीन के इतिहास में उल्लेख होता है – परन्तु हैंहयों के सिथियन उद्‌भव को प्रमाणित करने वाला साक्ष्य खोजना असम्भव नहीं है, जैसा कर्नल टॉड़ का विश्वास था (विल्सन द्वारा सम्पादित विष्णु पुराण, पृ.418 फुट नोट 20)। संक्षेप में अनेक यूरोपियन विद्वानों का यह संदेह है कि मध्य एशिया के कुछ निवासी इण्डो–सिथियन जातियों के साथ भारत आये और उन पर बेईमान हिन्दू वैज्ञानिकों चतुरता पूर्वक इन्डो–आर्यन वंश–वृक्ष आरोपित कर दिया तथा इन बर्वर आक्रमणकारियों के वंशजों को चंद्रवंशीय क्षत्रिय घोषित कर दिया गया।

सभी राष्ट्रों के इतिहास में ऐसे लोगों की कमी नहीं रही है जिन्होंने कल्पना के आधार पर व्यक्तियों एवं जातियों के वंश–वृक्षों की रचना कर दी है। परन्तु इसके पीछे प्रयोजन क्या है? प्रथम, कोई सफल मनुष्य जो कल था अकिंचन था, अथवा कोई कम ख्याति प्राप्त कबीला जिसका भूत उज्जवल नहीं रहा और वह यकायक महत्वपूर्ण बन जाये, उसे अपने वर्तमान को उज्जवल तथा भविष्य को समुज्वलतर सिद्ध करने के लिए किसी समीचीन पृष्ठभूमि की आवश्यकता होती है और इस उद्‌देश्य की प्राप्ति के लिए वह एक काल्पनिक श्रेष्ठता की रचना कर लेता है। द्वितीय, लोग अपनी वंश–परम्परा को अपने द्वारा अंगीकृत नये धर्म के साथ अथवा अपने से अधिक शक्तिशाली अथवा अधिक सभ्य पडौसियों के साथ जोड लेते है। इसका एक अच्छा उदाहरण अरब के बाहर रहने वाले मुसलमानों का है। अफगानिस्तान के अनेक कबीले जो महमूद गजनवी के समय तक मूर्तिपूजा करने वाले बौद्ध थे, अब वे स्वयं को पैगम्बर के प्रख्यात समकालीन खालिद का वंशज होने का दावा करते हैं (मखजान–ए–अफगान का डॉम का अनुवाद)। बौद्ध तुर्कों ने भी इस्लाम को

स्वीकार करने के बाद अरब परम्पराओं में अपने को ढालने के लिए इसी प्रकार के परिवर्तन किए थे। यह भी सर्वविदित है कि इस्लाम को स्वीकार करने वाले भारतीयों ने अपनी शेख और सैयद व्युत्पत्ति सिद्ध करने के लिए हास्यास्पद दावे प्रस्तुत किये थे। जो स्थिति अरब से बाहर रहने वाले मुसलमानों के लिए अरब की थी, वहीं स्थिति ईसा के जन्म से पूर्व मध्य–पूर्व और पूर्व के देशों में रहने वाले बौद्धों के लिए भारत की थी। यह इतिहास का एक जाना–पहचाना तथ्य है कि चीन और टारटरी में बौद्ध धर्म को भारतीय धर्म–प्रचारकों ने पहुँचाया था। किसी हिन्दु ने अपनी चीनी व्युत्पत्ति का दावा नहीं किया है, परन्तु जैसा सर विलियम जोन्स[15] ने बताया है, चीन के लोग अपनी हिन्दू वंश–परम्परा का दावा करते हैं।

इण्डो–सिथियन सिद्धान्त के प्रतिपादकों को ईमानदारी से यह बात स्वीकार करनी चाहिए कि यदि मध्य–एशिया के गैटे किसी प्रकार आर्यन जदु अथवा जाट बन गये, तो उल्टी प्रक्रिया से भारतीय जदु को भी मध्य एशिया में गैटे बन जाना चाहिए था। दारा द्वारा सिन्धु घाटी की विजय के समय से लेकर मौर्य साम्राज्य के विघटन के समय तक (600ई. पू. से लेकर 200 ई.पू. तक) भारतीय कबीलों का एशिया के अन्य भागों में देशान्तर का सिलसिला बराबर बना रहा है। जिस प्रकार अंग्रेज सरकार ने गोरखा और सिख वेतनभोगी सैनिकों को अपने भारतीय साम्राज्य के विभिन्न भागों में, विशेषतः वर्मा में अपनी बस्तियों को स्थापित करने के लिए प्रोत्साहन दिया तथा जिस प्रकार कुछ शताब्दीयों पूर्व रुसी सरकार ने मजबूत और युद्ध–प्रिय तातार कज्जाकों को डान नदी के आस–पास तथा अपने साम्राज्य के अन्य खुले हुए स्थानों पर बसाया, उसी प्रकार भारतीय वेतन–भोगी सैनिकों को अथवा जिनकी भरती बलपूर्वक की गई थी तथा जिन्होंने मेरॉथान तथा थर्मोपली के समय से फारस के साम्राज्य की सेवा की थी–उन्हे कृष्ण सागर के तट पर बसाया गया और उन्हें वहाँ सिन्धी अथवा कट कटे के नाम से जाना गया।[16] यह माना जा सकता है कि कुछ भारतीयों को कृष्ण सागर के तट पर बसाया गया होगा, यह भी संभव हो सकता है कि वेतनभोगी हों और उनको साम्राज्य विस्तार, रक्षा तथा प्रभाव स्थापना की दृष्टि से बसाया गया था तो लौटकर आने पर वे विदेशी कैसे हो गये, अछूत कैसे बन गये।

आज यदि अमेरिका, इंग्लैंड़ और जापान में बसे लोगों की संतान भारत लौटकर आती है तो वे विदेशी नहीं हो जाते ? सैनिक सेवा के अलावा, व्यापार के कारण भी भारतवासी विभिन्न देशों में गए। देशान्तरण को सबसे अधिक प्रोत्साहन मौर्य साम्राज्य के हिन्दूकुश पर्वत तक विस्तार के कारण प्राप्त हुआ, इसके उपरान्त समूचे मध्य एशिया और चीन में बौद्ध धर्म के प्रचार से भी इसमें वृद्धि हुई। तुर्किस्तान का तेजी के साथ भारतीयकरण हुआ, जैसा फाहियान तथा अन्य अन्य चीनी यात्रियों ने जो इस क्षेत्र से होकर निकले थे, बताया है, वह मुट्ठीभर धर्म प्रचारकों के द्वारा नहीं हो सकता था, उसमें भारतीय व्यापारी तथा वेतनभोगी सैनिकों की भी सम्भवतः एक महत्वपूर्ण भूमिका थी। जिस प्रकार इस्लाम के प्रचारक के साथ मुसलमानों में अरब अप्रवासी स्वागत योग्य था, उसी प्रकार उन देशों में जहाँ बौद्ध धर्म को कुछ समय पूर्व ही स्वीकार किया गया था, वहाँ भारतवासी को भी वही सम्मान प्राप्त था। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मध्य एशिया के बौद्ध राज्यों तथा मध्य पूर्व के यूनानी राज्यों में भारतीयों के देशान्तरण को उसी प्रकार की नीति के

अधीन प्रोत्साहन दिया जाता था जिस प्रकार की नीति रुस के पीटर महान ने अपनाई थी और जिसके अनुसार सामन्तों की भरती जर्मनों में से की जाती थी तथा पश्चिमी यूरोप के कारीगरों के देशान्तरण को इसलिए प्रोत्साहित किया जाता था ताकि प्राच्यरुप का पश्चिमीकरण किया जा सके और इस मामले में पहल रुढ़ि–विरोधी एवं उधमी यदुओं ने की जिनकी संख्या में द्रुत गति से वृद्धि हुई और जिन्होंने पंजाब के कवीलों के अनेक देहाती तत्वों को आत्मसत कर लिया। यदु जाति के लोगों का भारत से देशान्तरण हुआ, इस तथ्य की पुष्टि इस बात से होती है कि जैसलमेर के भट्टी राजपूतों नें इस्लाम के आगमन तक वलूचिस्तान पर शासन किया था।

अपनी विदेशी बस्तियों में यदुओं के केवल भट्टियों जैसे कुलीन भाग ने अपने खून में कोई मिलावट नहीं होने दी, परन्तु आम लोगों ने स्वच्छन्दतापूर्वक टारटरी की विजातियों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए तथा तुर्की–भाषी लोगो को जन्म दिया। अलवरुनी ने एक तुर्की कबीले का उल्लेख किया है जिसका भारतीय नाम भट्टावर्यन असंदिग्ध है।[17] मध्य एशिया के दो अन्य कबीले जिन्हें जाटों का पूर्वज माना गया है, वे हैं दाहे (DAHAE) तथा मासागेटे (बडा दरवाजा) जो कैस्पियन सागर के पूर्वी तट पर बसे है। (राजस्थान, I, 55) कहा जाता है कि दाहे वहीं लोग हैं, जिन्हें विष्णु पुराण में दाहा कहा गया है (विल्सन, विष्णु पुराण, पृ.192, फुटनोट 10) और जो आज दाहिया के नाम से जाने जाते है यह केवल सुझाव है जिसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है, इनमें केवल ध्वनि की समानता है। इसी आधार पर कैस्पियन के दाहे को यदुओं की एक शाखा माना जा सकता है क्योंकि महाभारत काल में इनका कवायली नाम दशाई था जिसे सुगमता पूर्वक 'दहाई'[18] में परिवर्तित किया जा सकता है।

यह भी कहा जा सकता है कि जाटों को 'सुस', 'अवर' और अनेक नाम दिये गये हैं। सत्य यह नहीं है कि जाटों ने सु–साक अथवा अभीर नामों को अंगीकृत किया, परंतु इन नामों को धारण करने वालों ने अपने से अधिक सम्मानित श्रेष्ठ लोगों का नाम स्वयं धारण कर लिया। आगे हम यह भी देखते है कि ''वैक्ट्रिया और जिहून में बसे दूचियों ने अंत में 'जेटा' और येतान (यानी गेटे) का नाम स्वीकार कर लिया।''

आखिरकार इन विजेता कबीलों शक, दूची, हूण तथा अन्य तुर्की लोगों के लिए गेटे तथा भट्टावर्यन नामों में क्या आकर्षण था? इससे इस संदेह की पुष्टि होती है कि श्रेष्ठ रक्त और उच्चतर सभ्यता के साथ जुडे हुए नाम में अधिक आकर्षण होता है, मध्य एशिया के इन कबीलों को इनमें वहीं आकर्षण था जो भारत के हिन्दू युद्ध–प्रिय कबीलों को राजपूत नाम में था। भारतीय आर्यो के ये वंशज जो आक्सस नदी और कृष्ण सागर के तट पर बसे थे उनका आर्यो के देश के साथ वहीं सम्बन्ध था जो सुदूर फिजी और अफ्रीका के जंगलों में बसे आधुनिक भारतीय अप्रवासियों का हमारे साथ है। एक या दो शताब्दी के बाद उनकी भारतीय राष्ट्रीयता की शायद पहचान भी न हो सके, क्योंकि तब तक खून, धर्म और भाषा जो उनकी पहचान को अभी बनाए हुए हैं, वह सब तब तक ऐसे मिल चुके होंगे कि उनका कोई प्रथक चिन्ह शेष ही न रहें।

जाटों की उत्पत्ति का देशी सिद्धान्त

भारतीय एवं कई विदेशी इतिहासकारों ने जाटों की देशी उत्पत्ति को एक स्वर से स्वीकारा है। कई विदेशी इतिहासकारों ने इस बात को स्वीकार किया है कि जाट मूलतः भारतीय है परंतु उत्पत्ति के विषय में अपने अलग–अलग मत प्रतिपादित किये हैं।

डॉ. ट्रम्प और बीम्स ने शक्तिशाली शब्दों में इन दोनों जातियों को उनकी शरीर की बनावट और भाषा के आधार पर शुद्ध आर्य घोषित किया है। यह कहा गया है कि उनकी भाषा शुद्ध हिन्दी की ही एक बोली है जिसमें सिथियन भाषा की लेशमात्र भी झलक नहीं है। परंतु उन्हें विकासोन्मुख विज्ञान ने खामोश कर दिया, उसने यह अकाट्य अभ्युक्ति प्रतिपादित की, ''भाषा जाति का प्रमाण नहीं है।''[19]

इसी प्रकार इतिहासकार हबर्ट रिसले ने भी स्पष्ट किया है कि ''यह कृषि पर आधारित जातिगत समूह अपनी बहादुरी और नृतत्वशास्त्र के अनुसार भारतीय राजपूत, क्षत्रिय एवं जाट एक ही समूह के अंग मालूम होते है। इन सभी समूहों की उत्पत्ति परमपरागत आर्य उपनिवेशों के मध्य ही हुई होगी।

उनकी शारीरिक बनावट जैसे–ऊँचाई, गोरा रंग, काली आँखे, बालों की बहुलता यह सारे लक्षण उन्हें आर्यों के निकट ही ले जाते है।'' हर्वट रिसले ने जाट और राजपूतों को वैदिक–आर्यों का वास्तविक प्रतिनिधि माना है।[20]

मानवमिति अथवा भाषा के औचित्य के सम्बन्ध में हरेक पर विचार करने के उपरान्त चाहे जो भी मतभेद रहे हों, हमारे ज्ञान की वर्तमान स्थिति में कोई भी सर हवर्ट रिसले के इस कथन से असहमत नहीं हो सकता, ''भारत में जहाँ ऐतिहासिक साक्ष्यों का अस्तित्व शायद ही हो, जो तथ्य साधारणतः उपलब्ध है, वे तीन प्रकार के हैं–

(i) शारीरिक विशिष्टताए (ii) भाषायी विशिष्टताएं (iii) धार्मिक एवं सामाजिक रुढियां

इनमें से पहली दो सबसे अधिक विश्वसनीय हैं। अधिकांश मानव वैज्ञाानिक बिना किसी विरोध के अब सर विलियम फाउलर के इस मत से सहमत हैं, कि शारीरिक बनावट किसी भी जाति की पहचान करने की सर्वश्रेष्ठ, वास्तव में एक मात्र सच्ची कसौटी है, भाषा, रुढियों आदि से सहायता मिल सकती है, अथवा उनसे कुछ संकेत प्राप्त हो सकते हैं, परन्तु बहुधा वे भ्रमोत्पादक हैं।[21]

भारतीय इतिहासकार सी.बी. वैद्य ने जाटों को महाभारत के 'जरित्का' के साथ सम्बन्धित किया है। इस महाकाव्य में 'जरित्को' को साकल क्षेत्र में निवास करने वाला बताया गया है।

महाभारत के कर्ण पर्व में जर्ता (जरित्का) नामक जाति का उल्लेख मिलता है। श्री वैद्य के अनुसार यह जाटों की ओर इंगित करता है।[22]

इसी प्रकार जाट इतिहासकार श्री रामलाल ने नामों की समानता के आधार पर अपना मत उत्पत्ति के सम्बन्ध में दिया है, उनका दृष्टिकोण है कि ''सम्राट यत की मृत्यु के पश्चात् यादव वंश को जाट कहा जाने लगा।''[23]

जाटों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रसिद्ध व्याकरणाचार्य पाणिनी के धातु पाठ में जाट शब्द मिलता है, जिसका आशय संघ से है। पंजाब में जाट की अपेक्षा जट अथवा जट्ट शब्द का प्रयोग अधिक होता है।[24]

जाटों की उत्पत्ति के विषय में कानूनगो ने जाटों को जदु अथवा 'सुजाता' (जो कि हैहय यादवों की एक शाखा है) के रुप में स्वीकार किया है। उन्होंने यादवों के प्राचीन नामकरण 'यदु' वंश को ही जाटों से सम्बन्धित किया है।[25]

डॉ. देशराज ने 'जाट इतिहास' में जाटों की उत्पत्ति विषयक उल्लेख में कुछ इतिहासकारों द्वारा जाटों की उत्पत्ति को भी इस तरह स्वीकारा है।

''महाभारत युद्ध के पश्चात राजसूय यज्ञ के समय पर भारत के सभी राजाओं ने महाराज युद्यिष्ठिर को ज्येष्ठ की पदवी दी थी उन्हीं के वंश के लोग ज्येष्ठ से जाट कहलाने लगे।[26]

इसी तरह पण्डित लेखराम जी आर्य मुसाफिर ने 'रिसालाजिहाद' में जाट शब्द के यदु अपभ्रंश 'जाद्द', 'जात' और 'जाट' बतलाया है।[27]

कर्नल टॉड ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है कि – जाट यादव हैं।[28]

नेसफील्ड के मतानुसार – ''जाट जदु के वर्तमान हिन्दी उच्चारण के सिवाय दूसरा शब्द नहीं है।[29]

जत्थर और जाट

जिस प्रकार यूरोपियन विद्वानों का एक वर्ग जाटों की इण्डो–सिथियन व्युत्पत्ति सिद्ध करने के लिए यूनानी और लैटिन साहित्य में से प्रमाणों की खोज कर रहे थे, उसी प्रकार जाट–समाज के कुछ शिक्षित लोग यह सिद्ध करने का प्रयास करने में रत थे, जाटों का सम्बन्ध प्राचीन काल के क्षत्रिय वर्ण से सम्बद्ध अनेक योद्धा जातियों में से किसी एक के साथ है। अलीगढ के एक जाट संस्कृत विद्वान पण्डित गिरिवर प्रसाद ने अंगद शर्मा नाम के शास्त्री को प्राचीन साहित्य के आधार पर जाटों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में खोज करने का काम सौंपा। शास्त्री जी ने अपने निष्कर्ष ध्वनियों की समानता पर आधारित करके यह बताया कि जत्थर जाटों के परिकल्पित पूर्वज थे। उन्होंने अपने विद्धतापूर्ण सिद्धान्त का प्रतिपादन 'जाथरोपत्ति' नामक एक संस्कृत पुस्तिका में किया। यह पुस्तिका उन सभी प्राचीन ग्रन्थों की श्रृंखला है, जिनमें जाथर मूल जाति का उल्लेख है और जिनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में 'पदमपुराण' में निम्न वर्णन पाया जाता है – ''जब भृगु के पुत्र परशुराम ने समस्त योद्धा वर्ग के लोगो को मार दिया, तो उनकी पुत्रियों ने संसार को क्षत्रियों से रहित देखा तथा उनकी पुत्रियों में पुत्र प्राप्त करने की लालसा जागृत हुई, उन्होंने ब्राह्मणों से सम्पर्क स्थापित किया और सावधानी के साथ उनके बीज को अपने गर्भ में रखकर क्षत्रिय पुत्र उत्पन्न किए जो जाथर कहलाए।[30]

ग्राउज (Grouse) ने लिखा है कि इस परिकल्पना में कोई बडी असम्भावना नहीं है कि जत्थर शब्द का संक्षिप्तीकरण करके उसे जाट बना लिया गया हो, परन्तु यदि एक मूल जाति का अवतरण किसी दूसरी जाति से हुआ है तो यह अत्यधिक आश्चर्य की बात है कि इस तथ्य का उल्लेख पहले कभी नहीं हुआ। इस कठिनाई का निवारण यह कहकर किया जा सकता है कि जाट कुछ अपवादों को छोडकर सामान्यतः अशिक्षित रहे है और इसलिए उन्होंने अपनी प्राचीन काल से चली आ रही वंशावली को जानने की कभी चिन्ता नहीं की तथा दूसरों को उनके पूर्वजों की खोज करने में पर्याप्त दिलचस्पी नहीं थी। परन्तु इससे भी अधिक अकाट्य आपत्ति हमें उस उद्धरण में देखने को मिलती है जिसे स्वयं शास्त्री ने वृहत्–संहिता (xiv-5) से उद्धत किया है। इसमें जाथरों की गृहभूमि दक्षिण–पूर्व में बताई गई है, जबकि यह बात सुनिश्चित है कि जाट पश्चिम से आये थे। संभवतः जाट विरादरी के नेता बेसवा पण्डित के जाथरों को जनरल कनिंघम के सिन्धी जेठों को अपना पूर्वज स्वीकार नहीं करेंगे, क्योंकि भरतपुर के राजा अपने को उसी मूल जाति से सम्बद्ध मानते हैं जो यादवों की थी।[31]

अपनी उत्पत्ति से सम्बद्ध रहस्य को खोलने का दूसरा प्रयास मेरठ के एक वकील चौधरी लहरीसिंह की एक छोटी–सी पुस्तिका 'दि एथनोलॉजी ऑफ दि जाट्स' के द्वारा किया गया इस लेखक ने भी 'जाट' शब्द की उत्पत्ति 'जाथर' शब्द से निसृत मानी है, परन्तु उसका मत 'जाथरोपत्ति' के लेखक से इस अर्थ में भिन्न है क्योंकि उसकी मान्यता है कि जाथर विदेशी लोग थे और उन्हें यह नाम महाभारत, विष्णुपुराण और भागवत में उल्लेखित जाथर पर्वत से प्राप्त हुआ

था। महाभारत और विष्णुपुराण जाथरों के देश का उल्लेख कलिंग, काशी और अपरकाशी के साथ हुआ है।

परन्तु जाटों को प्राचीन जाथरों का वंशज इसलिए नहीं माना जा सकता क्योंकि ध्वनि के स्नेहपूर्ण साक्ष्य का महत्व उस समय समाप्त हो जाता है जबकि हमें पता चलता है कि इन दोनों लोगों के मध्य कोई ऐसी परम्परा नहीं पाई जाती जिसे मिलता–जुलता कहा जा सके। यह दावा यथार्थ में इतना अद्‌भुत है कि स्वयं जाट उससे आश्चर्यचकित हैं। इस विसंगति की ओर आँखें बन्द की जा सकती थीं, यदि जाथरों का अस्तित्व पूर्णरुपेण लुप्त हो गया होता, परन्तु दक्षिण भारत में वे अभी भी पाये जाते हैं और वे जाटों के साथ अपना किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं जोडते। ये जाथर दक्षिणी मराठा ब्राह्मणों की एक उपजाति है, जो 'करहड' के नाम से जानी जाती है।[32]

जाटों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मुसलमान इतिहासकारों का मत

जाटों की उत्पत्ति विषयक विवाद में सभी इतिहासकारों ने अपने–अपने मत दिये हैं। इस उत्पत्ति विषयक झमेले से मुस्लिम इतिहासकार भी नहीं बच सके है। उन्होनें भी जाटों की उत्पत्ति का विश्लेषण किया है। ग्यारहवीं शताब्दी में अरब यात्री अलबरुनी ने यहाँ तक लिखा है कि ''श्री कृष्ण के पिता वासुदेव शुद्र थे और वे जट्‌ट वंश के पशुपालक थे।''[33] अरब के अन्य इतिहासकारों ने भी जाटों के सम्बन्ध में प्रकाश ड़ालने का प्रयास किया है। सन् 1026 ई. (417 हि.) में अबूहसन अली बिन मुहम्मद अल हव्लती ने महाभारत कथा का अरबी से फारसी में अनुवाद किया। भारतीय भाषा से अरबी में अबूशाहिल बिन सुय्यब बिन जामी ने अनुवाद किया। फारसी रुपान्तरण के संक्षेपण के बाद में अज्ञातकालीन फारसी ग्रन्थ 'मुजमिल अल तवारीख' में हुआ था। इन ग्रन्थों से पता चलता है कि, महाभारत–काल में सिन्धु नदी के आस–पास जाटों का निवास था। महाभारत के अनुसार जयद्रथ सिन्ध देश के राजा वद्धक्षत्र का पुत्र था और इसका विवाह धृतराष्ट्र की पुत्री दुशःला से हुआ था। सिंध के अलावा वह शिव का भी शासक था।[34] कौरवों ने सिन्ध में बसी उत्तेजना अथवा यृद्धरत जातियों के प्रतिवेदन पर वहाँ की राजनैतिक घटनाओं में हस्तक्षेप किया और दुर्योधन ने अपनी बहन दुशःला को सिंध का शासक बनाया। इस समय सिन्ध में मूलतः जट (प्राकृत जट्‌ट संस्कृत जत या जाट) और भिद (संभवतः भेद अथवा भेद भाट) अथवा मेवाड में जाकर बसने वाले भद्र या मेव दो जातियाँ रहती थी, इनमें परस्पर प्रतिद्वन्द्विता थी।[35]

जाटों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में
अन्य प्रचलित सिद्धान्त

जाटों की उत्पत्ति के विषय में कई पौराणिक कथाएं भी प्रचलित हैं। भगवान शिव की जटाओं से जाटों की उत्पत्ति का उल्लेख करने वाली एक मनोरंजन कथा 'देव–संहिता' में वर्णित की गई है। 'देव–संहिता' नामक धार्मिक ग्रन्थ ने जाट–उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक नई कल्पना को जन्म दिया हैः–

श्रुणु देवि। जगद्वन्दे सत्य सत्यं वदामि ते।
जद्वानां जन्म कर्माणि यत्र पूर्व प्रकाशितम्
महाउग्रा महावीर्या महासत्य पराक्रमा।
सर्वाग्रे क्षोत्रिया जट्टा देव कल्पादृढव्रताः।।
सृष्टे गदौ महामाये वीर भद्र स्वशक्तिनः।
कन्यानां हि दक्षस्य गर्भे जाता जट्टा महेश्वरी।।
गर्व सर्वात्र विप्राणां देवानां च महेश्वरी।
विचित्र विस्मयं सत्य पौराणिके संगोपितम्।।

अर्थात – श्री महादेव जी ने पार्वती जी से कहा कि जगज्जननि भगवती! जाट जाति के जन्म–कर्म के विषय में उस सत्यता का वर्णन करता हूँ जो अभी तक प्रकाशित नहीं की। ये जट्ट महापराक्रमी, अत्यन्त वीर्यमान और प्रचण्ड पराक्रमी है। सम्पूर्ण क्षत्रियों में यही जाति सर्वप्रथम शासक हुई, ये देवताओं से दृढ संकल्प वाले हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में वीरभद्र की योगमाया के प्रभाव से दक्ष–कन्याओं द्वारा जाटों की उत्पत्ति हुई। इस जाति का इतिहास अत्यन्त विचित्र है एवं विस्मयजनक भी है। इनके उज्जवल अतीत से ब्राह्मणों और देवताओं के मिथ्याभिमान का विनाश होता है, इसलिए इस जाति के इतिहास को पौराणिकों ने अभी तक छिपाया हुआ था।[36]

एक अन्य रोचक कथा राजपूत और गुर्जर जातियों के मिश्रण से जाटों की उत्पत्ति स्वीकार करती है। कथा इस प्रकार है–एक गुर्जर सुन्दरी के सौन्दर्य तथा शक्ति से प्रभावित होकर एक राजपूत राजा ने इससे विवाह कर लिया। इन्हीं की संतान जाट कहलाई। यह काल्पनिक कथा इस सीमा तक महत्वपूर्ण है कि इस कथा द्वारा राजपूतों तथा जाटों के सम्बन्धों की स्थापना होती है।[37]

पौराणिक कथाओं को आधार मानकर 'जाटों का इतिहास' के लेखक डॉ. देशराज जघीना ने अपना मत व्यक्त किया है। यादव वंशावली को सामान्यतया स्वीकार करते हुए भी जाट शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में देशराज जी का मत अन्य विद्वानों से भिन्न है। उनके अनुसार –''जाट शब्द यादवों के विभिन्न जनतान्त्रिक संप्रदायों के अंधक–वृष्णि संघ जिसे ज्ञाति कहा जाता था, उसी का

अपभ्रंश है। उनका कहना है कि बिहार के ज्ञातु भी जाट थे, जो समय पाकर अधिक संख्या में बसे हुए अपने भाईयों की तरफ पंजाब में आ गये।''[38]

देशराज जी द्वारा प्रस्तुत महाभारत की संदर्भ कथा का सारांश यह है कि ''यदुवंश के दो कुलों अंधक और वृष्णियों ने एक राजनैतिक संघ स्थापित किया। उस संघ में दो राजनैतिक दल थे एक तरफ से श्रीकृष्ण और दूसरी तरफ से उग्रसेन थे। श्रीकृष्ण प्रजातंत्रवादी लोगों में थे। उसी समय दुर्योधन, जरासंध,शिशुपाल आदि साम्राज्यवादी शासक मौजूद थे। मथुरा के आसपास कंस ने प्रजातंत्रीय गोपराष्ट्र और नवराष्ट्र नामक राज्यों को नष्ट कर दिया। फलतः कंस और कृष्ण में युद्ध हुआ। कंस को परास्त करने के पश्चात् श्रीकृष्ण ने यादवों के अनेक प्रजातंत्रवादी समूहों को श्रृंखलावद्ध करने के लिए सुदूर द्वारिका में जाकर एक ऐसी शासन–प्रणाली की नींव डाली जो प्रजातंत्री भी थी और जिसमें अनेक जातियाँ सम्मिलित हो सकती थीं। श्रीकृष्ण द्वारा स्थापित जिस संघ का वर्णन किया गया है, वह ज्ञाति कहलाता था। यह संघ ज्ञाति प्रधान था, व्यक्ति प्रधान नहीं। इसलिए इस संघ में शामिल होते ही इस जाति या वंश के पूर्व नाम की कोई विशेषता नहीं रहती थी। ज्ञाति के स्थापना से एक बात और हुई कि एक ही राजवंश के कुछ लोग साम्राज्यवादी विचार और कुछ प्रजातंत्रवादी दो श्रेणियों में – बँट गये। प्रजातंत्रवादी ज्ञाती के विधान तथा नियम और शासन–प्रणाली में विश्वास रखने वाले और देश के लिए कल्याणकारी समझे जाने के कारण आगे चलकर 'ज्ञात'कहलाने लगे। अर्थात ज्ञातिवादी ही, ज्ञात, जात और जाट नाम से प्रसिद्ध हुए।''[39]

जाट जाति की उत्पत्ति का एक और मत 'जरित्का' है। महाभारत की एक कथा के आधार पर इस सिद्धान्त का निर्माण हुआ है। कर्ण पर्व में एक कथा आई है, जिसमें भद्र नरेश शल्य को उलाहना देते हुये कर्ण से कहलाया गया कि तेरे देश की स्त्रियाँ खडे होकर मूत्र का त्याग करती है। ऊँट की तरह चीखकर गाती है। लहसुन के साथ गो–माँस खाती है, साँकल नगरी का एक जरित्का गो–माँस खाता है, अनेक स्त्रियों का भोग करता है। कर्ण द्वारा प्रयुक्त 'जरित्का' शब्द को जाटों का पर्यायवाची मान लिया गया। पूना के सी.बी. वैद्य को जाटों की इस उत्पत्ति से सहमत बताया गया है। जबकि सुख सम्पतराय भण्डारी भाई परमानन्द, डॉ यदुनाथ सरकार तथा के. आर. कानूनगो आदि विद्वान इस उत्पत्ति के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते।

कर्ण का कथन है कि उक्त कथा एक ब्राह्मण ने, जो शल्य के देश मद्र की यात्रा करके लौटा था, दुर्योधन के दरबार में सुनाई थी। कानूनगो की मान्यता है कि इस कहानी का सम्बन्ध जाटों के साथ नहीं है बल्कि कश्मीरी तथा दरद भाषा बोलने वाली जातियों के साथ हो सकता है। जरित्का का सम्बन्ध जाटों के साथ मानना, उन पर उक्त अशिष्ठ आदतों का आरोपण करना, ब्राह्मण पुरोहित की खोज का परिणाम भी हो सकता है क्योंकि जाट, अन्य जातियों के समान उनके धार्मिक आडम्बरों का शिकार नहीं बनता अर्थात् जाटों से उनकी आर्थिक कमाई नहीं होती। इसलिए इनको जब भी मौका मिला है उन्होंने उनके इतिहास, सामाजिक स्तर, नैतिक स्तर मान्यताऐं तथा राष्ट्र के प्रति उनकी सेवा को बदनाम ही किया है। डॉ. नत्थनसिंह के अनुसार अनेक प्रमाण इस बात के मिलते है कि ब्राह्मण पुरोहित राजा दिवोदाय तथा उसके पुत्र सुदास की चाटुकारिता करते थे, जो गौ–माँस खाने के अभ्यस्त थे। इन्द्र स्वयं गौ–माँस खाता था। ऋषि याज्ञवल्क्य का

गौ–माँस प्रिय भोजन था। राजा के ऋषि आश्रम में आने पर बैल का माँस उसके भोजन का एक अंग होता था। जब याज्ञवल्क्य के जैसे ऋषि, इन्द्र जैसे देवता, जिसकी पूजा करके अथवा कराके ब्राह्मण पुजारी धन कमाता था, उसको बुरा क्यों कहेगा? महाभारत का ब्राह्मण, इन माँसभक्षी ब्राह्मण तथा उनके रक्षक क्षत्रियों को असुर, ब्रात्य या बाहीक नहीं कहता। इसका कारण केवल यह है। ये ब्राह्मण सिर्फ उन लोगों में दोष निकाला करते थे, जो उनके आडम्बरों को घृणा की दृष्टि से देखते थे, उनके बताये गये धार्मिक आडम्बरों पर चलना पसंद न करते थे। जाट ही क्यों, पुरोहित–धर्म–विरोधी जैन तथा बौद्धों को ही उन्होंने शूद्र कहा है। जो जाति वर्ग, अपने विरोधी मत वाले महावीर तथा बुद्ध के अनुयायियों को शूद्र कह सकते हैं, वे जाटों को बुरा बताने में किस सीमा तक जा सकते हैं। इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है। इतिहास का एक सत्य और भी है कि सिकन्दर के सामने संघर्ष करने में 'मद्र' लोग जम गये थे। उनके समस्त गणसंघ का ध्वंस हो गया था, पर वे भागे न थे। लेकिन पुरोहित वर्ग का कोई व्यक्ति सिकन्दर के सामने, संघर्ष के लिए न आया था।[40]

जाटों की उत्पत्ति का एक और सिद्धान्त राजा ययाति के ज्येष्ठ पुत्र 'यदु' से माना गया है कि पिता की एक आज्ञा का पालन न करने के कारण पिता ने उसको श्राप देकर राज्य से बाहर निकाल दिया था, और दूसरे पुत्र 'पुरु' को राज्य सौंप दिया था। 'यदु' राज्य की दक्षिण–पश्चिम सीमा पर रहने लगा था। वहाँ उसका परिवार बढने लगा, धीरे–धीरे उसके अन्दर अपने पैतृक अधिकार को प्राप्त करने की भावना भी जाग्रत होने लगी। परिणामस्वरुप संघर्ष की भूमिका तैयार हुई। 'पुरु' ने ब्राह्मण तथा वैश्यों के सहयोग से उनका दमन भी किया। जान बचाने के लिए उनमें से कुछ पहाड़ों में छुप गये, कुछ छोटी–छोटी जातियों में मिल गये। उन्होंने शक, पल्लव, पारद, यवन तथा कम्भोज आदि जातियों के साथ मिलकर एक संघ बनाने का प्रयास किया, लेकिन 'सगर' ने उनका दमन कर दिया। सगर के भीषण संहार से बचे कुछ यदु–वंशज महाभारत काल में शूरसेन प्रदेश (मथुरा क्षेत्र) में पाए गए थे। यहाँ भी अठारह जातियों का एक संघ था। इसी संघ की जातियों में श्री कृष्ण का जन्म हुआ था। कुछ लोग, इन्हीं यदुओं के साथ जाटों का सम्बन्ध जोडते हैं।[41]

जाटों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक और मत का प्रतिपादन होता है, जिसके अनुसार शिव की जटाओं से जाटों की उत्पति हुई है। इसके अनुसार शिव के ससुर राजा दक्ष ने एक यज्ञ किया था। यह यज्ञ हरिद्वार के पास कनखल में हुआ था। इस यज्ञ में राजा दक्ष ने सभी देवताओं को आमंत्रित किया था, पर शिवजी को नहीं। पार्वती को पिता के यज्ञ में जाने की लालसा हुई और वह गईं, पर वहाँ अपने पति का अपमान देखकर उन्हें बहुत ही दुःख हुआ और अपना व पति का अपमान देख उन्होंने यज्ञ कुण्ड में छलांग लगाकर अपने प्राण दे दिये। इससे क्रोधित होकर शिवजी ने यज्ञ का विध्वन्स कर अपनी जटा से 'वीरभद्र' नामक एक गण को पैदा किया और उसने यज्ञ को भंग कर दिया। आगन्तुक राजाओं का अपमान हुआ और ब्रह्मा, विष्णु, महेश को वहाँ से जाना पड़ा। इसी योद्धा वीरभद्र से जाटों की उत्पत्ति कई लोगो ने मानी है। लेकिन यह सिद्धान्त अनैतिहासिक एवं अवैज्ञानिक है। कोई यह मानने वाला नहीं है कि बालों से भी जाटों की उत्पत्ति

हो सकती है। बालों से आदमी पैदा नहीं होते। इस कहानी से मात्र यह संभव प्रतीत होता है कि शिव की सेना का बहुत बडा भाग जाट सैनिकों का रहा होगा। जाटों की शिव की जटा से उत्पत्ति वाले सिद्धान्त से केवल एक बात सिद्ध होती है कि जाट लोग सिर पर लम्बे बाल रखते थे। वे सदैव दुघर्ष योद्धा रहे हैं।[42]

जाट–जाति की उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्त 'जात या सुजात' शब्द से उनकी उत्पत्ति मानता है। भाई परमानन्द इस सिद्धान्त के प्रमुख प्रतिपादक है। इसके अनुसार जाट लोग हैहयवंशी क्षत्रियों की सन्तानें हैं जो कभी 'जात' अथवा 'सुजात' के नाम से जानी जाती थी। आप यदु तथा जाट शब्दों में ध्वनि–साम्य भी मानते हैं। उनके मतानुसार यदुओं के एक हैहय कबीले की एक शाखा का नाम 'जात' या 'सुजात' था। जाटों का सम्बन्ध इन्हीं जात या सुजात क्षत्रियों के साथ था।[43]

जाट जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक मान्यता यह भी है कि 'जट' नामक एक सेनाध्यक्षों के अधिपति के नाम पर पैदा हुई हैं। एक प्राचीन कथानुसार ब्रह्मा ने स्वामी कार्तिकेय को अनेक वस्तुएँ भेंट की थी, उनमें एक 'जट' नामक सेनाध्यक्षों का स्वामी भी था। उसी के नाम पर 'जाट' नाम चलने लगा। पौराणिक गाथा होने के कारण इसका ऐतिहासिक सत्य सन्देह से परे नहीं है।[44]

एक और मान्यता के अनुसार शिवस्त्रोत नामक एक प्राचीन ग्रन्थ में परमेश्वर का एक नाम 'जट' भी है। इसी जट से जाट जाति का उद्‌भव हुआ था। महाभारत के अनुशासन पर्व के अध्याय 17 के श्लोक 89 में कहा गया है–

महानखे, महारोमा, महाकोशी, महाजटाः।
प्रसन्नश्च, प्रसादश्च, प्रत्ययो गिरि साधनः।

अर्थात् बडे–बडे नाखूनों, बडे–बडे बालों,। महाकोश, लम्बी जटाओं वाला प्रसन्नमुख, प्रसाद (उल्लास) प्रत्यय विश्वसनीय और पर्वत पर निवास वाला आदि परमात्मा के विशेषण हैं। उसका असली नाम 'जट' है।[45]

निष्कर्ष

उक्त प्रचलित मतों तथा उनकी आलोचना–प्रत्यालोचनाओं के प्रकाश में किसी निश्चित मत का प्रतिपादन करना बहुत ही दुष्कर कार्य है लेकिन इन मतों के आधार पर हम शोध से सम्बन्धित कतिपय मूल प्रश्नों के सम्बन्ध में स्वयं एक औचित्यपूर्ण मत का निर्धारण तो कर ही सकते हैं।

(i) जाट जाति कितनी प्राचीन है?

(ii) जाट शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई?

(iii) जाटों का मूल स्थान कहाँ था?

(i) प्राचीन भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में क्रमबद्ध जानकारी सिकन्दर के भारत पर आक्रमण के पश्चात् से ही उपलब्ध है। तत्कालीन यूनानी इतिहासकारों तथा पाणिनी ने पंजाब में निवास करने वाली वीर जातियों के संघों का विस्तृत उल्लेख किया है। इस तथ्य को भी प्रायः सभी विद्वानों का समर्थन प्राप्त है, कि इन्हीं जातियों के लोग जाटों के पूर्वज थे। इसका अर्थ यह होता है, कि जाटों की पूर्वज, ये जातियाँ सिकन्दर के भारत पर आक्रमण से बहुत पहले से यहाँ निवास कर रहीं थीं। उनके द्वारा विकसित राजनैतिक संघों की प्रणाली इस तथ्य का प्रमाण है, कि वे इस प्रदेश में सिकन्दर के पूर्व बहुत काल से निवास करते आ रहे थे।

आर्यों के शारीरिक गठन से जाटों के शारीरिक गठन की समानता भी विद्वानों ने स्वीकार की है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जब तक यह सिद्ध न कर दिया जाए कि जाटों का शारीरिक गठन किसी अन्य प्राचीन जाति के समान है, जाट कम से कम उतने प्राचीन तो हैं ही जितनी की आर्य जाति।

(ii) जाट जाति ने स्वयं के संबोधन हेतु 'जाट' शब्द को क्यों चुना ? इस सम्बन्ध में भी विद्वानों ने विभिन्न मत प्रस्तुत किये हैं। इस सम्बन्ध में मुख्य रुप से निम्न धारणायें प्रस्तुत की गई हैः–

(अ) अन्य जातियों के नामों की समानता के आधार पर नामकरण।

(ब) राजाओं के नामों के आधार पर नामकरण।

(स) पौराणिक कथाओं के आधार पर नामकरण।

(द) ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर नामकरण।

(अ) कतिपय विद्वानों ने यूरेशिया के विभिन्न भागों में फैली हुई जातियों जैसे–यूति, येथा, गोथ, यूची, गिट, जेटा आदि शब्दों के आधार पर ही जाट शब्द को व्युत्पन्न स्वीकार किया है, किन्तु ये समानताएँ सतही हैं तथा जाट शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में अधिक ठोस आधार नहीं बन सकतीं।

(ब) इस सिद्धांत के अन्तर्गत जाटों को अनेक राजाओं के नामों से सम्बन्धित किया गया। उनका सम्बन्ध सम्राट यत् की मृत्यु से जोडा गया है। एक राजपूत राजा द्वारा एक गुर्जर सुन्दरी से विवाह कर लिये जाने पर इन्हीं की संतान जाट कहलाने लगी, ऐसी कथा भी उपलब्ध होती है।

(स) इस वर्ग में मुख्य रुप से जाटों के नामकरण के सम्बन्ध में दो विचारधाराओं का उल्लेख मिलता है। प्रथम जठरोत्पत्ति का सिद्धान्त तथा द्वितीय शिव की जटाओं से उत्पत्ति के कारण जाट शब्द के नामकरण का सिद्धान्त राजाओं तथा पौराणिक कथाओं के आधार पर नामकरण वस्तुतः किसी जाति की स्वयं की प्राचीनता सिद्ध करने की बलवती इच्छा का ही परिणाम होती है अतः इन आधारों का भी जाट जाति के नामकरण से प्रमाणिक सम्बन्ध नहीं है।

(द) महान एवं शक्तिशाली जातियों के नामकरण उनके कर्म अथवा ऐतिहासिक विकास के आधार पर होना कोई नई बात नहीं है। वस्तुतः गिरीश चन्द्र द्विवेदी द्वारा प्रतिपादित जाटों के नामकरण सम्बन्धी यह मान्यता अधिक उपयुक्त जान पडती है कि साम्राज्यवादी शक्तियों का सम्मिलित प्रतिरोध करने हेतु पंजाब तथा भारत के उत्तरी–पश्चिमी पर्वतीय सीमांत के विभिन्न गणों ने परस्पर एक शक्तिशाली संघ का निर्माण किया और उसे एक समान नाम 'जाट' प्रदान किया। सम्भावना यह भी है कि इन संघों ने भगवान शिव को उपास्य देव स्वीकार किया हो। इसी कारण शिवजी की जटाओं से जाटों की उत्पत्ति को जाट लोग ही स्वीकार करते हैं।

(iii) जाटों के मूल स्थान के सम्बन्ध में दो मत प्रचलित हैः

(अ) भारत के बाहर मध्य एशिया अथवा यूरोप उनका मूल स्थान था।

(ब) पंजाब तथा अफगानिस्तान का पहाडी क्षेत्र जो तत्कालीन भारत का सीमान्त था, उनका मूल स्थान था।

वर्तमान पंजाब, हरियाणा, एवं पाकिस्तान का पंजाब प्रान्त राजस्थान के उत्तरी जिले तथा उत्तरप्रदेश के पश्चिमी जिले, जाटों के केन्द्र स्थल हैं। यह सही है कि इस क्षेत्र में से कुछ इलाको में जाटो ने ऐतिहासिक कारणों से अपना प्रसार किया किन्तु लगभग इन्ही क्षेत्रों में वे आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व सिकन्दर के आक्रमण के समय भी निवास करते आ रहे थे।

यह इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि जाट जाति अपनी मातृभूमि से अनन्य प्रेम करती थी तथा विदेशी आक्रान्ताओं के भारी दबाव के कारण भी उसने अपना मूल स्थान नही छोडा।

(i) कतिपय विद्वानो द्वारा उन्हे, शक, हूण तथा विदेशी जातियों की संतान बतानें का प्रयत्न किया गया है। कुछ इतिहासकार जाटों को अक्सस नदी के तटवासी, कुछ इन्हे सीथिया, बेक्ट्रिया तथा स्केण्डीनेविया से आया हुआ बताते हैं। इन विद्वानों के अनुसार ईसवी पूर्व प्रथम और द्वितीय शताब्दियों में जाट अफगानिस्तान से आकर भारत में बसे।

किन्तु यदि हम जाटों को आर्यो की संतान स्वीकार करते है तो उनका मूल निवास स्थान वही होना चाहिए जो आर्यो का आदि स्थान था। विदेशी भाषा समूहों का जाटों की भाषा पर कोई

प्रभाव न होना इसी तथ्य की ओर इंगित करता है कि यदि वे किसी जाति से सम्बन्धित है तो आर्य जाति से ही हैं।

(ii) वस्तुतः जाटों का मूल स्थान तथा उनकी उत्पत्ति का अध्ययन प्राचीन आर्यो के सम्बन्ध मे नये तथ्य प्रदान कर सकता है। स्पष्ट ऐतिहासिक एवं भाषा वैज्ञानिक प्रमाणों के अभाव में वर्तमान में यही स्वीकार करना तर्क संगत है, कि जाट जाति प्राचीनकाल से ही पश्चिमी पंजाब के मैदानी क्षेत्र तथा कन्दार (गांधार) एवं काबुल के पर्वतीय क्षेत्र में निवास करती थी। निकटस्थ क्षेत्रों की ऐतिहासिक घटनाओं का प्रभाव जाटों पर भी समय–समय पर पडा किन्तु उन्होने सीमान्त की अन्य जातियों के समान उस प्रदेश को न त्याग कर वहीं ढृढतापूर्वक जमे रहकर आक्रान्ताओं से लोहा लिया। इस जाति पर पश्चिम तथा उत्तर की ओर से विदेशी आक्रान्ताओं के आक्रमण हुए किन्तु इसके पूर्व वह भारतीय साम्राज्यवादियों से लोहा लेती रही। भारतीय साम्राज्यवादियो ने जाट जाति को भारत के बाहर मध्य एशिया तथा यूरोप के देशों तक पहुँचाने के कारण प्रदान किए जबकि विदेशी आक्रान्ताओं के अन्य क्षेत्रों में जाटों के प्रसार को गति प्रदान की।

जाट और उनका आरंभिक इतिहास

ईसाई सम्वत् की आरंभिक शताब्दियों में मध्य एशिया से स्थानान्तरण की अनेक लहरें तो डूब गईं, परन्तु उनमें से कुछ ने जाटों तथा अन्य भारतीय मूल जातियों को सिन्धु नदी के तट पर ला पटका। सिंधु का दुर्गम्य रेगिस्तान अब उनका नया घर बन गया। अशुद्ध जातियों के साथ सम्पर्क स्थापित करने, अपनी शास्त्र विरोधी जीवन पद्धति तथा जाति के नियमों और ब्राह्मणों के उपदेशों के प्रति उदासीनता के कारण उनकी जाति समाप्त हो गई तथा काबुल के गरीब हिन्दुओं की भाँति उनकी गणना आधे मलेच्छों में की जाने लगी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कट्टर हिन्दु, काबुल के इन गरीब हिन्दुओ को आधा मुसलमान मानते थे। सम्भवतः यही कारण है कि ह्वानच्वांग ने 7वीं शताब्दी के सिन्ध के राजा को शूद्र बताया था।[46]

अलबरूनी ने भी 11 वीं शताब्दी में जाटों की सामाजिक पद सोपान में स्थिति ऊँची नही बताई थी। वहाँ उन्होने खेती का धन्धा अपना लिया था तथा वे अपने पुराने जनजातीय संगठन के अधीन रहतें थे, जिसे बाद में राजतंत्र के द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया था।

मुजमल–उल–तवारीख के लेखक ने एक रोचक कहानी का उल्लेख किया है कि सिन्ध के जाटों और मेदों ने राजा दुर्योधन के दरबार में एक संयुक्त प्रतिनिधि मंडल भेजा जिसमें यह अनुरोध किया गया कि वह उन पर शासन करने के लिए शासक की व्यवस्था करें। ''जाट और मेद'' सिन्ध में सिन्धु नही के मुहाने पर रहते थे। मेदों का जाटों पर प्रभुत्व कायम था, वे उन्हें अनेक प्रकार से परेशान करते थे, जिसके फलस्वरुप उन्हें पहान नदी (पंजनद नदी) के उस पार बसने के लिए बाध्य होना पडा। जाट नावों के प्रयोग से अभ्यस्त थे, अतः वे नाव से नदी पार करके मेदों पर आक्रमण करने लगे। मेदों के पास भेडें हुआ करती थीं। इन आक्रमणों के द्वारा जाटों ने मेदों को अत्यधिक दुर्बल बना दिया, उनमें से बहुतों को मौत के घाट उतार दिया तथा उनके देश में खूब लूट–मार की। इसके पश्चात् मेदों ने जाटों की अधीनता स्वीकार कर ली।

''एक जाट ने मेदों की उस स्थिति को देखकर जो उनकी उस समय हो गई थी, अपने कबीले के लोगों को समझाया कि एक समय था जब मेद जाटों पर आक्रमण करते थे और उन्हें परेशान करते थे तथा जाटों ने भी बदला लेकर मेदों के साथ वही किया।

उसने उनके मस्तिष्क पर इस प्रभाव को छोडने का प्रयास किया कि दोनों को यह परामर्श दिया कि उन्हें अपने कुछ सरदार राजा दहरत (धृतराष्ट्र) के पुत्र दजूशन (दुर्योधन) के पास भेजने चाहिए और उनसे यह अनुरोध करना चाहिए कि वह उनके लिए एक राजा नियुक्त कर दे, जिसकी सत्ता को दोनों जन–जातियों के समूह स्वीकार कर लें। कुछ विचार विमर्श के उपरान्त उन्होंने उस पर अमल करना स्वीकार कर लिया तथा सम्राट दजूशन ने शक्तिशाली राजा जयद्रथ की पत्नि तथा अपनी बहन दसाल (दुशाला) को उनका शासक नियुक्त कर दिया। दसाल ने वहाँ जाकर गाँवों और नगरों के शासन का दायित्व अपने हाथों में ले लिया उस समय, वहाँ कोई ब्राह्मण अथवा बुद्धि–व्यवसायी व्यक्ति उनके देश में नहीं था। फलतः उसने अपने भाई को सहायता के लिए लम्बा पत्र लिखा। उसने समूचे हिन्दुस्तान से 30,000 ब्राह्मण इकट्ठे किए तथा उन्हें उनके सामान और आश्रितों के साथ अपनी बहन के पास भेज दिया।''[47]

यद्यपि यह कहानी अक्षरशः सही नहीं है तथापि उससे अस्पष्ट रुप से इस बात का संकेत अवश्य मिलता है कि सिन्ध में शुद्ध आर्यों का मुख्यतः ब्राह्मणों का देश के मध्यवर्ती क्षेत्र से स्थानान्तरण हुआ था सम्भवतः किसी प्रबुद्ध राजा ने उन्हें आमंत्रित किया था ताकि उसके प्रजाजनो एवं सजातीय लोगों को अज्ञान एवं अधर्म से मुक्त रखा जा सके।

शायद ब्राह्मणवाद के प्रख्यात नगर से इस बात का संकेत मिलता हो कि वहाँ सबसे पहले ब्राह्मण आकर बसे थे। स्थानीय राजाओं के संरक्षण में उनकी पर्याप्त उन्नति हुई, यहाँ तक कि वे इतने शक्तिशाली हो गए कि दसवीं शताब्दी में दाहिर के ब्राह्मण पिता चच ने अपने स्वामी राजा साहसीराय II से उसकी सुन्दर परन्तु बेवफा रानी सुहान्दी की सहायता से जो उससे प्रेम करने लगी थी, उसका राजपाट छीन लिया। उसने औपचारिक रुप से उसकी विधवा रानी से विवाह कर लिया तथा 40 वर्षो तक वह वहाँ शासन करता रहा। चच ने एक बुद्धिमान एवं प्रबुद्ध शासक की ख्याति अर्जित की। परंतु वह जाटों का प्रबल शत्रु था, उसने अधिकांश जाटों की स्थिति 'भूदास' जैसी कर रखी थी। उसने जाटों और लुहारों को काफी परेशान किया, उनके सरदारों को उसने बन्दी बनाया उनमें से कुछ को उसने बंघक बनाकर ब्राह्मणावाद के किले में रखा।

उसने उन्हें निम्न शर्तो को मानने के लिए विवश किया – ''वे अपने पास कभी तलवार नहीं रखेंगे, नकली तलवारो को वे रख सकते थे, उनके अधोवस्त्र शाल, मखमल और रेशम के नहीं हो सकते थे, उन्हें अपने घोडों पर जीन कसने की भी इजाजत नहीं थी तथा उनके लिए अपने सिरों और पैंरो को नंगा रखना अनिवार्य था, बाहर जाते समय उनके लिए यह भी आवश्यक था कि वे अपने कुत्तों को अपने साथ ले जाये, उनका यह भी कर्तव्य था कि ब्राह्मणावाद के सरदारों की रसोई के लिए लकडी के ईधन की व्यवस्था करें, मार्गदर्शको और गुप्पतचरों के प्रबंध का दायित्व भी उनको सौंपा गया था तथा उनसे इन पदो पर नियुक्त होने के उपरान्त शासक के प्रति निष्ठा की अपेक्षा की जाती थी।''[48] जब मोहम्मद बिन कासिम ने दाहिर के राज्य पर आक्रमण किया तो पश्चिमी सीमान्तो के जाटों ने आक्रमणकारी का साथ दिया जबकि पूर्व के लोंगो ने दाहिर के साथ आक्रमणकारी के विरुद्ध युद्ध लडा।[49]

अपनी विजय के पूर्ण होने पर मुहम्मद बिन कासिम ने दाहिर के एक भूतपूर्व मंत्री से जिसको उसने बजीर बना लिया था, पूछा कि पिछले राजा के समय में जाटों की क्या स्थिति थी ? उसने उत्तर दिया कि उन्हें अच्छे वस्त्रों को पहनने की अनुमति नहीं थी, वे काली लुंगी पहनते थे तथा अपने कंधों पर मौटा कपडा डालते थे। वे अपने कुत्तों को अपने घर से बाहर जाते समय अपने साथ रखते थे ताकि उन्हें पहचाना जा सके। उनका यह काम था कि एक कबीले का दूसरे कबीले के साथ सम्पर्क स्थापित करायें.....कारवां दिन–रात उनके मार्ग–दर्शन में चला करते थे। उनमें छोटे और बडे कोई विभेद नहीं था। उनमें जंगली आदमी की प्रवृति है और वे अपने स्वामी के विरुद्ध हमेशा बगावत करते थे। वे सडकों पर लूटमार करते थे तथा देवल के प्रदेश में सभी उनकी इन डकैतियों में उनका साथ देते थे।[50]

शासको के परिवर्तन से उनके जीवन में कोई सुधार नहीं हुआ, मोहम्मद बिन कासिम ने उनके सम्बन्ध में पुराने नियमों को कायम रखा। कैकन देश (संम्भवतः दक्षिण–पूर्वी अफगानिस्तान)[51] पर जाटों का स्वतंत्र आधिपत्य था जिसे बाद में उनसे अरब सेनापति अमरान बिन मूसा ने खलीफा अल–मुतासिम–बी–इल्लाह के शासन काल (833–81) में छीन लिया।[52]

इसी शासन काल में जाटों के विरुद्ध एक और अभियान भेजा गया उन्होंने हजारे की सडको पर आधिपत्य स्थापित कर रखा था ..... सडको पर उनका आतंक कायम था तथा रेगिस्तान की ओर जाने वाली सभी सडको पर चौंकिया थी 25 दिन की घमासान लडाई के बाद उन पर काबू पाया गया। युद्ध में उनके 27 हजार लोग बन्दी बनाए गये इन लोगो में युद्ध के लिए जाते समय तुरई बजाने का रिवाज था।[53]

औरंगजेब के समय के पूर्व के इतिहासकारों में जाटों का थोडा–बहुत उल्लेख मिल जाता है, परन्तु उनका व्यवहारिक महत्व कुछ नहीं है। उससे उनकी राष्ट्रीय विशिष्टताओं की जानकारी अवश्य हो जाती है। इन सभी कालों में – चाहे वह गजनी के सुलतान महमूद के विरोध में हो अथवा नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के विरुद्ध जाटों ने प्रतिकूलतम परिस्थितियों के होते हुए भी अथवा महान विजेताओं द्वारा स्थापित आतंक की चिन्ता न करते हुए पीछे हटती सेनाओं के पिछवाडे पर आक्रमण किया है। यदि मुकाबला हुआ तो उन्होंने दृढता एवं शौर्य को प्रदर्शित करने में कोई कौताई नही बरती,और ऐसा करते समय उन्होनें रणक्षेत्र में होने वाली तबाही का अथवा युद्ध में परास्त होने के उपरान्त अपनी नियति में लिखी दुर्दशा पर कोई ध्यान नहीं दिया। अपने शत्रुओं की तलवारों द्वारा सिखाए गए भयानक पाठों के सन्दर्भ में उनकी स्मरण–शक्ति आश्चर्यजनक रुप से दुर्बल रही है।

''जब महमूद गजनबी सोमनाथ से लौट रहा था, जब जाटों ने उसकी सेनाओं पर आक्रमण करने का दुस्साहस किया था। उसका सत्रहवां आक्रमण उनको दंडित करने के उद्देश्य से ही हुआ था। उसे इस अवसर पर एक बडा सामुद्रिक युद्ध लडना पडा था जिसमें उसने अपनी भूमि पर लडे गए युद्धों के समान ही प्रतिभा का प्रदर्शन किया था। उसने एक बडे सैन्य दल को मुल्तान की ओर बढने का आदेश दिया और जब वह वहाँ पहुंच गया, उसने एक हजार चार सौ नौकायें बनवाई, जिनमें प्रत्येक में तीन मजबूत लोहे के नोकदार बरछे लगे थे जिनमें से एक नौका के आगे की ओर लगा था और दो अगल–बगल में लगाये गये थे ताकि जो भी उनके संम्पर्क में आए वह अनिवार्य रुप से नष्ट हो जाए। प्रत्येक नाब में 20 धनुषधारी थे, जो तीर–कमान, हथगोले से लैस थे और इस प्रकार उसने जाटों पर आक्रमण करने की योजना बनाई।जाटों को जब इस सम्भावित आक्रमण की सूचना मिली तो उन्होंने अपने परिवारों को द्वीपों पर भेज दिया और संघर्ष के लिए अपने को तैयार कर लिया। कुछ विद्वानों के अनुसार उन्होंने चार हजार और कुछ के अनुसार आठ हजार नौकाओं के साथ जो सैनिकों और शस्त्रों से भली–भाँति सुसज्जित थी, मुसलमानों के आक्रमण का प्रतिरोध किया। दोनों के युद्ध–पोतों का मुकाबला हुआ और भयंकर युद्ध हुआ। जाटों की प्रत्येक नौका जब मुस्लिम जंगी बेडे के सम्पर्क में आई तब वह आगे निकली हुई नोकदार बरछियों से टकराकर चूर–चूर हो गई और समुद्र में डूब गई। इस प्रकार अधिकांश जाट भी डूब गए और जो शेष बचे रहे, उन्हें तलवार से मार दिया गया ।सुल्तान की सेनाएं, इसके पश्चात उन स्थानों पर गई जहाँ उनके परिवार के सदस्य छुपे हुए थे। उसने इन लोगों को बंदी बना लिया।''[54]

1192 ई. में पृथ्वीराज की पराजय के उपरान्त हरियाणा के जाटो ने जटवान नामक एक योग्य सरदार के नेतृत्व में जनजातीय विद्रोह का झण्डा बुलंद किया और उन्होने हांसी में मुस्लिम सेनापति की नाकेबन्दी कर दी। इसकी सूचना पाने के उपरान्त कुतुबुद्दीन ने एक रात में चालीस

मील का रास्ता तय किया। जटवान ने अपनी हांसी का घेरा हटा लिया और उसने एक दृढ संघर्ष की तैयारी की।

ताज–उल–मासिर के लेखक ने लिखा है–''सेनाओं ने इस्पात की दो पहाडियों की भाँति एक–दूसरे पर आक्रमण किया तथा बागड़ देश के सीमान्तों पर स्थित युद्ध –क्षेत्र योद्धाओं के रक्त से रंग–विरंगा हो गया जटवान के बहुदेववाद एवं सर्ववाद के झण्डे को शक्तिशाली हाथों ने नीचें गिरा दिया।''[55]

1530 ई. के आस–पास जाटों ने सुनाम और समाना के इर्द–गिर्द भटिट्यों, मीनाओं तथा अन्य जनजातियों के साथ मिलकर मंडलों की रचना की, उन्होने खिराज देना बंद कर दिया और सड़कों पर लूटपाट करने लगे। सुल्तान मोहम्मद –बिन–तुगलक ने उनके खिलाफ सैनिक कार्यवाही की, उसने उनके मंडलों को तोड़ दिया, उनसे उनकी पुरानी भूमि छीन ली तथा उन्हें तितर–बितर कर दिया।[56] तैमूर ने अपने द्वारा किए गए जाटों के दमन पर सन्तोष व्यक्त किया है। उसने जाटों के सम्बन्ध में कहा है कि वे हष्ट–पुष्ट होते थे, सूरत–शक्ल में वे राक्षसों की तरह थे और संख्या में वे चींटियों अथवा टिड्डीयों की भाँति थे, व्यापारियों और राहगीरों के लिए वे महामारी की भाँति थे।''[57]

बाबर ने जाटों को नील–आब और भेरा पर्वतों के बीच निवास करते हुए देखा था, जहाँ उन्होने गक्कर सरदारों का प्रभुत्व स्वीकार कर लिया था।[58] इस समय तक उनकी हुल्लड़ करने वाली तथा लूटमार करने की आदतें पूर्ववत कायम थी। उसने लिखा है ''यदि कोई हिन्दुस्तान जाए तो जाटों और गूजरों के असंख्य झुंड पहाड़ो और मैदानों बैलों और भैसों पर चढ़े हुए नजर आएंगे। ये बद– शकुन वाले लोग बिना किसी उद्देश्य के लोगों को सताते है। जब हम स्यालकोट पंहुचे उन्होने हल्ला मचाकर उन गरीबों और दरिद्रों को जो नगर से निकलकर हमारे खेमे में आ रहे थे, हमला कर दिया तथा उनके कपडे उतारकर उन्हे नंगा कर दिया। मैंने इन चोरों को पकडवाया और उनमें से दो या तीन के कटवाकर टुकड़े करवा दिए।''[59]

बाबर की मृत्यु और शेरशाह के सिंहासनरोहण के बीच के गढबड़ी के समय में कोट कोबुलाह के एक बहादुर डाकू सरदार फथखान जाट ने लाखी जंगल का समूचा क्षेत्र नष्ट कर दिया तथा लाहौर से पानीपत तक सम्पूर्ण मार्ग पर अपना आतंक स्थापित कर दिया। शेरशाह की तरह पंजाब के सूबेदार हैबत खां नियाजी ने एक कठोर लडाई के बाद उसका दमन करने में सफलता प्राप्त की।''[60]

सूर बंशीय सुल्तानों ओर मुगलों के मजबूत शासन तंत्रो में जाटों के लिए अपने कानून–विरोधी क्रिया–कलापों को निष्पादित करने की गुंजाइश बहुत कम थी। यह स्थिति औरंगजेब के समय तक चलती रही। फलतः वे उस समय तक खामोश बैठे रहे जब तक कि सम्राट के धार्मिक उत्पीडन और प्रांतीय सूबेदारों के कुशासन ने उन्हें विद्रोह करने के लिए नहीं उकसाया।

मुगलों का भारत आगमन

14 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यद्यपि दिल्ली सल्तनत अत्यन्त दुर्बल हो चुकी थी फिर भी मंगोल आक्रमण का उसे तनिक भी भय नहीं था मध्य एशिया के मंगोलों ने इस्लाम अंगीकार कर लिया था और महान तुर्की योद्धा तिमूर ने एक शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित कर लिया था समरकन्द उसकी राजधानी थी शताब्दी के अन्त में इसी व्यक्ति ने उत्तर पश्चिमी सीमाओं को पार करके दिल्ली सल्तनत पर आक्रमण किया देश को जितना कष्ट और दुख तिमूर ने पहुँचाया उतना उसके पहले अथवा बाद के किसी आक्रमणकारी ने एक हमले में नहीं पहुँचाया।[61]

मध्य एशिया में दो महान जातियों का उत्कर्ष हुआ। तुर्किस्तान के तुर्क और मंगोलिया के मंगोल जिनका विश्व इतिहास पर गहरा प्रभाव पडा। ये दोनो जातियां बडी ही वीर, साहसी, और लडाकू थीं। तुर्क अमीर तिमूर तथा मंगोलो में चंगेज खाँ अत्यधिक प्रसिद्ध नाम हैं। इन दोनो ने पंजाब में अपनी सत्ता स्थापित कर ली। लोदी वंश के बाद दिल्ली में नये राजवंश का उदय हुआ जो भारतीय इतिहास में ''मुगलवंश'' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस वंश का संस्थापक ''बाबर'' था, जिसकी धमनियों में तुर्क और मंगोल दोनों का रक्त प्रवाहित हो रहा था, क्योंकि बाबर पिता की तरफ से तिमूर का पाँचवां वंशज था, और अपनी माता की तरफ से वह चंगेज खाँ का चौदहवाँ वंशज था।[62]

बाबर

मुगलवंश का संस्थापक जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर था, जिसका जन्म 14 फरवरी, 1483 ई. को फरगना में हुआ था। उसका पिता उमरशेख मिर्जा वहाँ का शासक था। बाबर पितृ–पक्ष की ओर से वह तैमूर का पाँचवां वंशज था। और अपनी माता कुतलुग निगार खानम की ओर से वह चंगेज खां का चौदहवां वंशज था। उसका कुटुम्ब तुर्की जाति के चुगताई विभाग के अन्तर्गत आता था, किन्तु आमतौर पर वह मुगल ही माना जाता था। उमरशेख मिर्जा असन्तोषी व्यक्ति था। फरगना के अल्प साधनों से वह संतुष्ट नहीं था। फरगना माबरुन नहर अथवा ट्रान्स–ऑक्सियाना क्षेत्र का उत्तरी भाग था, जो अब रुस के तुर्की प्रान्त का एक हिस्सा है।

अपने बडे भाई अहमद मिर्जा से जो समरकन्द और बुखारा का शासक था उसकी नहीं बनती थी और उासके समृद्ध राज्य से ईर्ष्या करता था अपने साले महमूद खाँ (ताशकन्द,सैमर और शहरुखिया का शसक) और अहमद खाँ (आाशकन्द और येल्हुज के बीच का शासक था) से भी उसकी नहीं बनती थी। जब तक उसके श्वसुर युनुसखाँ जीवित थे विरोधियों को उसकी सीमा तक आने का साहस नहीं हुआ। इनके मरते ही (1486–87ई.) अहमद मिर्जा और महमूदखाँ ने फरगना पर संयुक्त आक्रमण (1494 ई.) का आयोजन किया। अहमद मिर्जा ने राजधानी नगर अन्दिजान पर आक्रमण किया और महमूद खाँ फरगना के उत्तर में स्थित अख्शी के पहाडी किले की ओर बढा। राजधानी को अपने बडे लडके बाबर की देख रेख में छोडकर उमरशेख अपने साले महमूदखाँ का सामना करने के लिए बढा। एक दिन जब उमर शेख अपने कबूतरों की उडान का मजा ले रहा था

तो उसके ऊपर मकान गिर पडा और तुरन्त ही उसकी मृत्यु हो गयी (8 जून, 1494 ई.)। अपने पिता की अकाल और आकस्मिक मृत्यु के कारण बाबर 11 वर्ष और 4 माह की अल्पआयु में गद्दी पर बैठा।[63]

1503 ई. में अपने घुमक्कड जीवनकाल में जब वह दिखकाट नामक ग्राम के मुखिया का अतिथि था तो मुखिया की 111 वर्षीय माता से उसने तैमूर के भारत पर आक्रमण की कथा सुनी। यह वृत्तान्त सुनकर उसकी कल्पना प्रज्वलित हो उठी और अपने पूर्वज के भारत आक्रमण को किसी दिन दुहराने का संकल्प लिया। लेकिन दक्षिण में अपने अपने भाग्योदय की खोज के लिए उसने तभी निश्चय किया जब पश्चिमोत्तर प्रदेशों में उसकी आकांक्षा –लता अन्तिम रुप से मुरझा गई। जब वह काबुल का राजा था उसने भारत–भूमि पर चार अभियान किये। ये अभियान उसने शत्रु की स्थिति और शक्ति को समझने के उद्देश्य से ही किये थे। 1519 ई. के प्रारम्भ में उसने भारत में प्रथम अभियान किया। यह यूसुफजई जाति के विरुद्ध किया गया था, उन्हें दण्ड देने के पश्चात् बाबर ने बाजौर के दुर्ग पर अधिकार कर लिया।

यहाँ से वह झेलम के तटवर्ती भेरा नामक स्थान की ओर बढा और उसे भी अपने अधिकार में कर लिया। यहाँ की जनता ने भी बिना किसी प्रतिरोध के पराजय स्वीकार में कर ली। खुशाब पर भी अधिकार हो गया। बाबर ने अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि यहाँ के निवासियों को किसी प्रकार की हानि न पहुँचाये। उसने पंजाब को अपना ही प्रदेश समझा क्योंकि 1398 ई. में तैमूर ने इसे अधिकृत किया था। बाबर ने लिखा है ''क्योंकि हिन्दुस्तान पर अधिकार करने की भावना मेरे हृदय में सदां से थी और ये कुछ देश किसी समय तुर्को के आधिपत्य में रहे थे,मैंने इन्हें अपना ही माना और अपने अधिकार में करने का संकल्प भी किया, यह चाहे शान्ति से हो या शक्ति के प्रयोग सें।'' इन्ही कारणों से पहाडी लोगों के साथ सदव्यवहार करना अनिवार्य था और उसने आज्ञा दी कि ''इनके पशु–पक्षियों को भी हानि न पहुँचाओ, इनकी किसी वस्तु को नष्ट मत करों।'' फिर उसने अपना राजदूत यह माँग प्रस्तुत करने के लिए दिल्ली भेजा कि '' जो प्रदेश–प्रचीन समय में तुर्कों द्वारा अधिकृत थे, वे अब मुझे सौंप दिये जायें।'' किन्तु दौलत खाँ लोदी ने उसके राजदूत को लाहौंर में बंदी बना लिया और बावर को अपने सन्देश का उत्तर प्राप्त न हुआ। भेरा को हिन्दूवेग के उत्तरदायित्व में छोड़कर वह काबुल चला गया। वह अभियान स्थायी महत्व का सिद्ध न हो पाया, क्योकि बाबर के वापस जाते ही जनता ने तुरन्त ही हिन्दूबेग के पैर उखाड़ दिये।[64]

सितम्बर 1519 ई. में बाबर भारत की ओर पुनः उन्मुख हुआ और खैवर दर्रा से आगे बढ़ा फिर उसने पेशावर की किलेवंदी कर भारत के विरूद्ध आगामी सैनिक कार्यवाहीयों का केन्द्र बनाने का प्रयत्न किया। किन्तु लक्ष्य की पूर्ति किये बिना ही काबुल लौट गया, क्योंकि बदख्शां से उपद्रवों की सूचनाएँ आयी थी।

1520ई. में बाबर ने भारत पर आक्रमण करने के लिए तीसरा अभियान किया तथा बाजौर और भेरा नगर को पुनः अधिकृत कर लिया। 1522 ई. में कन्धार के सूवेदार मौलाना अब्दुल बकी के छलपूर्ण सहयोग से बाबर ने कंधार दुर्ग को जीतने में सफलता प्राप्त कर ली।

इसी समय बाबर को पंजाब के गवर्नर दौलत खाँ लोदी का निमंत्रण प्राप्त हुआ, क्योंकि दिल्ली के सुल्तान इब्राहीमलोदी और दौलतखाँ लोदी में मतभेद उत्पन हो गये थे 1524 ई. में बाबर ने यह निमंत्रण स्वीकार कर लिया और शक्तिशाली सेना लेकर लाहौर की ओर चल दिया, जब बाबर लाहौर के निकट पहुँच गया तो, दिल्ली की सेना ने आक्रमणकारी का मार्ग अवरुद्ध किया लेकिन बाबर की सेना के सामने दिल्ली की सेना बौनी साबित हुई। इसके बाद उसने लाहौर पर कब्जा कर लिया। आगे बढते हुए दीपालपुर पर भी अधिकार कर लिया। इस प्रकार पंजाब का बहुत–सा भाग बाबर के अधिकार में आ गया।[65]

आलम खाँ इब्राहिम लोदी का एक चाचा था जो दिल्ली राजसिंहासन का उम्मीदवार था। वह अपने भतीजे सुल्तान इब्राहीम के विरुद्ध आयोजित युद्ध में बाबर की सहायता पाना चाहता था। अब बाबर का दूसरा कदम इब्राहीम लोदी से संघर्ष करने का रह गया था। पंजाब विजय की अपेक्षा यह कार्य कठिन था, अतः बाबर ने इसके निमित्त हर प्रकार की आवश्यक तैयारियाँ आरम्भ कर दीं और लोदी उम्मीदवार आलमखाँ के प्रति पूरा ध्यान दिया, उसकी उपस्थिति निश्चय ही बडे राजनीतिक महत्व की थी। जैसे ही वह दिल्ली की ओर अग्रसर हुआ, उसे दिल्ली राजदरबार के अनेक सरदारों की ओर से सेना–सहायता के आश्वासन मिले। सम्भवतः इसी समय चित्तौड के राणा सांगा ने इब्राहीम पर सम्मिलित आक्रमण करने का प्रस्ताव भेजा। जब आक्रमणकारी की इच्छा स्पष्ट प्रतीत हो गयी, तो इब्राहीम ने एक विशाल सेना एकत्र की और वह पंजाब की ओर उससे युद्ध करने के लिए चल पडा। साथ ही दो प्रमुख दस्ते उसने हिसार की ओर भेज दिये। इनमें से एक को हुमायूँ ने मार भगाया। इसी प्रकार दूसरे दस्ते को मुगलों ने मार–पीटकर धकेल दिया। कुछ दूर और बढने के पश्चात बाबर पानीपत पहुँच गया और वहाँ उसने अपना शिविर डाल दिया। बाबर ने अपने आत्मचरित्र 'बाबरनामा' में गर्व के साथ लिखा है कि उसने इब्राहीम लोदी को केवल 12 हजार सैनिकों की सहायता से पराजित किया।

12 अप्रैल, 1526 ई. को दोंनो तरफ की सेनाएँ आमने–सामने आकर खडी हो गयीं, किन्तु आठ दिन तक किसी ने भी आक्रमण की शुरुआत नहीं की। 20 अप्रैल की रात्रि में बाबर ने अपने 4–5 हजार सैनिकों को आक्रमण करने के लिए अफगान शिविर की ओर भेजा, किन्तु उसे सफलता नहीं मिली और इस घटना ने इब्राहीम को प्रातःकाल ही पलटन बढाने के लिए प्रेरित किया।

21 अप्रैल को दोंनो पक्षों में युद्ध छिड गया। इब्राहीम ने अपनी सेना को तेज गति से आगे बढने की आज्ञा दे दी, किन्तु उसे बाबर की दुर्ग समान रक्षात्मक पंक्तियों के निकट अकस्मात ठहर जाना पड़ा। इब्राहीम के कमान में हिन्दुस्तान की सेना जी–तोड़कर युद्ध करती रही। प्रातःकाल से दोपहर तक युद्ध चला और बाबर की उत्कृष्ट युद्ध–व्यवस्था तथा सैन्य–संचालन शक्ति से इब्राहीम पर विजय पायी। इब्राहीम बहादुरी से लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। बाबर ने लिखा है, ''जब आक्रमण प्रारम्भ ुआ तो सूर्यनारायण ऊँचे चढ गये थे। युद्ध दोपहर तक चला, मेरे सैनिक विजयी हुए और शत्रु को चकनाचूर कर दिया गया। सर्वशक्तिमान परमात्मा की अपार अनुकम्पा से यह कठिन कार्य मेरे लिए सुगम हो गया और वह विशाल सेना आधे दिन में ही मिट्टी में मिल गयी।'' इस प्रकार बाबर इब्राहीम लोदी पर विजय प्राप्त कर हिन्दुस्तान का बादशाह बन गया।[66]

जाट–मुगल सम्बन्ध

अकबर ने निद्राजनक जादू, जहाँगीर की सुखद उदासीनता तथा शाहजहाँ की कोमल थपकियों के द्वारा उत्पन्न एक शताब्दी की मायावी निद्रा के उपरान्त भारत का हिन्दू यकायक सम्राट औरंगजेब के घृणित क्रिया – कलापों के द्वारा 17 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जाग्रत कर दिया गया। वह दिल्ली के सिंहासन पर विराजमान शासक को चाहे उनका सम्बन्ध विजातीय धर्म के साथ क्यों न हो, पृथ्वी पर भगवान की छाया मानने का अभ्यस्त था।''दिल्लीश्वरों वा जगदीशश्वरो वा'' की उक्ति उसके मानस में भली प्रकार जडें जमाएं हुई थीं। किन्तु अब जाग्रत हिन्दू को यह देखकर आश्चर्ययुक्त दुख हुआ कि हिन्दुस्तान का निष्पक्ष शासक इस्लाम का युद्धकारी प्रचारक बन गया। उसने पुराने और विस्मृत सभी तरीके फिर से अपना लिए है, जजिया फिर से लागू कर दिया गया, शाही देख–रेख में मन्दिरों को नष्ट करने तथा मूर्तियों को तोडने का काम तेजी के साथ चलता रहा, सब दिशाओं से गाडियां भर–भरकर टूटी हुई मूर्तियां आती रहीं और उन्हे दिल्ली और आगरा की जामा–मस्जिदों की सीढियों के नीचे दफनाया गया। सार्वजनिक पदों से हिन्दू वंचित कर दिए गये, एक अध्यादेश जारी किया गया जिसके द्वारा राजस्व विभाग से सभी हिन्दू लिपियों को हटा दिया गया। हिन्दूओं के धार्मिक मेलों पर पावन्दी लगा दी गई तथा उनके त्यौहारों के सार्वजनिक अनुष्ठानों पर प्रतिबन्ध आरोपित कर दिए गये। मुसलमान व्यापारी सीमा–शुल्क से पूर्णतः मुक्त कर दिए गये; जबकि हिन्दूओं पर वह पूर्ववत् बना रहा। हिन्दूओं को अपने मूर्तिपूजक धर्म को तिलांजलि देने के लिए राज्य द्वारा सहायता का प्रलोभन दिया गया। संक्षेप में, निष्ठुर हत्या को छोडकर हिन्दू प्रजाजनों के धर्म को परिवर्तित करवाने के लिए सभी उपाय प्रयुक्त किए गये।[67]

यह एक विचार को कठोरता तथा दृढता–पूर्वक ठोस रूप देने का प्रयास था, वह न तो किसी झक्कीपन से अनुप्राणित था और न उसे पापमय ही कहा जा सकता था। उसका कसूर यह था कि उसे सफलता नही मिल सकी, इस्लामिक भारत का उसका स्वप्न पूरा नही हो सका। तथापि इसी खुली शत्रुता के द्वारा औरंगजेब ने बिना जाने हिन्दू राष्ट्रवाद को पुनःजीवित कर दिया, जिसको उसके पूर्वजों ने अपनी क्रूर दया के द्वारा करीब – करीब मार दिया था। सुदूर महाराष्ट्र से एक नये जीवन का स्पन्दन आता दिखाई पडा, जिसने उत्तर की ओर चलकर हिन्दू–समाज के लकवा लगे अंग को भी झकझोर दिया। पंजाब में उत्पीडन के फलस्वरूप भावुक भक्तों का एक विनम्र सम्प्रदाय क्रूर सैनिकों में परिवर्तित हो गया।

गुरु गोविंद सिंह का सिख मत इसका वास्तविक प्रतिवाद था। धर्मान्धता की टक्कर धर्मान्धता के साथ थी, सिख मुस्लिम सेनाओं से युद्ध करने के लए जाते समय यह गाते थे '' खालसा वह है जो बन्द गाडी में बैठकर युद्ध करता है तथा जो एक खान को मारता है।'' औरंगजेब ने जसवंत की पत्नियों तथा उसके बालक पुत्र को बन्दी बनाने का प्रयत्न करके राजपूतों की आँखें खोल दीं।बहादुर दुर्गादास ने मार्ग प्रशस्त किया और राठौरों की तलवारें स्वतत्रंता और धर्म की रक्षा के

लिए म्यानों से निकल आयीं। उसके देशवासियों उसकी स्मृति को इन शब्दों के साथ श्रद्धांजलि दी है– '' यदि आसकरण के घर में दुर्गा का जन्म न होता, तो सभी का खतना हो जाता।[68]

''दमक–दमक ढोल बाजे दे–दे ठोर नागरा की।
आसो घर दुग्गा नहीं हो तो सुन्नयत हो जाती सारांकी।

1669 ई. में शाही राजधानी की छाया में रहने वाली एक दूसरी कट्टर जाति जाटों ने विद्रोह का झंडा बुलंद कर दिया। यह तो उस प्रचंड अग्नि–काण्ड की केवल एक चिनगारी मात्र थी जिसे समूचे भारत में सम्राट के धर्म–प्रचारक जोश ने प्रज्वलित किया था। मथुरा और आगरा जिलों के जाट एक लम्बे समय से दमन और कुशासन के शिकार हो रहे थे। मथुरा के हिन्दू मन्दिरों के ध्वंस से जिनकी ऊँची मीनारें आगरा की इमारतों का उपहास करती थी, उनकी धार्मिक भावनाओं को आघात पहुँचाती थी। उन्होनें अपने खेतों को तहस–नहस होते हुए, तथा अपनी बेटियों और बहुओं का मुसलमानों की काम–पिपासा की सन्तुष्टि के लिए अपहरण होते देखा था। मथुरा का एक फौजदार मुरशिद कुली खाँ सुन्दर स्त्रियां पाने के लिए गांवों पर हमला किया करता था। उसकी एक और कुख्यात आदत थी – हिन्दू पर्वो और मेलों में ''वह अपने माथे पर चन्दन लगाकर तथा हिन्दू की भाँति धोती पहनकर भीड़ में घूमा करता था और जैसे ही उसकी निगाह किसी ऐसी स्त्री पर पड़ती जिसका सौंदर्य चन्द्रमा से भी ईर्ष्या की भावना जाग्रत कर सकता था, वह उस पर भेडिये की तरह झपट पड़ता था, उसके आदमी उसे नाव में बैठा देते थे जिसे वह पहले से जमुना के तट पर तैयार रखते थे और वह उसे लेकर आगरा भाग आता।''[69]

औरंगजेब ने अब्दुलनवी नामक 'एक कट्टर इस्लामिक व्यक्ति' को मथुरा का गर्वनर नियुक्त किया। नवी भी उसी अर्थ में 'कट्टर धार्मिक' था जिस अर्थ में उसका स्वामी था। पदासीन होने के उपरान्त उसने पूरी निष्ठा के साथ सम्राट की मूर्तिपूजा के साथ उन्मूलन की नीति को क्रियान्वित करना आरम्भ कर दिया और इस प्रक्रिया में उसकी 12 मई 1669 ई को जाटो से लड़ाई हो गई। तिलपत के जमींदार गोकुला के नेतृत्व में विजयी विद्रोहीयों ने सादावाद के परगना में लूटपाट की। यह खतरा इतना गम्भीर था कि औरंगजेब ने उसे इस शर्त पर क्षमा करने की पेशकश की कि वह लूट का माल वापस कर दे। विद्रोहियों ने समझौता करने से इन्कार कर दिया जिसके परिणाम स्वरूप औरंगजेब ने रदनदाज खाँ हसनअलीखाँ तथा उच्च अधिकारियों के नेतृत्व में एक विशाल शक्तिशाली सेना विद्रोंहियों को कुचलने के लिए भेजी तथा स्वयं दिल्ली से प्रभावित क्षेत्र में इस अभियान का मार्गदर्शन करने के लिए गया हसनअली ने जाटों के तीन किलेबंद गाँवों पर हमला कर दिया।

हसन अली खाँ के अधीन 20,000 बरकंदाज सैनिक 1000 तीरंदाज 1000 बंदूकची 1000 अग्निबाण चालक तथा 25 तौपे तैनात की गई आगरा के फौजदार अमानुल्ला को भी हसनअली की सहायता आदेश करने का आदेश दिया गया विद्रोह को दबाने के लिए हसनअली ने तुरन्त कार्यवाही शुरू कर दी जनवरी 1670 ई. में गोकुला 20,000 जाट तथा अन्य अनुयाईयों के साथ तिलपत से 20 मील दूर स्थित एक स्थान पर मुगल सेना का मुकाबला करने के लिए पहुँच गया इस युद्ध में दोंनों पक्षों के लोग भारी संख्या में हताहत हुए यद्यपि इस युद्ध में जाटों ने अत्यधिक

वीरता का प्रदर्शन किया किन्तु प्रशिक्षित मुगल सैनिकों और उनके तोपखाने के आगे टिक नहीं सके। वे पीछे हटकर तिलपत आ गये हसन अली ने उनका पीछा किया और उनकी गढी को घेर लिया। यहाँ तीन दिन तक युद्ध होता रहा जिसमें युद्धरत पक्षों ने बंदूकों और तीरों का उपयोग किया तथा दीवारों को तोडकर वे तिलपत में घुस गये। फिर यहाँ खूनी युद्ध हुआ। जाटों ने इसमें दुःसाहसी वीरता तथा निर्भीक पराक्रम का प्रदर्शन किया वह दिन तो अनुभवी मुगलों का जरूर रहा किन्तु वे अपने 4000 जवान खो बैठे पराजित पक्ष से भी 5000 सैनिक मारे गये तथा 7000 बंदी बना लिए गये । गोकुला अपने दो साथियों (उदयसिंह सिंधी) सोंकी सहित हसनअली के पेशकार शेख रजीउद्दीक के प्रयासों से जीवत पकड लिया गया इनको तथा अन्य बंदियों को मुगलबादशाह औरंगजेब के समक्ष पेश किया गया।

औरंगजेब अत्यधिक क्रोधित था उसने कोतवाली (आगरा) के चबूतरे पर गोकुला और सिंधी की बोटी बोटी काट देने का आदेश दिया।

अपने नेता के पतन से गोकुला के अनुयाईयों की हिम्मत जबाव दे गई इस विद्रोह के अन्तिम अवशेष शीघ्र ही ध्वस्त हो गये तथा कुछ समय के लिए उस क्षेत्र में शांन्ति स्थापित हो गई गोकुला का खून व्यर्थ नहीं गया उसने जाटों के हृदय में स्वतंत्रता के नव अंकुरित पौधे को पानी दिया।[70]

जाट–मुगल सम्बन्ध (1707–1720)

औरंगजेब के जड़वुद्धि उत्तराधिकारीयों के शासन के दौरान चूड़ामन द्वित्तीय के नेतृत्व में जाट शक्ति ने आगे बढने के लिए एक लम्बी छलाँग लगाई।

मुगलों और जाटों के सम्बन्ध ने औरंगजेब की मृत्यु के बाद एक नया मोड़ लिया। उस समय तक सरकार और जाट, दोनों ही एक– दूसरे के प्रति कठोर विद्वेष और घृणा का प्रदर्शन करते नही चूकते थे। औरंगजेब की मृत्यु के बाद बदलती परिस्थितियों ने दोनों को अपने पुराने वैर–भाव को शिथिल करने के लिए वाध्य किया। इसके फलस्वरुप, मुगल शासन में पहली बार शाही मामलात मे जाटों की सक्रिय भागीदारी देखी जाने लगी। इस प्रवृत्ति की गहन प्रतिक्रिया तो होनी ही थी विशेषतया जाट इतिहास पर।

मुगल सरकार ने 1707 ई. के बाद औरंगजेब काल की कठोरता और अनम्यता को त्यागते हुए सामान्यता उदार नीति का अनुसरण किया। औरंगजेबी नीति के इस आक्रमण से जाटों को स्वागत योग्य राहत मिली। इसमें उन्हे अपनी शैशव शक्ति के पनपने की संभावनाएँ सामने आईं। चतुर चूडामन ने सम्भवतः यह अनुमान लगा लिया था कि शहंशाह के प्रति अपनी निष्ठा प्रदर्शित करने से जाटों के प्रति मुगलों का संदेह दूर हो जाएगा और उसे अपनी स्थिति सुदृढ़ करने में सहायता मिलेगी। पुरस्कार और प्रतिदान मिलने की आशा से वह मुगल तख्त के इस या उस दावेदार अथवा शक्तिशाली सामंतो से अपना सम्बन्ध जोडता रहा। शाही मामलात में भी अपनी लोभी प्रवृत्ति के कारण शामिल हुआ होगा। लूटमार से प्राप्त होने वाले माल के लोभ का सभंरण करते हुए पडौस में हो रहे युद्धों के प्रति उदासीन रहना उसके लिए अत्यधिक कठिन था। अतएव, मुगलों से चूड़ामन के सम्बन्ध पहले की भाँति जब वह उनका कट्टर दुश्मन था, आत्मकल्याण के आधार पर ही रहे। इस प्रकार यह निशिचित रूप से कहा जा सकता है। कि किसी संकल्पित या सुविचारित नीति के बजाय परिस्थितियों के प्रभाव से मुगल सरकार और जाटों ने एक–दूसरें के प्रति अपने व्यहार में मृदुता का प्रदर्शन किया था।

सन् 1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु से हिन्दुस्तान की गद्दी के लिए मुअज्जम और आजम के बीच रक्तपूर्ण संघर्ष हो गया। मिर्जा मोहम्मद बताते है कि अधिक से अधिक विशाल सेना एकत्रित करने के उद्देश्य से बहादुरशाह ने चूडामन को एक विनम्र संदेश भेजकर उससे उसकी सेना के साथ उपस्थित होने का अनुरोध किया। शाही बुलावे पर चूड़ामन 2–3 हजार सैनिकों के साथ बहादुरशाह के समक्ष उपस्थित हो गया।[71] लेकिन ये निर्भीक जाट शत्रु की घबराहट को अपने लाभ के लिए इस्तेमाल करने से नही चूका। जब युद्ध अपने चरम पर था तब ही वह चुपचाप खिसक गया और आजम के सामान को लूटकर भाग निकला।[72] ऐसा प्रतीत होता है कि जाजऊ के बाद की स्थिति से लाभ उठाते हुए चूड़ामन ने सिनसिनी पर कब्जा कर लिया और दिल्ली–आगरा मार्ग पर मथुरा के समीपवर्ती क्षेत्र में लूटपाट शुरु कर दी। इसके फलस्वरुप इस मार्ग पर दो महीनों तक यातायात पूर्णतया बंद कर दिया गया और अमीन–उद–दीन संभली की पत्नी सहित

सैकड़ों यात्री यहाँ फँसे रहे। अगस्त 1707 ई. में जाट लुटेरों को मार भगाने के लिये सेना भेजी गई।[73] फिर भी वजीर मुनीम खाँ ने चूड़ामन के दुष्कर्मो की उपेक्षा कर देने में ही बुद्धिमानी समझी। उसने एकबार फिर चूड़ामन को बुलाया तथा 16 सितम्बर को उसे शहंशाह के सामने पेश किया। बहादुरशाह ने उसे 1500 जात तथा 500 सवारों से मनसवदार बनाया और उसे दिल्ली तथा आगरा के बीच की सड़क की सुरक्षा का भार सौंप दिया।[74]

चूड़ामन के आध्य जीवन में वर्ष 1707 ई. को एक युग माना जाता है। इसके शुरु होते ही उसे सम्मान, शक्ति तथा विपुल धन मिला, जो इतना था कि उसके पूर्ववर्तियों ने अपने जीवनकाल में भी नहीं प्राप्त किया होगा। इस वर्ष ने उसे शाही मनसवदार का खिताब दिलाया। एक जाने–पहचाने विद्रोही को अचानक मुगल अभिजात के शिरोविंदु पर चढ़ा दिया गया तथा शाही राजपथ के एक भाग की जिम्मेदारी उसे सौंप दी गई। इससे स्थानीय लोगों में स्पष्टतया उसकी छवि में वुद्धि हुई, जिससे और अधिक बड़ी संख्या में लोग अनुयायी बन गए होगें।इस बदलती हुई स्थिति में चूड़ामन ने रणनीति में संशोधन कर दिया। एक तो नई सरकार के समझौतावाडी और मैत्रीपूर्ण रुख के कारण और दूसरे, अपनी स्वयं की इच्छा के कारण कि प्रगति करने का उसे अधिक अवसर मिले उसने बहादुरशाह के प्रति अपनी निष्ठा प्रदर्शित करनी शुरु कर दी।[75]

तथापि, उसकी यह निष्ठा किसी विश्वास या धारणा के बजाय सुविधा के लिए अधिक थी। इस तरह वह मुगल सरकार की सहायता तो जरुर करता था, किंतु अपने लोगों को लूटपाट के लिए उकसाता भी रहता था।

संभवतया उसके इशारे पर ही जाटों ने सिनसिनी की किलेबंदी पुनः कर दी थी। अतएव बहादुरशाह ने रजा बहादुर को भेज कर इसे तुड़वा दिया। 2 दिसम्बर, 1707 ई. को एक घमासान युद्ध हुआ जिसमें 1000 जाट मारे गये। रजाबहादुर ने किले को नष्ट कर दिया तथा पराजितों से दस गाडियाँ भरकर हथियार बरामद किए।[76]

लाहौर की लड़ाई मार्च, 1712 ई में बहादुरशाह की मृत्यु के बाद, जाट नेता चूड़ामन ने अजीमुश्शान का साथ दिया। यहाँ वह शहजादे के शिविर को रसद पूर्ति की देखभाल करता था। चूडामन और बनजारों ने वायदा किया था कि वे रसद बराबर पहुँचाते रहेगें। यह कार्य उसने निष्ठापूर्वक किया तथा शहजादा इससे संतुष्ट था। तथापि, मूलतया अपने सनकी मिजाज, मिथ्याभिमान तथा कपटपूर्ण चालों के कारण अजीमुश्शान पराजित हुआ और मार डाला गया। इसके बाद उसके शिविर को लूटकर चूडामन ने अपने घर का रास्ता लिया भाग्य ने फिर उसका साथ दिया यद्यपि ताज के जिस प्रतिद्वंद्वी का इसने साथ दिया था वह सफल नहीं हो सका किंतु विजेता जहाँदरशाह ने इसे क्षमा कर दिया संभवतया नए वजीर जुल्फिकार खाँ की मध्यस्थता से जिसका हिंदूओं के प्रति झुकाव था चूडामन को खिलअत दी गई तथा उसकी मनसव पुनः वापिस कर दी गई।[77]

इस उदारता से स्पष्ट होता है कि जहाँदरशाह की सरकार की आमनीति क्या थी जहाँदरशाह गद्दी पर बैठते ही तुरंत बाद फरूर्खसियर ने भी स्वयं को पटना का शहंशाह घोषित कर दिया था इसका मतलब यह है कि उत्तराधिकार का युद्ध अभी समाप्त नहीं हुआ था इसके

साथ ही नए वजीर के भी दरबार में शत्रु थे। इस समय शहंशाह और बजीर, दोनों को हिन्दूओं में से अपने मित्र निकालने थे। इसके अलावा पतनोन्मुख साम्राज्य को शक्तिशाली बनाने के लिए भी उनके सहयोग की जरूरत थी अतः विवशता और नीति के चलते सरकार को दुर्दमनीय चूडामन का लिहाज करना पडा जो दिल्ली से लेकर चम्बल तक पूरे क्षेत्र वास्तविक स्वामी बना हुआ था।[78]

शहंशाह ने चूडामन तथा कई राजपूत राजाओं को आदेश दिया कि वे शहजादा अजीउद्दीन के पास पहुँचे जिसे फर्रूखसियर की गतिविधियों पर नजर रखने के लिए आगरा में तैनात किया गया था किंतु ये सब बहाना बनाकर टाल मटोल कर गए तदुपरांत अजीउद्दीन खजुहा (नवम्बर 1712) में पराजित हो गया इससे जहाँदरशाह भयभीत हो गया दिसम्बर के प्रारम्भ में अनेक वायदे करते हुए उसने फर्रूखसियर का मुकाबला करने के लिए चूडामन को अपनी सेना के साथ आगरा पहुँचने का फरमान भेजा चूडामन एक बडी सेना लेकर आया तथा आगरा के युद्ध जनवरी 1713 ई. में युद्ध में शहंशाह की ओर से लडा किंतु जब उसने देखा कि उसका मतलब नहीं निकल रहा है तो इस निर्भीक जाट ने अपने घोषित स्वामी की पीठ में छुरा भोंकने में कोई शर्म महसूस नहीं की तथा अपने घोषित मालिक के पृष्ठ भाग को लूटकर चंपत हो गया उसने विजेता पक्ष को भी नहीं बख्शा तथा उसके शिविर को भी लूटा जाटों की वह लूट इतनी पूर्ण थी कि फर्रूखसियर अपने पदाधिकारियों से सम्मान प्राप्त करने के लिए बैठने को एक छोटे से लकडी के तख्त तथा गंदे फटे पर्दे के अलावा और कुछ नही पा सका।[79]

चूडामन की ज्यादती और दुःसाहस फुर्रूखसियर को खतरनाक प्रतीत हुई जिससे उसका क्रुद्ध होना भी उचित था।[80] फर्रूखसियर ने एक वीर सैनिक राजा छबीलाराम को आदेश दिया कि जाटों के विरूद्ध कार्यवाही करें लेकिन छबीलाराम के लिए यह कार्य आसान न था उसने चूडामन के कुछ शक्तिशाली लोगों को मनसव दिलाने का वचन देकर उन्हें अपनी ओर लाने के भी प्रयास किए तथापि, उसकी यह योजना कामयाब नहीं हो सकी तथा जाटों को दवाने में वह कठिनाई महसूस करता रहा असल में उसे दो मोर्चों पर लडना पड रहा था, एक तो जाटों से ओर दूसरे दरबार में अपने विरोधियों (सैयदों) से जो गुप्त रूप से चूडामन और अन्य सरदारों की पीठ थपथपा रहे थे।[81] प्रतीयमानतः राजा द्वारा दबाव डालने पर चूडामन और उसके निकट सम्बन्धियों ने राजा के विरोधियों के माध्यम से शहंशाह से क्षमा याचना की, यद्यपि वे अपनी गााढियाँ तोडने को तैयार नहीं हुए। छबीलाराम के शत्रु एक, चूड़ामन की शिफारिश कर रहे थे और दूसरी ओर,राजा पर यह आरोप लगा रहे थे कि वह चूड़ामन को कुचलने के लिए उत्सुक नहीं है।[82]

इसके साथ ही छबीलाराम के स्थानांतरण की जब बात आई तो उसे दुःख हुआ तथा उसने शहंशाह को लिखा, मेरे तबादले के बारे में जहाँपनाह की मंशा का मैं समर्थन करता हूँ। यदि जहाँपनाह ऐसा समझते हैं तो वह मेरा सौभाग्य होगा। चूडामन जाट को कुचलने का जो भी व्यक्ति साहस करे उसे शाही फरमान जारी कर दिया जाए, ताकि वह उसका उन्मूलन कर सके। फिर भी उससे यह मालूम कर लिया कि (इस काम को पूरा करने में) वह कितना समय लेगा ? इससे इसकी शेखी स्वतः खुल जाएगी। राजा ने आगे लिखा कि 'जिस किसी को भी यह (चूडामन को नष्ट करने का) काम सौंपा जाएगा वह भी अपने प्रयास में असफल होगा।[83]

छबीलाराम ने सच ही कहा था, क्योंकि चार महीनों के लगातार प्रयास के बाद वह स्वयं भी चूडामन को दवाने में असफल रहा था ,क्योंकि वजीर और मीर बख्शी उसके मार्ग में रोड़े अटकाते रहे थे। अतएव छबीलाराम के स्थान पर यह पद पाने के लिए लालायित खान–ए–दौरान को आगरा का सूबेदार नियुक्त किया गया।[84]

आगरा का नया सूबेदार खान–ए–दौरान यह जानता था कि चूडामन को हथियारों के बल पर दबाना अत्यधिक कठिन कार्य है। अपने स्वभाव से भी वह एक योद्धा के बजाय कूटनीतिज्ञ अधिक था। अतः जाट समस्या के समाधान के लिए उसने बल प्रयोग के बजाय समझौते का मार्ग अपनाया ।उसने चूडामन को अनेक पत्र भेजकर शहंशाह के समक्ष पेश होने का आह्वान किया। चूडामन इसके लिए तैयार हो गया तथा 25 सितम्बर, 1713 ई. को वह बारहपुला पहुँच गया शहंशाह के पास ले जाने के लिए खान–ए–दौरान स्वंय आया। चूडामन ने 21 मोहरें और दो घोड़े शहंशाह को भेंट किए फर्रूखसियर ने उसे खिलअत तथा एक हाथी के साथ राव बहादुर खाँ की उपाधि से विभूषित किया उसके मनसव में वृद्धि कर दी गई। चूडामन को बारहपुला (दिल्ली) से चम्बल तक के राजपथ का प्रभारी बनाया गया।[85]

इन शाही उपहारों की आलोचना करते हुए 'रोजनामचा' के लेखक ने टिप्पणी की है, कि 'अवज्ञाकारी तथा झगडालू 'चूडामन को इस तरह' वहला–फुसला' लिया जाएगा यदि शहंशाह यह समझता था कि इस तरह वह जाट को सुधार लेगा तो यह उसकी गलती थी। शीघ्र ही चूडामन ने शाही क्षेत्र हडपने तथा अपनी शक्ति बढाने के लिए अपनी स्थिती का दुरूपयोग करना प्रारम्भ कर दिया।

मार्च, 1716 ईं. में चूडामन ने मेवात के फौजदार इज्जतखाँ के शान्ति स्थापित करने के प्रयास को असफल कर दिया। इसके अलावा छिपकर हथियार बनाता था और थून सहित अपनी गढियों की किलेबंदी भी कर ली। संभवतः इसी कालावधि से सम्बन्धित बैंदेल का विना तारीख का एक कथन है कि 'चूडामन ने सरकार के अनेक मंत्रियों को लूट लिया और सूबों से भेजे गये राजकोष पर भी हमला कर दिया।[86]

चूडामन के बढते उपद्रवों की खबरों ने शहंशाह को क्रोधित कर दिया तथा उसने एक बार फिर उसे नष्ट करने का संकल्प लिया। किंतु इस कठिन कार्य को सम्पन्न करने के लिए कोई शूरवीर व्यक्ति को खोज निकालना भी एक समस्या थी। अंततः उसका ध्यान सवाई जयसिंह की ओर गया जिसके मन में जाटों के विरूद्ध स्वयं एक गाँठ थी। यह बात भूलने की नहीं है कि जयपुर के शासक की चूडामन तथा उसके अनुयाईयों से पुश्तैनी दुश्मनी थी। जाटों ने राजा की एक रियासत का भी कुछ भाग लूटकर उसे शिकायत का एक नया मौका अभी फिर दे दिया था।[87] सितम्बर ,1715 में फर्रूखसियर ने राजा को मालवा से दरबार में हाजिर होने का आदेश दिया। अंततोगत्वा कई बार तथा त्वरित तलबनामों के पश्चात् 25 मई 1716 ई को राजा आया और उसने शहंशाह की खुशी के लिए जाट अभियान का नेतृत्व करना स्वीकार किया।[88]

सितम्बर 1716 ईं. के प्रारम्भ में शहंशाह ने जाटों के विरूद्ध कूच कर देने का आदेश दिया। कोटा के महाराज भींमसिंह हाडा, बूदीं के बुधसिंह, नरवर के गजसिंह कछवाहा, छत्रसाल बुंदेला,

दुर्गादास राठौर, राव इन्द्रसिंह कई अन्य को जयसिंह के साथ शामिल होने का आदेश मिला। जयसिंह ने 15 सितम्बर को दशहरे के दिन प्रस्थान किया। लगभग 50,000 घुडसवारों और इससे भी अधिक पैदल सेना का नेतृत्व जयसिंह कर रहा था।[89] राजा ने मनसव दिलाने का वायदा करके चूडामन के एक विश्वस्त अनुयायी बैजिदखाँ मेवाती को भी मिला लिया और उसे सेनामुख के नेतृत्व का भार सौप दिया।[90]

राजा के आगमन का समाचार सुनकर आक्रमकों को उत्पीडित करने और उनको अटकाने की दृष्टि से अपने पुत्र मोहकमसिंह तथा भतीजों बदनसिंह तथा रूपसिंह के नेतृत्व में छापामार दस्ते छोड दिए। जयसिंह जब कामां (डीग से लगभग 23 कि.मी. दक्षिण में, और थून से लगभग 38 कि.मी. दक्षिण–पश्चिम) के निकट था, तो 15 अक्टूवर 1716 ई. को बदनसिंह ने 2000 घुडसवारों से बैजिदखाँ पर अचानक हमला कर दिया। इस लडाई में बैजिदखाँ घायल हो गया। किंतु राजपूतों की कुमुक आने पर बदनसिंह को पीछे हटना पडा। जयसिंह ने कामां में अपना शिविर बनाया। कुछ दिनों बाद (अक्टूबर के अंत में) उसने (गोर्वधन से लगभग 6कि.मी. उत्तर में स्थित) राधाकुण्ड पर कब्जा कर लिया तथा शत्रु पर दो तरफ से दबाव डाला।[91] जयसिंह के पहुँचने पर स्थानी जाट आबादी अपने घरों से भागकर इधर–उधर चली गई या थून में आकर एकत्रित हो गई जहाँ चूडामन अंत तक लडने के कृत संकल्प बैठा था।[92] नवम्बर 1716 ई. के दूसरे सप्ताह में शाही फौजे थून के निकट पहुँच गई उसी माह की 9 तारीख को रूपसिंह 2,000 घुडसवारों से राजा की अग्रिम पंक्ति पर टूट पडा। थून के निकट घमासान युद्ध हुआ जिसमें रूपसिंह घायल हो गया तथा उसका भाई अनीराम बहादुरी से लडता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। उसी दिन जयसिंह ने थून के निकट अपना डेरा दिया तथा किलों को घेरने की तैयारी करने लगा।[93] 11 दिसम्बर 1716 ई. को एक और घमासान युद्ध हुआ, जिसमें राजा ने जाटों को काबू में कर लिया। लेकिन कुल मिलाकर प्रगति बहुत धीमी थी। जिससे शहंशाह क्षुब्ध हो गया। अतः 13 मार्च 1717 ई. को उसने राजा को नाराजगी भरा पत्र लिखा कि राजा कि नियुक्ति को यद्यपि सात माह हो गये है, किंतु थून पर एक ओर से भी कब्जा नहीं किया जा सका है,

पूरी तरह से पराजित कर देने की बात ही नहीं है.....जाट लोग जंगल में छिपे बैठे हैं जहाँ से शाही सेना पर हमला करते रहते हैं।[94] फर्रूखसियर ने राजा को आदेश दिया कि थून और डीग पर कब्जा करने के लिए अथक प्रयास किए जाने चाहिए। इस आदेश के साथ ही लाहौर के सूबेदार , अब्दुस्समद खाँ, अजमेर के सूबेदार सैय्यद खान–ए–जहाँ, को दिल्ली पहुँचने का आदेश दिया, लेकिन अब्दुस्समद को जाटों के खिलाफ भेजने का विचार तो त्याग दिया , किन्तु सैय्यदों के मामा खान–ए–जहाँ को थून भेजा गया, ऊपरी तौर पर तो इसका उद्देश्य राजा की सहायता प्राप्त करना बताया गया लेकिन उसकी गतिविधियों से प्रकट हुआ, उसका मुख्य उद्देश राजा को कुंठित करना था।[95]

दिसम्बर 1717ई. के दूसरे सप्ताह में भुसावर पर हमला किया जिसकी रक्षा चूडामन का भाई अतीराम कर रहा था। सहायता करने वाले सैनिकों का नेतृत्व करते हुए मोहकम सिंह एवं रूपसिंह बहादुरी से लड़े किंतु दबा दिए गये। इसके बाद थून के दक्षिण में आक्रामकों का मुकाबला करने के लिए जाट पीछे हटकर झरसौली आ गये। इस प्रकार की लगातार लड़ाईयों में दोनों पक्षों

की भारी क्षति हुई। राजा की सेना की उपस्थिति के बावजूद लुटेरों से सड़के और ग्रामीण क्षेत्र मुक्त नही कराये जा सके ।[96]

इस घेरावंदी को अब तक 18 महीने हो गये थे और निकट भविष्य में सफलता मिलने की कोई संभावना भी नजर नहीं आ रही थी। उधर फर्रूखसियर का यह ख्याल था कि राजा बहुत जल्दी ही जाटों को धूल चटा देगा, किंतु इतने लम्बे समय बाद भी जब वह सफल नहीं हो सका तो शहंशाह ने नाखुशी जाहिर की। इस बीच बजीर अबदुल्ला खाँ भी राजा की असफलता पर चोट करता रहा। उसने उपहास के स्वर में अपनी बात इस प्रकार प्रकट की 'चूडामन का उन्मूलन राजा (जयसिंह) के वश और शक्ति से बाहर की बात है।[97] उसने शहंशाह को याद दिलाया कि अब तक कोई डेढ़ वर्ष बीत चुके हैं तथा एक बहुत बड़ी धन राशि लगभग 2 करोड़ खर्च हो चुकी है और जयसिंह के मासिक खर्च भी भारी हैं, फिर भी अब तक कुछ नही हो सका और अल्लाह ही जाने कि यह अभियान कब खत्म होगा। इसके बाद वजीर ने सूचित किया कि अपने प्रतिनिधि के जरिए चूडामन ने क्षमा याचना की है तथा शहंशाह के दरबार में अपनी पत्नी, पुत्रों और भतीजों के साथ स्वयं उपस्थित होकर 30 लाख रूपये की पेशकश देने का प्रस्ताव किया है।[98] वहरहाल केवल इतने से ही शहंशाह माफ करने को राजी नहीं हुआ । इसके साथ ही वह चूडामन से एक आश्वासन चाहता था कि थून और डीग के किले तोड़ दिये जाएँगें और भविष्य में उनकी मरम्मत कभी नहीं की जाएगी, तथा अपने पुत्रों और भतीजों के साथ आगरा सूबे से अन्य कहीं चूडामन शहंशाह की सेवा करना स्वीकार करेगा। अतंतः निस्सहाय शहंशाह ने, यद्यपि बहुत अनिच्छा से , वजीर के सुझाव को स्वीकार कर लिया। मार्च 1718 ई. में चूडामन को क्षमादान देते हुए शहंशाह ने जाट अभियान को समाप्त करने के आदेश दिए।[99] तदुपरांत जाट सरदार अपने पुत्रों, भाई तथा भतीजों सहित सैय्यद के साथ दरबार की ओर चल दिया। चूडामन 31 मार्च 1718 ई. को दिल्ली पहुँचा और सीधे वजीर के पास गया और उसके महल के निकट ही एक गृह में अपना पड़ाव किया। उनके बीच की इस मित्रता को देखकर शहंशाह मर्माहत हुआ तथा वजीर से उसके मन–मुटाव को इसने और सुदृढ़ किया। वजीर अबदुल्ला खाँ ने चूडामन को औपचारिक तौर पर शहंशाह के समक्ष 9 अप्रेल 1718 ई. को पेश किया। चूडामन ने 1000 अशर्फियाँ तथा उसके पुत्र मोहकम सिंह दो भतीजों रूपसिंह तथा संभवतः बदनसिंह ने पाँच–पाँच सौ अशर्फियाँ भेंट की। शहंशाह की तरफ से उन्हें विशेष खिलअत और घोडे भेंट किए गये।जाट सरदार के अन्य साथियों को साधारण खिलअतें दी गई।[100] वैंदेल का दावा है कि चूडामन को शहंशाह से 'फतेह सिंह' की उपाधि छोटे राजाओं की आज्ञाप्ति के साथ मिली।[101] इस सन्धि की शर्तों को अंतिम रूप अब्दुल्ला खाँ के जरिए दिया गया था। वजीर ने 20 अप्रैल को शहंशाह से निवेदन किया कि चूडामन पर 20 लाख रूपयों की पेशकश और जिस माल की अदायगी लगाई गई है, वह किश्तों में अदा की जाएगी। फर्रूखसियर ने इस पर अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी ।[102] अंततः जयसिंह के अभियान ने चूडामन को सैयद वंधुओं के अधिक निकट कर दिया जो उसे अपने उददेश्य के लिए 'एक नया और उपयोगी साथी ' समझने लगे।[103] शक्तिशाली हिंदू तत्वों के प्रति उनकी उदार नीति ने इस प्रकार के सम्बन्धों की स्थापना को सुविधाजनक बनाया। तथापि यहाँ यह समझने की बात है कि इसके बाद से जाट प्रसंग में सैयद वंधुओं की भूमिका जाटों की रक्षा से अधिक अपने विरोधियों को क्षति पहुँचाने में अधिक थी। जहाँ तक अबदुल्ला खाँ का प्रश्न उसकी प्रक्रिया अब उलट गई थी उसने चूडामन की

साज–सामान से सहायता करने के लिए जोड़–तोड़ करने की अपेक्षा पहले से अधिक जटिल परिस्थिति में भी चूडामन के लिए अनुकूल शर्तें मनवाई। इस प्रकार व्यक्तिगत कृतज्ञता तथा निज–स्वार्थ ने उसे सैय्यद बन्धुओं से 'एकता और सौहार्द की श्रृंखला' को सुदृढ़ करने के लिए प्रेरित किया।[104] इस स्थिति का जायजा लेते हुए यह प्रतीत होता है कि वजीर और मीर बख्शी से चूडामन की मैत्री ने उसकी गतिविधियों को नया, यद्यपि भ्रामक महत्व प्रदान किया। सरकार की बागडोर जिनके हाथें में थी उनसे घनिष्ठता से यह अर्थ निकलता था कि सभी व्यवहारिक दृष्टियों से मुगल सरकार की नजरों में अब वह बागी नहीं रह गया था। तथापि इस तस्वीर का एक दूसरा रूख भी है। जिस प्रकार एक सिद्ध विद्रोही चूडामन को शहंशाह की इच्छा के विरूद्ध अनुग्रह प्रदान किया गया था वह पहले से ही पत्तनोन्मुख मुगल सत्ता के लिए अत्यधिक खतरनाक था।[105]

इसने चूडामन की उद्धृत कार्यवाहियों को प्रमाण रूप में स्थापित कर दिया और उक्त विचार के लोगों के लिए एक अनिष्टकारी मिसाल भी स्थापित कर दी। इसके अलावा जाट युद्ध से राजशाही को धन, सामग्री तथा समय की सारी क्षति हुई, फिर भी चूडामन की शक्ति को कुचला नहीं जा सका। इसके अलावा इन दो महीनों में मालवा से जयसिंह की अनुपस्थिति ने मराठों को चौथ वसूल करने और इस सूबे में अपनी धाक जमाने का एक अवसर प्रदान किया।[106]

इसके बाद के दिनों में शहंशाह फर्रूखसियर को राजच्युत करने की घटनाएँ तेजी से आगे बढी जिसमें चूडामन ने अपने उपकारक की सहायता की। सैय्यद बंधुओं ने जाटों सहित अपने सहयोगियों के साथ किले और महल पर कब्जा कर लिया। अपनी निराशा की स्थिति में शहंशाह ने मात्र अजीतसिंह से यमुना की ओर किले के पूर्वी द्वार से निकल भागने में सहायता करने की असफल प्रार्थना की, क्योंकि वहाँ कोई नहीं था। अब्दुल्लाखाँ ने जब यह सुना तो उसने विश्वासपात्र चुडामन को उस दरवाजे पर पहरे का भार सौंपा, ताकि उधर से कोई निकलकर भागने न पाए। जाट सरदार ने अपने सम्बन्धियों और सैनिकों के साथ निष्ठापूर्वक अपने काम को अंजाम दिया। उसने किले के सभी दरवाजों और महल की चावियाँ अपने कब्जे में ले लीं । जब इतिकादखाँ ने फर्रूखसियर से चावियाँ न देने का अनुरोध किया तो उसने अपनी मजबूरी दिखाई इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति के लिए इतिकादखाँ को फटकारते हुए फर्रूखसियर ने उसे दीवान–ए–खास से बाहर निकाल दिया और हरम में जाकर छिप गया। उसके तुरंत बाद ही उसे सिंहासनच्युत करते हुए अंधा करके कारावास में डाल दिया गया तथा सैय्यद बंधुओं के नामजद , रफी–उद– दरजात के लिए रास्ता साफ हो गया।[107] लगभग दो माह बाद एक प्रतिद्वंदी शहंशाह नेकूसियर के सिंहासनारूढ होने के पश्चात हुसैनअली ने आगरा के किले तथा उसकी रक्षक सेना की घेराबंदी कर ली। इस विद्रोह से सैय्यद बंधुओं के प्रभुत्व को जबरदस्त धक्का लगने की संभावना थी। विद्रोहियों को जयसिंह, छबीलाराम और नजम–उल– मुल्क से सहायता की अपेक्षा थी। खतरे का पूर्वानुमान करके आगरा के नए सूबेदार, गैरतखाँ, आगरा किला के मनोनीत–कमांडेंट, समंदरखाँ को पहले ही आगरा के लिए रवाना कर दिया गया था। तथापि विद्रोहियों ने उनका मुकाबला किया। यह समाचार सुनकर सैय्यदों ने तुरंत चूडामन ,राजा भीमसिंह तथा अन्य लोंगों को गैरतखाँ की सेना को प्रवलित करने के लिए भेजा।[108] बाद में हुसैन अली स्वयं दिल्ली से कूच करके जुलाई के प्रारम्भ में आगरा पहुँच गया। इसी समय बारहपुला (दिल्ली) से ग्वालियर तक शाही राजमार्ग का

प्रभार चूडामन को सौंप दिया गया।[109] इसी क्रम में 2 अगस्त 1719 ई. को किले और नेकूसियर पर हुसैन अली ने कब्जा कर लिया।[110]

इसके कुछ समय बाद शहंशाह रफी–उद–दौला ने अपने पूर्ववर्ती का अनुसरण करते हुए कब्र की राह ली तथा सैय्यद बंधुओं ने शाहजादा रोशन अख्तर (मोहम्मद शाह) को अपने शिविर बिदियापुर (फतेहपुर सीकरी से लगभग 10कि.मी. उत्तर) में सिंहासनरूढ कर दिया। दो दिन बाद 20 सितम्बर 1719 ई. को नए शहंशाह के समक्ष पेश होकर चूडामन ने उसे 9 मोहरें भेंट की। इसके बदले में जाट सरदार को एक वशेष खिलअत भेंट की गयी।[111]

सितम्बर 1720 में चूडामन ने अपने पुत्र मोहकमसिंह को हुसैन अली के साथ नियुक्त किया। जो निजाम–उल–मुल्क के विरुद्ध युद्ध के लिए दक्षिण को कूच कर रहा था। इसी समय लगभग अगस्त 1720 में उसकी मूल्यवान सेवाओं के बदले में हुसैनअली ने दक्षिण से लौटकर चूडामन को राजा[112] की उपाधि दिलाने का वचन दिया।

तथापि सेना के टोडा भीम के निकट पहुँचने पर हुसैनअली अपने विरोधियों द्वारा रचे गये एक षडयंत्र का शिकार हो गया। मोहकमसिंह सहित उसके मुख्य साथी गिरफ्तार कर लिए गये। अपने जीवन से निराश होकर जाट ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेने का प्रस्ताव किया। किंतु मोहम्मद शाह ने ऐसा करना बुद्धिमानी नहीं समझा। इसके विपरीत एक खिलअत देकर उसे घर वापस जाने की अनुमति दे दी।[113] मोहकमसिंह के प्रति प्रदर्शित यह दयाभाव सैय्यदों के अन्य समर्थकों के साथ किए गए अपमान जनक व्यवहार के बिल्कुल विपरीत था। शहंशाह की इस सद्भावना प्रदर्शन का उद्देश्य चूडामन को अपने पक्ष में करने के लिए था। इसी मंतव्य से कुछ और भी अनुग्रह के बडे–बडे वायदे उससे किए गए। परिस्थितियाँ बदल चुकी थीं इसलिए चूडामन ने स्वयं भी फिलहाल शहंशाह के प्रति समर्पित हो जाना ही बुद्धिमानी समझा।[114]

इंसी बींच अपने भाई का त्रासद समाचार सुनकर अब्दुल्लाखाँ ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। फरीदाबाद पहुँचने पर जाट और मेवाती लुटेरों ने उसे बहुत पीडित किया। उसने नई सेना जुटाई और उसके बाद प्रतिद्वंदी शहंशाह, मोहम्मद इब्राहिम को साथ लेकर वह मोहम्मदशाह का मुकाबला करने के लिए बिलोचपुर की तरफ बढा। सैय्यदों की गोपनीय पत्र के प्रतिक्रिया स्वरूप चूडामन तथा सैय्यद के अनेक अन्य अनुयाईयों ने युद्ध के पूर्व ही मोहम्मद शाह को छोडकर सैय्यद का साथ पकड लिया।

अब्दुल्लाखाँ के साथ पुनः हो जाने के पीछे चूडामन के उद्देश्यों का आकलन सदा उचित रूप से नही किया गया सैय्यद के प्रति उसकी ' निष्ठा और कृतज्ञता' पर संदेह करने के पर्याप्त कारण नहीं मिलते।[115] सैय्यदों के औदार्य के प्रति सुस्पष्ट शब्दों में अपनी हार्दिक कृतज्ञता और आभार प्रकट करते हुए चूडामन ने (मोहम्मद शाह के शिविर में) मोहम्मद अमीनखाँ के सामने यह स्वीकार किया कि उन्होनें 'मुझ पर इतने एहसान किए हैं कि यदि मुझें हजार जन्म मिलें और धन भी हजार गुना अधिक हो तो अपने परिवार और बच्चों सहित मैं सर्वस्व उन्हें दे दूँ।

जाट –मुगल सम्बन्ध (1720–1722)

सैय्यदों के हटने के तुरंत बाद जाटों पर मुगलों का दबाब पड़ने लगा । सादत खाँ जिसने हुसैन अली खाँ को उखाड़ने में मुख्य भूमिका अदा की थी, को आगरा का सूबेदार बनाकर पुरस्कृत किया गया। अपनी नई नियुक्ति का भार सँभालने के लिए उसने फरवरी, 1721 में दरबार से प्रस्थान किया। मथुरा के जाट दुर्दमनीय हो रहे थे, अतः उसने उनके विरूद्ध मोर्चा लिया तथा विद्रोहियों को अपनी गढ़ियों में शरण लेने के लिए बाध्य कर दिया। इसमें अनेक आत्मरक्षक मारे गये, तथा इस प्रक्रिया में सादत खाँ भी अपने 400 सैनिकों से हाथ धो बैठा। इससे प्रसन्न होकर शहंशाह ने उसे खिलअत तथा रत्न जड़ित एक कटार के साथ बधाई संदेश भेजा।[117] तथापि अपनी इस सफलता को वह अबाध नहीं रख सका, क्योंकि इस बीच अजीत सिंह को दमित करने के लिए उसे कुछ समय के लिए बुला लिया गया था। उसकी अनुपस्थिति में उसके नायब, नीलकंठ नागर ने उसके अधूरे काम को पूरा करने के लिए कदम बढ़ाया। 10,000 घुडसवारो तथा इससे भी अधिक पदाति सेना लेकर फतेहपुर सीकरी के आसपास के गाँवों पर टूट पड़ा तथा पिचूना तक घुसता चला गया। यहाँ उसने कुछ ग्रामीणों और उनके पशुओं को पकड़ लिया। किंतु जब वह वापस आ रहा था तो चूडामन द्वारा पहले से तैनात मोहकम सिंह तथा हलेना का शार्दूल सिंह 6 हजार घुडसवारों और पदाति सेना को लेकर उस पर टूट पडे। यद्यपि उसकी सेना संख्या में दुगुनी थी किंतु नीलकंठ सूरमा जाटों को झेल नहीं सका और मात खा गया। युद्ध के दौरान उसे गोली लग गई तथा अपने हाथी के होदे में ही वह मरकर लुढक गया। जो भाग सके, भाग लिए, तथा शेष ने अपने घोडे और शस्त्र डाल दिए और वे जाटों के कैदी बन गये। मोहकम सिंह सभी हाथियों, तथा अन्य सामान को लेकर अपने स्थान पर पहुँचा तथा प्रत्येक बंदी से उसकी हैसियत के अनुसार अर्थदंड के रूप में धन वसूला।[118] इसी बीच सिनसिनवाडा जाटों में अंदर ही अंदर एक तूफान उठने लगा था, जिसके लिए अधिकतर जिम्मेदारी चूडामन की अपनी उद्धता और अक्खडपन तथा उसका अविवेकपूर्ण व्यवहार था। जाट सरदारों का एक वर्ग बदनसिंह के नेतृत्व में चूडामन के उजड्ड, कठोर और अभद्र व्यवहार, लूटपाट और डकैती तथा छलपूर्ण दाब–पेंच के प्रति अत्यधिक लगाव और उसके उपयोग का विरोधी था। यह वर्ग विरोध में उठ खड़ा हुआ तथा इसने विस्तार के लिए शांन्तिपूर्ण और सुव्यवस्थित नीति अपनाने के साथ पडौसियों और मुगल दरबार से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाने के लिए दबाब डालना शुरू कर दिया। तथापि चूडामन ने अपने अविवेक में बदनसिंह को गिरफ्तार कर लिया।[119] इससे अन्य जाटों को चूडामन के गोपनीय इरादों के प्रति संदेह हो गया तथा उन्होंने बदनसिंह को मुक्त कराने के लिए आंदोलन कर दिया। अंततः चूडामन को झुकना पड़ा और उसने बदनसिंह को लगभग 1721 में छोड़ दिया।[120]

स्पष्टतया, इन घटनाक्रमों ने जाटों में गहरी दरार डाल दी। कारागार से मुक्त होने के बाद बदनसिंह ने सादत खाँ का साथ देने के लिए आगरा का रास्ता पकड़ा। सादत खाँ को अपने नायब की भारी पराजय के बाद तुरंत विद्रोही क्षेत्र पहुँचने का आदेश दिया था सादत खाँ के आने पर

बदनसिंह ने उससे भेंट की, तथा सादत खाँ ने भी उसे अपने पक्ष में लेने में बुद्धिमानी समझी अतः उसे एक खिलअत और हाथी की जंजीर भेंट स्वरूप दी। सुजान चरित्र से हमें पता चलता है कि सादत खाँ ने बदनसिंह के भाई रूपसिंह से भी अंतरंग सम्बन्ध स्थापित कर लिए।[121] इसी समय के आस–पास (लगभग 17 सितम्बर –10 अक्टूबर 1721) चूडामन ने कोई घातक विष खाकर आत्महत्या कर ली।[122] और अब नेतृत्व उसके ज्येष्ठ पुत्र मोहकम सिंह [123] को स्थानांतरित हो गया।

अपने पिता के स्थान पर मोहकम सिंह नेता बना। जाट शासकों की वंशावली का विवरण देते हुए, फ्रांसू ने उसे प्रथम राजा बताया है जिसने थून में अपना राज्य स्थापित किया था।[124] तथापि यह प्रतीत होता है कि राजा की उपाधि उसे स्वंय ही धारण कर ली थी।[125]

क्रोधी स्वभाव, तथा निरंकुश और झगडालू प्रवृति का मोहकम सिंह एक नेता के रूप में अयोग्य था। ऐसा कहा जाता है कि नेता का खाली पद उसने जबर्दस्ती हथिया लिया था, जो तत्कालीन जाटों में प्रचलित रिवाज के प्रतिकूल था।

अधिकतर जाट सरदारों ने इसे पसन्द नहीं किया वे उसके अविनीत तथा उग्रस्वभाव से भी घृणा करते थे तथा वे उसे पदच्युत करना चाहते थे। ऐसी स्थिती में अंदरूनी कलह फिर बढ गई। बदनसिंह की 'वीरता और योग्यता' से ईर्ष्यावश उसे खोह के कारावास में बंद कर दिया।[126] इस प्रकार कुछ समय में ही यह बदनसिंह का दूसरा कारावास था। उसके प्रति मोहकमसिंह का दुर्व्यवहार उसके प्रति सहानुभूति पैदा करने में सहायक बना। फ्रांसू के अनुसार बदनसिंह के सदव्यवहार के कारण उससे स्नेह करने वाले लगभग 22 सरदारों ने मोहकमसिंह से अनुरोध किया कि वह अपने चचेरे भाई को मुक्त कर दें, किंतु उसने इन्कार कर दिया। अंत में उन्होंने मोहकमसिंह के गुरू मक्खनदास बैरागी से हस्तक्षेप करने का अनुरोध किया, अतः बैरागी ने अपने शिष्य को आदेश दिया कि वह बदनसिंह को मुक्त कर दें। मोहकमसिंह ने अनिच्छापूर्वक उसे यह कहते हुए छोड दिया कि 'यह तो निश्चित है कि आपने ब्रज की प्रभुता बदनसिंह को सौप दी है।' इस प्रकार मुक्त होने के बाद बदनसिंह अपनी जागीर कुम्हेर लौट आया और मोहकमसिंह को उखाड़ फेकने की योजना बनाने लगा। अंततः उसका ध्यान जयसिंह की ओर गया तथा इस सम्बन्ध में राजा की सहायता प्राप्त करने के लिए उसके पास गया। बदनसिंह ने राजा जयसिंह को मोहकमसिंह पर चढाई करने और धृष्ट विद्रोही समाप्त करने के लिए तैयार कर लिया।[127]

आपसी फूट और रंजिश के कारण जिस समय मोहकमसिंह की शक्ति क्षीण हो रही थी उसी समय उसने तथा उसके भाई जुलकरन ने मुगलों को उत्तेजित कर दिया। उन्होंने मुगलों के पडोस में व्यापक उपद्रव शुरू कर दिए। उन्होंने शाही राजमार्ग पर लूटमार करना शुरू कर दिया तथा गाँवों और कस्बों में डकैतियाँ डाली। शाही राजस्व अधिकारियों को खदेडकर खालसा और जागीर महलों से गैरकानूनी ढंग से मालगुजारी वसूल कर ली। इन उपद्रवियों को दवाने में सादत खाँ असफल रहा। इससे सरकार को भारी चिंता हुई। जैसा कि निजाम –उल–मुल्क को भेजे गए फरमान से ज्ञात होता है जिसमें उसे इस तथा अन्य अतिआवश्यक समस्याओं से निपटने का आदेश दिया गया है।[128]

अंततः जयसिंह को दूसरी बार जाटों पर चढाई करने के आदेश मिले जिसके लिए वह स्वंय उत्सुक था। पहले की तरह जयसिंह ने अपना काम जंगल कटवाकर और आगे खाइयाँ खुदवाते हुए शुरू किया। जाटों ने यदा–कदा हमले किए जिन सब में वे असफल रहे और उसके फलस्वरूप दोंनों ओर के सिपाही मारे गये। थून में रोज झडपे हो रही है इस आशय का समाचार दरबार में 15 अक्टूबर 1722 को दिया गया जहाँ यह भी बताया गया कि मोहकमसिंह बड़ी बहादुरी से उनका मुकाबला कर रहा है। 21 अक्टूबर 1722 को दरबार में यह समाचार आया कि शत्रु के तीन बाहरी किले शाही सेना के कब्जे में आ गये हैं जिसके फलस्वरूप शत्रु पक्ष में बहुत निराशा है। माँगे जाने पर एक बड़ी तोप, 300 बाँस, 500 मन बारूद और सीसा तथा 100 रहकला शाही शस्त्रागार से भेज दिये गये।[129]

इस बीच बदनसिंह ने थून के किले के भेद्य स्थानों तक जयसिंह को रास्ता दिखा दिया। उसने मोहकमसिंह के अनेक सरदारों को भी बहला– फुसलाकर राजा के पक्ष में कर लिया। दो महीनों तक शाही फौजों का सामना करने के बाद मोहकमसिंह साहस छोड चुका था और उसने किले से भागने का फैसला कर लिया। लेकिन भागने से पहले उसने शत्रु को मारने के लिए किले में सुरंग बिछा दी थीं। किले में फर्श पर बारूद बिछा दी गई थी। इसके बाद जितना भी संभव हुआ वह खजाना लेकर रात के अंधेरे में भाग निकला। अगली सुबह राजा जयसिंह किले में प्रवेश करना चाहता था। थून में पर्याप्त रसद रहने के बावजूद मोहकमसिंह के भाग जाने से बदनसिंह को संदेह हुआ कि उसने कोई न कोई धोखे का काम किया है।

अतएव उसने राजा को किले में जाने से रोक दिया और इस प्रकार एक भयंकर त्रासदी से राजा को बचा लिया। जयसिंह ने अपना प्रवेश स्थगित ही किया था कि किले से भयंकर विस्फोट की आवाजें आने लगीं और पत्थर हवा में उडते दिखाई देने लगे जयसिंह ने उसका और उसके साथियों का जीवन बचाने के लिए बदनसिंह का बहुत आभार प्रकट किया।[130] इसके बाद चूडामन के बहुचर्चित खजाने की तलाश बडे ही मनोयोग से की गई किंतु वहाँ कुछ भी नहीं मिला। जयसिंह के वकील जगरा ने थून की विजय एवं चूडामन के पुत्रों के भाग जाने का शुभ समाचार शहंशाह को दिया तथा अपने स्वामी की ओर से 500 मोहरें पेश की। मोहम्मद शाह ने राजा को मोहकम और उसके परिवार को गिरफ्तार करने का आदेश दिया।[131]

कुछ दिनों बाद, बदनसिंह के थून स्थित शिविर में जयसिंह ने उससे एक मैत्री – अनुबंध किया। राजा ने उसके सिर पर पगड़ी बाँधी। फ्रांसीसी मिशनरी ने लिखा है कि उसने जाट सरदार को 'ब्रज के राजा' की उपाधि भी दी, टीका, निशान, नक्कारा और पँचरंगा ध्वज (जो जयपुर के राजाओं का भी था) भी दिया। किंतु बदनसिंह ने ठाकुर कहलाना अधिक पसंद किया तथा कोई अन्य उपाधि स्वीकार नहीं की। सामान्य तौर पर वैंदेल के कथन की पुष्टि करते हुए फ्रांसू ने यह और लिखा है कि अपने सिक्के जारी करने का अधिकार और सदर (आगरा) की कोतवाली भी बदनसिंह को दी गई।[132] मई 1723 में शहंशाह ने चूडामन की जमींदारी का कुछ भाग बदनसिंह को प्रदान करने का आदेश जयसिंह को दिया और इस प्रकार उसके नेतृत्व को स्वीकार किया। जून 1725 में एक लिखित अनुबंध के अंतर्गत जयसिंह ने चूडामन की भूमि औपचारिक रूप से जाट

सरदार को इस शर्त पर दे दी कि वह 83 हजार रुपये वार्षिक कर जयपुर को देगा। इस प्रकार इस नए जाट सरदार ने अपना जीवन जयपुर के एक सामंत की हैसियत से प्रारंभ किया। इस संबंध में जानने की रोचक बात यह है कि महाराजा सूरजमल जब अपने उत्कर्ष की पूर्ण विकसित अवस्था में था और जयपुर के राजा माधौसिंह से कहीं आगे बढ चुका था तब भी वह औपचारिक तौर पर राजा के सामन्ती आसामी की भाँति ही व्यवहार करता था।[133]

तथापि यदि हम कुछ गौर से देंखें तो इस उपलब्धि की लघुता और उसका छिछलापन स्पष्ट नजर आने लगेगा। इस बात को तो मानना पड़ेगा कि जयसिंह की जीत जाट बिरादरी की आपसी रंजिश और शत्रुता के कारण हुई थी, जैसा कि एक परम्परागत स्थानीय कहावत से भी स्पष्ट होता है–

"लेन चहति हे दिल्ली आगरा घर की थून दई।
बन्धु बैर अनबन के कारण कैसी कुमति ठई।।

यह स्पष्टतया विवाद का विषय है कि बदनसिंह की सहायता और मार्गदर्शन के बिना क्या राजपूत इतनी आसानी और इतनी शीघ्रता से जीत सकते थे ? इससे जयसिंह की विजय धूमिल पड जाती है। यह विजय भी अत्यधिक संदिग्ध प्रकार की थी। इसका एक मात्र निष्कर्ष यह है कि जयसिंह केवल चूडामन के पुत्रों की शक्ति को नष्ट करने में सफल हुआ था न कि जाटों की शक्ति को। इस प्रकार जाटों की क्षति वास्तविक न होकर दिखावटी थी।[134] मुगलों ने कुछ जाट किलों को तोडने या नष्ट करने और विद्यमान जाट नेता मोहकम को भगाने के अलावा और कुछ प्राप्त नहीं किया। यद्यपि यह एक विरोधाभास प्रतीत हो सकता है, किंतु उनकी विजय जाटों के लिए एक अप्रत्यक्ष वरदान सिद्ध हुई इस जीत ने केवल अयोग्य और अलोकप्रिय मोहकमसिंह को येाग्य बदनसिंह के लिए जगह खाली करने को बाध्य किया जिसने आगे चलकर जाट वैभव को अपूर्व शिखर पर स्थापित करने में सफलता पाई। इस प्रक्रिया में उसने यह दिखा दिया कि पूरे साम्राज्य में नही ंतो कम–से–कम सूबा आगरा में अवश्य ही मुगल सत्ता के लिए मोहकमसिंह यहाँ तक कि उसके पिता से भी ज्यादा खतरनाक है। फिर भी विडंमना यह थी कि मुगल शहंशाह और जयसिंह ने स्वयं ही तो बदनसिंह के लिए मार्ग प्रशस्त किया था ।

जाट–शक्ति का विकाश (1723– 1756)

बदनसिंह को भरतपुर के जाट राज्य का संस्थापक माना जाता है। बदनसिंह ने अपने जीवन का आरम्भ जयपुर के महाराजा सवाईंजयसिंह के सामन्त के रूप में किया था। जयसिंह ने उसे वह सब भूमि और उपाधियाँ दीं थी जो चूडामन को मुहम्मद शाह के शासन काल में प्राप्त हुई थीं। अपने चाचा से सर्वथा भिन्न वह चुप रहने वाला तथा विनम्र स्वभाव का व्यक्ति था, तथा लुटेरे के जीवन में उसकी कोई रूचि नहीं थीं। उसने एक वैध शासक के रूप में अपने शासन का श्रीगणेश किया, वह ईमानदारी से शान्तिकालीन कलाओं को प्रोत्साहन देना चाहता था। उसकी आस्था अपने राज्य को सन्तुलित विस्तार देने एवं मजबूत बनाने में थी, न कि अनियमित एवं अविश्वसनीय विजयों में। तथापि इस काम में उसे वर्षो के धैर्यपूर्ण परिश्रम और कुशल प्रशासन के उपरान्त उल्लेखनीय सफलता प्राप्त हुई। परन्तु बदनसिंह ने विरासत में जो स्थिती पाई थी यदि वह लगभग निराशाजनक नही ंतो कठिन[135] अवश्य थी। उस समय जाटों में किसी प्रकार की एकजुटता नहीं थी, इसके विपरीत कबाइली या वंशगत तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अभ्यस्त होने के कारण वे नीतिगत विषयों में दो विरोधी खेमों में बँटे हुए थे।

बदनसिंह को सबसे बड़ा खतरा मोहकमसिंह से था जो सत्ता छिन जाने के बाद उसे पुनः प्राप्त करने के उददेश्य से बराबर दॉवपेंच करता रहता था। अंततः अपनी छवि को बनाने के लिए उसे इस प्रकार के संभावित विचार को मिटाना था कि वह जयसिंह का आश्रित या एक निकम्मा व्यक्ति है।[136]

इस प्रकार बदनसिंह के जिम्मे आया काम कोई आसान नहीं था। किंतु साहस, धैर्य, अप्रतिम बुद्धिमता और चतुराई जैसे गुणों से सम्पन्न बदनसिंह अपनी जिम्मेदारियों के अनुरूप साबित हुआ।

अतः बदनसिंह ने सावधानी से आगे बढने का फैसला किया, उसने दबाब के साथ मैत्री, बल के साथ तुष्टीकरण और राजसी वैभव के साथ विनम्रता का मिश्रण किया। उसने पैदल सैनिक और घुडसवारों की एक सुसज्जित सेना तैयार की।[137]

थून, सोगर और सिनसिनी के पहले नष्ट हो चुके किलों के स्थान पर डीग और कुम्हेर में किले बनवाए। अपनी प्रतिष्ठा और शक्ति को बढाने की दृष्टि से उसने प्रमुख सरदारों के परिवारों में राजनीतिक दृष्टि से विवाह भी किए। तथापि समझाने–बुझाने के बाद भी जिन्होंने अधीनता स्वीकार नहीं की, उनके साथ उसने अलग ढंग का बर्ताव किया। चूडामन और मोहकमसिंह के कटटर अनुयायी ही इस श्रेणी में आते हैं। उनका स्वतंत्र अस्तित्व और मोहकम–समर्थक पूर्वानुराग विस्तार और स्थिरता में बाधक तो थे ही, साथ ही उसके अस्तित्व के लिए खतरनाक थे। इसके अलावा अतीत में लूटमार के जीवन का स्वाद चख लेने के बाद वे उसी से लिपटे रहे। इसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं कि वे लालची सरदार और साथ ही स्थानीय अपराधी ही उस तमाम लूटमार में शामिल थे, जिसे बैंदेल ने गलती से केवल बदनसिंह के माथे मढ दिया है।[138] एक अन्य स्थान पर, बदनसिंह पर आरोप लगाया गया है कि उसने अपनी फौज के एक हिस्से को ग्रमीण इलाकों,

दिल्ली जाने वाली सडक और आगरा के बाहरी इलाकों को लूटने के लिए तैनात किया। बदनसिंह के प्रति बैंदेल का खब्त उस समय हाथ से बाहर जाता हुआ दिखाई देता है, जब वह कहता है कि वह सरदार क्रूरता और लूटपाट के लिए बदनाम चूडामन से भी आगे निकल गया, और वह इस आशा की सूचना देता है कि उसके गिरोह संख्या में कहीं अधिक थे, ज्यादा साहसी थे और बेहतर तरीके से पोषित थे जिसके फलस्वरूप उन्होंने व्यापक और पाशविक कहर बरसाया।[139] यह आरोप अधिकांशतया विकृत और सुनी–सुनाई बातों पर आधारित प्रतीत होता है। इससे तो इनकार नहीं किया जा सकता कि जाटों के नेता ने लूट का माल हडपा और अपने शत्रूओं की जमीन जायदाद को जब्त किया, पर निरंकुश बेजोड तोडफोड और डकैती की बात उस व्यक्ति के मामले में अविश्वसनीय लगती है, जिसने इन बातों का और चूडामन तथा मोहकमसिंह के जमाने की अन्य प्रवृत्तियों का अपनी जान खतरे में डालकर भी विरोध किया।[140] बदनसिंह अब एक जमींदार की हैसियत से बढकर वह एक छोटा राजा बन गया जो अपना काम काज स्वयं चला सकता था और अपने पडोसियों के मन में भय आदर उत्पन्न कर सकता था।[141] नए–नए क्षेत्रों को पाने के बाद उसने अपनी सेना भी बढायी। साथ–ही–साथ नए किलों का निर्माण जारी रखा। उसने अपने ठिकानों को कुछ तो दूसरों से हथियायी गयी छोटी तोपों से और ज्यादातर स्वयं द्वारा बनायी गई बडी तोपों से सुसज्जित किया। जाटों में धन को जमीन में गाडकर रखने का तरीखा लोकप्रिय था। अतः उस समय प्रचलित इस विश्वास को स्वीकार करने के लिए पर्याप्त आधार हैं कि बदनसिंह को चूडामन और उसके पुर्ववर्तियों का खजाना मिल गया था। इसी के फलस्वरूप वह अपने अपार खर्च की जरूरतों को पूरा करने में समर्थ हुआ। इसी बीच बदनसिंह ने एक राजा की हैसियत से अपना हरम बनाना शुरू कर दिया।[142]

एक बार जब वह अपने गृह क्षेत्र में निर्विवाद रूप से शक्ति सम्पन्न बन गया तो बदनसिंह ने तत्कालीन आम परिपाटी के मुताबिक अपनी सत्ता और शक्ति के विस्तार की शुरूआत कर दी।[143]

1730 के दशक में ही सूरजमल ने अपने पिता की, जो सहृदय और शांतिप्रिय व्यक्ति प्रतीत होता है, सहायता की। शीघ्र ही उसका छोटा भाई प्रतापसिंह भी सहायक हो गया। जैसे–जैसे बदनसिंह की उम्र बढती गई और दृष्टि क्षीण होती गई, राजकाज में सूरजमल की भागीदारी बढती गई। धीरे–धीरे एक स्थिति ऐसी आ गई जब बूढे होते सरदार ने कामकाज चलाना शारीरिक तौर पर असंभव समझा। अतः उसने स्वेच्छा से अपने राज्य का कारोबार अपने प्रिय और योग्य पुत्र और स्पष्ट उत्तराधिकारी (सूरजमल) को शासनपाल[144] (गवर्नर) के तौर पर सौंपा।

सूरजमल 1750 के आस–पास शासनपाल (रीजेंट) बना।[145] पहले से अधिक बदनसिंह को मात्र राज करना था, जबकि सूरजमल वास्तविक शासक बन गया।

एक समर्पित पुत्र और एक शक्तिशाली राजा (जयसिंह) के अपने पक्ष में होने के कारण बदनसिंह ने तत्काल राज्य–विस्तार का काम शुरू कर दिया। अपने स्थानीय असन्तोष एवं भौगोलिक निकटता के कारण मेवात ने बदनसिंह का ध्यान आकर्षित किया। इसने एक–एक करके यहाँ अपने पैर जमाए, जिससे जयपुर नरेश को पीडा ही हुई, क्योंकि वह उसकी जमींदारी में ही

था। अंततः मुहम्मदशाह को 2,40,000 रूपये वार्षिक दर पर जाट सरदार के लिए खोह, नगर, कठूमर (मेवात में) परगने बनाने पडे।[146] सन् 1738 में सूरजमल ने मथुरा एवं आगरा जिले के फरह, ओल, अछनेरा और उनके आसपास के पडौसी क्षेत्र पर कब्जा कर लिया। फिर 1739 में नादिरशाह का आक्रमण जहाँ मुगल साम्राज्य के लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ, वहीं अंततः इससे बदनसिंह के क्षेत्र एवं भाग्य में अचानक बढोतरी का मार्ग प्रशस्त हुआ। उसने दिल्ली और आगरा दोनों के पडोसी क्षेत्र पर नियंत्रण प्राप्त कर लिया उसने अपने अधिकार क्षेत्र में और वृद्धि की, जहाँ उसने नए किले बनवाने शुरू किए।[147]

मोहम्मदशाह के शासनकाल में सूरजमल ने बल्लभगढ के अपने निकट सम्बन्धी बलराम जाट को अपना संरक्षण प्रदान किया। हमें यहाँ ज्ञात होता है कि उसके पिता चरणदास ने लगान की अदायगी रोक ली और मुगल अधिकारी मुर्तजा खाँ को चुनौती दी। मुर्तजा खाँ ने उसे गिरफ्तार कर लिया। पर बलराम ने मुर्तजा खाँ को चकमा देकर अपने पिता को मुक्त करा लिया। इसके बाद दोनों सूरजमल के पास आए और उसका तथा साथ ही स्थानीय सर्मथन प्राप्त करके उस अधिकारी की हत्या कर दी। थोडे ही समय में चौधरी बलराम ने एक तालुका बना डाला और वहाँ मिट्टी का एक किला बनाया और उसे नाम दिया बल्लभगढ। अपनी सफलता से प्रोत्साहित होकर भरतपुर का शक्तिशाली समर्थन पाकर उसने पलवल और फरीदाबाद पर (जो निजाम की जागीर में थे) अधिकार कर लिया। समय के साथ वह समृद्धिशाली और पर्याप्त ताकतवर भी हो गया और राय की उपाधि धारण कर उसने हथियाए हुए क्षेत्र पर शासन करना शुरू कर दिया।[148]

इस प्रकार मोहम्मद शाह की अकर्मण्ता और भीरूता का लाभ उठाते हुए बदनसिंह ने अपने अधिकृत क्षेत्र और अधिकार शक्ति में बहुत अधिक वृद्धि कर ली। उसके शासन के अंत तक आगरा सूबे का अधिकाशं भाग और दिल्ली से फरीदाबाद तक का कुछ हिस्सा उसके या उसके कबीले के लोगों के नियंत्रण में आ गया था। वह इतना शक्तिशाली हो गया था कि हिंदुस्तान में उसकी सबसे अच्छे लोगों में उसकी गणना होने लगी और उसे किसी भी हमले का प्रतिरोध करने की क्षमता पर भी विश्वास हो गया था। अपने द्वारा संचित धन–दौलत में वह बडे से बडे राजा से होड कर सकता था। इस तरह केवल नाम को छोडकर जाट राज्य का उसका चिर–पोषित स्वप्न साकार हो गया था।[149]

फिर भी जाटों के भाग्योदय का प्रारंभ अभी केवल आधा ही हुआ था। अहमदशाह के आगे आने वाले और अधिक संकटापन्न शासन में पूर्ण रूप से उदित हुआ उसके शासन के प्रारम्भिक काल में सूरजमल की सहायता पर निर्भर हो बलराम जाट ने पुनः अराजकता उत्पन्न करना शुरू कर दिया था और उसने फरीदाबाद के आसपास के और अधिक गाँवों पर कब्जा करने का विचार किया।

अतएव नए वजीर सफदरजंग ने विद्रोहियों को स्वयं दंड देने के लिए संकल्प किया। तथापि उसकी दण्डात्मक कार्यवाही वस्तुतः उसके अपने शत्रु सूरजमल की मित्रता को परिश्रमपूर्वक करने में ही समाप्त हो गई। शाही वजीर से सूरजमल के गठबंधन ने उसकी छवि और प्रतिष्ठा में तो वृद्धि की ही साथ ही राजा के रूप में (अक्टूबर, 1752) बदनसिंह की शाही मान्यता को भी

सुनिश्चित कर दिया। उसे जागीरों के लिए राजकीय एकाधिकार पत्र दिये जाने के जो आदेश पहले दिये गये थे सफलता उनके मामले को भी निपटाने में भी सफलता मिली।[150]

नव अधिकृत क्षेत्रों में जाट–नियंत्रण समकालीन राजनीति के उतार–चढावों के अनुपात में कई उलट– फेर से होकर गुजरा। यद्यपि वह पूरी तरह तो खत्म नहीं हुआ तथापि भीतर और बाहर दोंनों के भारी सैन्य दबाब के कारण सुदूर उत्तर और पूर्व में उनका यह एकाधिकार एक से अधिक बार कमजोर जरूर पडा।

किंतु एक बार जब इसका पराभव हुआ तो जाट शासक ने प्रभावित क्षेत्र में अपने अधिकार को पुनः स्थापित कर लेने में सफलता प्राप्त कर ली। इस तरह 1753–1754 में इमाद–उल–मुल्क और उसके मराठा साथियों ने एक ओर मथुरा से लेकर राजधानी के आसपास तक और दूसरी ओर शिकोहाबाद तक के क्षेत्र में जाट–शासक को अधिकारच्युत कर दिया। पर उनके जाते ही सूरजमल ने बाहरी चौकियों पर अधिकार कर लिया और कुछ नए क्षेत्र भी शामिल कर लिए।[151]

यदि हम जाटों के विस्तार का सूक्ष्मता से अध्ययन करें तो निम्न मुख्य घटनाएँ सामने आती हैं। प्रथम, बदनसिंह और सूरजमल ने जातिगत जाट क्षेत्रों पर अपनी नजरें गडाएँ रखी। हमें यह धारणा इस तथ्य से प्राप्त होती है कि जब उन्होंने अलीगढ और बुलंदशहर जिलों और उनके आसपास के क्षेत्रों पर एक बार कब्जा कर लिया तो बजाय पूर्व में आगे जाने के वे यमुना के बाईं ओर उत्तर दिशा में मेरठ की ओर बढे। द्वितीय उन्होंने अपने अधिकार में अधिकाधिक भूमि को लाने का प्रयत्न किया तथापि वे बल्लभगढ और गोहद जैसे विनम्र जाट सरदारों की सहायता करने के खिलाफ भी नहीं थे। यह युद्ध और राजनीति में उनके पुष्ट सामान्य ज्ञान को उदघाटित करता है – क्योंकि यदि वे चाहते भी तब भी समस्त जाट क्षेत्र पर अचानक अधिकार असम्भव था तो यह एक जाट संघ को स्थापित करने की दिशा में उनके प्रयत्नों का प्रतीक है।[152]

ब्रजराज बदनसिंह ने बुधवार 9 जून, 1756 (ज्येष्ठ सुदी एकादशी संवत 1813) को अपनी अंतिम साँस ली।[153] मृत्यु के समय उसकी अवस्था अवश्य ही 75 वर्ष से अधिक रही होगी।[154] इतिहास में एक व्यक्ति के रूप में बदनसिंह का महत्व परस्पर विरोधी सरदारों के क्षेत्रों का आकस्मिक संगठन कर एक राज्य–निर्माण के उसके प्रयत्नों एवं साथ ही अपने बेहद लोकतांत्रिक कबीले के लोंगों को राजतंत्र के अनुरूप बना सकने पर आधारित है। उसके नेतृत्व की शुरूआत के समय तक निस्संदेह जाटों ने अपने लिए एक स्थान बना लिया था किंतु वह स्थिर होने की बजाय अस्थिर अधिक था। उन्होंने संगणी शक्ति प्राप्त कर ली थी पर उसमें साहचर्य और उचित दिशा का अभाव था। तत्कालीन गलत बातों को सुधारने और उनके लोगों का सही दिशा में नेतृत्व करने का कार्य बदनसिंह के ही जिम्मे था।

सुविधा और वैभव की उसकी समझ ने बदनसिंह को राजतंत्र की ओर आकर्षित किया था। तथापि यह एक यथार्थवादी होने के नाते वह उस दिशा में बढने के खतरे की कल्पना कर सकता था। अतः वह सावधानी के साथ उल्लेखनीय धैर्य और कौशल दिखाते हुए आगे बढा। एक ओर तो उसने बाहरी विरोध को निरस्त्र करने का प्रबन्ध किया।[155] दूसरी ओर कपटियों को दबाकर और वफादारों को पुरस्कृत करके अपनी आंतरिक स्थिति को सुदृढ करने का प्रयास किया। दोनों प्रकार

से वह अपनी महिमा में ऊँचा उठता गया और उस ऊँचाई तक पहुँच गया जिस तक उसका कोई पूर्वज नहीं पहुँच पाया था। राजा की शक्ति के साथ उसने राजाओं जैसी शान–शौकत भी चाही। इस तरह अपनी छवि को ऊँचा बनाने के लिए उसने अपनी वंश परम्परा को भगवान कृष्ण से जोडना चाहा।[156]

इस तरह अपने कार्यों और व्यवहार द्वारा बदनसिंह ने अपनी उच्चता की प्रतिष्ठा की महत्ता भी प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया। राजा की उपाधि प्राप्त करने की उसकी एक दीर्घ लालसा थी। यद्यपि जोधपुर के अजीतसिंह और अभयसिंह उसे अपने पत्रों में राजा से संबोधित करते थे तथापि वह इस शाही उपाधि की औपचारिक स्वीकृति चाहता रहा।

वह तब सनकी मालूम होता है जब 1730ई. में उसने अपने अधिकारियों (खिज्रखाँ और नूर अली खाँ) के माध्यम से सरबुलंद खाँ से (जो उस समय आगरा में था) अनुरोध किया की वह ठाकुर की बजाय उसे राजा कहकर संबोधित करे।[157] जयसिंह की ईर्ष्या और कुछ विश्वासघात के भय और कुछ अपनी दृष्टिहीनता के कारण मुगल दरबार में हाजरी बजाने की उसकी हिचकिचाहट ने स्पष्टतः उसकी चिर आकांक्षा के पूर्ण होने 1752 तक विलंब किया। अंततः 1752 में सफदरजंग ने शहंशाह को उसे 'महेन्द्र'[158] की उपाधि के साथ राजा बनाने के लिए प्रेरित किया।

इन सब घटनाओं के सम्मिलित परिणामों के कारण बदनसिंह ने अपने कबीले के लोगों का पर्याप्त आदर एवं उन पर अधिकार अर्जित किया। तथापि यह मान लेना कि जाटों ने राजा की व्यवस्था या संस्था को पूरी तरह से या तत्काल मान लिया तो यह जाट–चरित्र के आधारभूत तत्वों की उपेक्षा करना होगा। स्वयं बदनसिंह को इस विषय में कोई भ्रम नहीं था। इससे उस विवेचनीय तथ्य पर प्रकाश पडता है कि वह या उसके पुत्रों ने सब कुछ चाहने के बावजूद मुगल–शैली जैसे पूर्ण राजतंत्र का सपना कभी नहीं देखा। इसकी बजाय उन्होंने समझदारी के साथ अफगानी शैली जैसी व्यवस्था पर सन्तोष किया जो उनके लोगों के चरित्र एवं भावनाओं के लिए ज्यादा उपयुक्त थी।

उपसंहार के रूप में यद्यपि सूरजमल का योगदान बदनसिंह के कार्यों के अधिकांश हिस्से से जुडा है तथापि जाट राज्य को आकार देने का श्रेय मूल रूप से बदनसिंह को ही मिलना चाहिए। यह उसकी महान उपलब्धि थी।[159] बदनसिंह ने जाट राज्य की रूपरेखा बनाई और सूरजमल उसका प्रथम वास्तविक राजा था।

संदर्भ

1. 'एशिया' लेखक ए. एच. कीन, सर रिचर्ड टेम्पल द्वारा सम्पादित, पृ. 210–218।
2. रिसले, पीपुल्स ऑफ इण्डिया, पृ. 8।
3. इब्बेटशन, पंजाब ग्लौसरी II से उद्धत पृ. 366।
4. जिमर ने ऋग्वेद एक उदाहरण से यह स्पष्ट किया है कि कभी–कभी विधवा अपने पति के छोटे भाई से विवाह कर लेती थी।
5. इब्बेटशन, सेन्सन रिपोर्ट, 1881, पैरा 446।
6. जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी, 1899, पृ. 534।
7. वही, 1909, पृ. 63।
8. यदुनाथ सरकार : फाल दी मुगल एंपरर, खंड–2 पृ. 306।
9. उपेन्द्र नाथ शर्मा : जाटों का नवीन इतिहास, प्रथम संस्करण–1977, पृ. 1।
10. देशराज जघीना : जाट इतिहास, पृ. 59।
11. वही : पृ. 62।
12. राजस्थान का कुक द्वारा संपादित संस्करण, 128, फुट नोट।
13. यह असम्भव नहीं है कि इस प्रसिद्ध नगर का नाम दिल्ली जाटों के नाम के साथ जुडा हो, जो अभी भी दिल्ली में बडी संख्या में पाये जाते हैं। लोक निरुक्ति ढिल्लों को ढीला अथवा आलसी के साथ जोडती है।
14. रोज की पंजाब ग्लौसरी, II, 56, 472 III, 56।
15. देखिए 'राजस्थान' I, पृ. 169, फुट नोट, डबलू कुक ने लिखा है कि ''मंगोल तथा हिन्दू परम्परा की तुलना का कोई महत्व नहीं है।
16. ईलियट का इतिहास, I पृ. 518।
17. अंग्रेजी अनुवाद, सुचारु, पृ. 207।
18. महाभारत : सभा, अध्याय 39. भीष्म, अध्याय, 8, बन पर्व, अध्याय, पृ. 183। एस.द्विवेदी का संस्कृत अनुवाद, भाग 10, पृ. 288।
19. देशराज जघीना : जाट इतिहास, पृ. 62।
20. कालिका रंजन कानूनगो : हिस्ट्री ऑफ दी जाटस, पृ. 2।
21. रिसले, पीपुल ऑफ इण्डिया, पृ. 6।
22. उपेन्द्र नाथ शर्मा : जाटों का इतिहास, पृ. 2।
23. गिरीश चन्द्र द्विवेदी : जनरल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, खंड 48, पृ. 378।
24. देशराज जघीना : जाट इतिहास, पृ. 99।
25. उपेन्द्र नाथ शर्मा : जाटों का नवीन इतिहास, पृ. 2।
26. कालिकारंजन कानूनगो : हिस्ट्री ऑफ द जाटस, पृ. 18–23।
27. देशराज जघीना : जाट इतिहास, पृ. 84।
28. वही, पृ. 84।
29. वही, पृ. 84।
30. क्षत्र व शून्ये पुरालोके मार्गवेन यदाकृते
    विलोक्या क्षत्रियों घावी कन्यास्तेषा सहस्त्रशः
    ब्राहम्णान् जगृहुस्तस्मिन पुत्रोत्पादन लिप्सया
    जट्ठरे पारित गर्भ संरक्ष्य विविधत पुरा
    पुत्रान सुषसिरे कन्या जाठ़रान् क्षत्रवंशमान।।
31. ग्राउज मथुरा (1879), पृ. 21–22।
32. इस सम्बन्ध में जे. वी. जाथर का एक पत्र जो 8 अगस्त, 1924 को लिखा।

33. उपेन्द्र नाथ शर्मा : जाटों का नवीन इतिहास, पृ. 4।
34. वही
35. वही
36. देशराज जघीना : जाट इतिहास, पृ. 85।
37. गिरीश चन्द्र द्विवेदी : जनरल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, पृ. 378।
38. देशराज जघीना : जाट इतिहास, पृ. 107।
39. वही पृ. 104–106।
40. रामवीर सिंह वर्मा : महाराजा सवाई जवाहरसिंह और उनका युग, पृ. 29–30।
41. वही, पृ. 31।
42. रामवीर सिंह वर्मा : महाराजा सवाई जवाहरसिंह और उनका युग, पृ. 29।
43. ठा. गंगीसिंह : ज्ञात वंश का इतिहास, भाग–2।
44. रामवीर सिंह वर्मा : महाराजा सवाई जवाहरसिंह और उनका युग, पृ. 39।
45. वही, पृ. 40।
46. बील, बुधिस्ट रिकॉर्डस ऑफ दि वर्ल्ड, II 272।
47. इलियट, I, पृ. 104।
48. चचनामा, ईलियट I, पृ. 151।
49. चचनामा, मिर्जा कलीथ बेग का अनुवाद, पृ. 124, 137।
50. ईलियट, I पृ. 187।
51. ईलियट, I पृ. 383।
52. वही, पृ. 448।
53. ईलियट, II पृ. 247।
54. तवकात–ए–अकबरी, ईलियट द्वारा उद्धत, II, पृ. 478।
55. ईलियट, II, पृ. 218।
56. तारीख–ए–फिरोजशाही, ईलियट, III, 245।
57. मलफूजात–ए–तिमूरी, ईलियट, III, 429।
58. मेमोइर्स ऑफ बाबर, ए. एस. वेवरिज, पृ. 387।
59. वही, पृ. 454।
60. हैवत खां की फथखान जाट के विरुद्ध लडाई (लेखक की पुस्तक शेरशाह, पृ. 309–11)
61. ए. एल. श्रीवास्तव : भारत का इतिहास 1000 से 1707 ई. पृ. 256।
62. वही, पृ. 290।
63. ए. एल. श्रीवास्तव : भारत का इतिहास 1000 से 1707 ई. पृ. 290।
64. ए. एल. श्रीवास्तव : भारत का इतिहास 1000 से 1707 ई. पृ. 294–95।
65. वही, पृ. 296।
66. ए. एल. श्रीवास्तव : भारत का इतिहास 1000 से 1707 ई. पृ. 298–99।
67. सरकार, हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, III पृ. 290।
68. मारवाड सेन्सस रिपोर्ट (वर्नाक्यूलर) 1892 III, पृ. 56।
69. सरकार, हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, III, पृ. 332।
70. हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, III, पृ. 330–336।
71. रोजनामचा, 134, एफ।
72. रोजनामचा, 135, बहादुर शाहनामा।
73. अखबरात, 13 अगस्त, 1707 : मेम्बोआर दे यात, 13।
74. रोजनामचा, 135, बहादुर शाहनामा।
75. के. आर. कानूनगो, जाट्स, 48।

76. इर्विन कृत लेटर मुगल्स, 1332।
77. मुर्तजा हुसैन कृत हदीकत–उल–अकलीम (नवल किशोर संस्करण) 129।
78. मेम्बोआर दे यात, 13 : कानूनगो कृत जाट्स, 49।
79. अखबारात, 29 अक्टूबर, 29 नवम्बर, 2 दिसम्बर, 1712, रोजनामचा, 135।
80. अजायव–उल–अफाक (रघुवीर सिंह पुस्तकालय पांडुलिपि), 56।
81. वही, 55, 56, 60।
82. वही, 123, 124 और 55, 58।
83. वही, 57, 58।
84. रोजनामचा, 135–136।
85. अखबरात, 20, 24 सितम्बर, 20 अक्टूबर, 1713।
86. मेम्बोआर दे यात, 13।
87. वही, 14।
88. रोजनामचा, 136, इर्विन कृत लेटर मुगल्स 1324।
89. शिवदास, 16, इकबाल 22–23, अहवाल 59।
90. शिवदास, 17, इकबाल 24।
91. अखबरात, 16, 17, 18, 19, 20, 27 अक्टूबर, 1716।
92. मेम्वोआर दे यात, 14–15।
93. अखबरात, 9, 21 नवम्बर, 1716।
94. पार्टीज एंड पॉलिटिक्स, 124–125 में जयपुर रिकार्ड (परिशिष्ट व्यक्तिगत II, 143) उदधृत।
95. शिवदास, 17–18, रोजनामचा, 137, इकबाल 24।
96. अखबरात, 5, 6, 9 मोहर्रम, जैसा कि यू.एन. शर्मा कृत इतिहास में उदधृत 267।
97. रोजनामचा, 176।
98. शिवदास, 20, 25 इकबाल 27, रोजनामचा, 137।
99. फरमान मार्च, 1718 और फरमान रुपट द्वारा 185, वी. एस. भटनागर द्वारा जयसिंह में उदधृत, 80।
100. कँवर, II 427, रोजनामचा, 178 और 137।
101. मेम्वोआर दे यात, 84।
102. कॅवर, II 427, सतीश चन्द्र (पार्टीज एंड पॉलिटिक्स, 125)
103. जोनाथन स्कॉट, फरिश्ताज हिस्ट्री ऑफ डकन, लंदन : 1974 के. के., II, भाग V, 150।
104. एम. यू., 1439।
105. शाह, 2।
106. के. के., 1781, जी. एस. सरदेसाई द्वारा सम्पादित सेलेक्शन फ्रॉम द पेशवाज दफ्तर XXX, 17a, 17b ।
107. रोजनामचा, 243–246 : शिवदास, 37–38 कॅवर, II, 438–441, इकबाल, 47–49।
108. के. के. II, 823–828, मेम्वोआर दे यात, 84।
109. कामराज, इवरतनामा, 68a, सतीश चन्द्र कृत पार्टीज एण्ड पॉलिटिक्स, 150।
110. शिवदास, 44, इकबाल, 56।
111. कॅवर II 454।
112. कानूनगो कृत जाटस 55।
113. शिवदास 72।
114. वही 76।
115. कानूनगो कृत जाटस 56।
116. लेटर मुगल्स, II 68 में उदधृत कासिम।
117. सियर, I, 315 ; श्रीवास्तव कृत अवध, 27–28।

118. शिवदास 121–122, 125 गंगासिंह द्वारा उदधृत पथैना रासो, कृति उद्धरण 88–91।
119. कानूनगो कृत जाटस 57, बी. एस. भटनागर कृत जयसिंह, 102b ।
120. वही, 57।
121. सुजान 60।
122. मेम्वोआर दे आत, 15, 84, तारीख–ए–मोहम्मदी (लेटर मुग्लस II 122 एम. एन. में उदधृत।
123. मेम्वोआर दे आत, 16, तवारीख–ए–हुनूद, 14a ।
124. तवारीख–ए–हुनूद, 14a, और 14b।
125. डाउ कृत हिन्दुस्तान, II 352।
126. यू. एन. शर्मा द्वारा इतिहास, 310 में उद्धृत।
127. वही पृष्ठ. 10–11।
128. शिवदास, 123, 125 और 127 ; कँवर II, 484।
129. कँवर, II, 483 एम. यू I, 440।
130. तवारीख–ए–हुनूद, 17a –18b ; कँवर II 484, के. के. II 945।
131. कॅवर, II, 484, के. के. II, 945–946, मेम्वोआर दे यात, 15।
132. तवारीख–ए–हुनूद, 18b।
133. मेम्वोआर दे यात, 63 ; सुजान, 36 ; कानूनगो कृत जाट्स 60।
134. सतीश चन्द्र कृत पार्टीज एंड पॉलिटिक्स, 178–179।
135. गिरीश चन्द्र द्विवेदी का हिन्दी में लेख 'बदनसिंह के काल में भरतपुर का प्रादेशिक विस्तार' उपलब्धि (संवत, 2056), 66।
136. मेम्वोआर दे यात, 16–17।
137. वही, 17।
138. मेम्वोआर दे यात, 20।
139. वही, 17; तारीख–ए–भरतपुर, 4b भी देखें।
140. मेम्वोआर दे यात, 17।
141. मेम्वोआर दे यात, 17 और 29 ; तवारीख–ए–हुनूद, 18 b।
142. मेम्वोआर दे यात, 17, 18, 20–21।
143. वही, 17।
144. वही, 27 और 29 ; तवारीख–ए–हुनूद, 202।
145. इलियट, VIII, 362, में मजमा–उल–अखबार।
146. सुजान, 6, 40 ; ऐशुब, II 316 ; यू. एन. शर्मा द्वारा उदधृत, इतिहास, 323।
147. मेम्वोआर दे यात, 27, 29।
148. तारीख–ए–अहमदशाही, 22b, 23a और 90a ; मेम्वोआर दे यात, 34।
149. काजी मुर्तजा हुसैन कृत हदीकत–उल–अकालिम (लिच, लखनऊ), 171।
150. तारीख–ए–अहमदशाही, 25b, 43b, 45a, 52a ।
151. तारीख–ए–आलमगीर सानी ; एस. पी. डी. XXVII, 90 ; शाह 2।
152. कानूनगो कृत, जाटस, 147।
153. तवारीख–ए–हुनूद 20a।
154. सुजान, 217 और मेम्वोआर दे यात, 21।
155. मेम्वोआर दे यात, 19, 31।
156. सुजान 4–5, 211 दीर्घ, 3 ; रस पीयूष निधि और माधव विनोद सोमनाथ में 3, 318।
157. इर्विन द्वारा लेटर मुगल्स, II, 213-214।

तृतीय अध्याय

सूरजमल का जीवन परिचय – सूरजमल का जन्म 1707 ई. महाराजा बदन सिंह के घर कामां की जाट रानी देवकी के गर्भ से हुआ। इस महान जाट ज्योतिपुंज के पितृत्व के सम्बन्ध में कुछ विवाद है। बैंदेल के साक्ष्य का अनुमोदन करते हुए सर जदुनाथ सरकार[1] और उसका अनुसरण करते हुए प्रो. एच.आर. गुप्ता[2] कहते हैं। कि सूरजमल को गोद लिया गया था और किसी भी तरह वह बदन सिंह का वास्तविक पुत्र नहीं था। इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए डा. पाण्डेय ने अनुमान लगाया कि बदन सिंह का भाई रूप सिंह सूरलमल का पिता था और जिसे अपने भाई की मृत्यु के बाद उसने गोद ले लिया था।[3] प्रो. कानूनगो वैंदेल के साक्ष्य को सुनी–सुनाई किवदंती कहकर नकारते है और सूरजमल को बदन सिंह की संतान मानते हैं।[4] परन्तु न तो केवल उसके लिए कोई आधिकारिक प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। और न वैंदेल के कथन को अस्वीकार का कोई स्पष्ट कारण बताते हैं।

ऊपर उल्लिखित तीनों दृष्टिकोणों में वैंदेल शामिल हैं, अतः उसके दृष्टिकोण का गहन अध्ययन आवश्यक है। फ्रांसीसी मिशनरी का दावा है कि सूरजमल किसी अज्ञात जाति की एक सुन्दर स्त्री (किसी और की पत्नी) से जन्मा था, जो गोद में सूरजमल को लिए अपनी बहन (जाट राजा के हरम की एक सदस्य) से मिलने आया करती थी जिस पर बदन सिंह मुग्ध हो गया, हालांकि यह स्त्री मन से कभी नहीं चाहती थी, किन्तु उसने यह जान–समझ लिया था कि अपने इस प्रेमी का वह विरोध नहीं कर पायेगी। यह तो वह जानती ही थी कि उसकी बहन तो बदन सिंह के रनिवास में भलिभँति प्रतिष्ठित है। अतः उसका भी वहाँ स्थान सुरक्षित हो सकता है। इस प्रकार वह भी उसके हरम में सम्मिलित हो गई और नये पति की सबसे अधिक प्रिय रानी बन बैठी और इस प्रक्रिया में उसके पुत्र को ''सारा सौभग्य मिल गया।''[5]

इस काल्पनिक कहानी की अप्रमाणिकता एकाधिक दृष्टि से स्पष्ट है। प्रथम यद्यपि वैंदेल इसे स्पष्ट नहीं करता, किन्तु 'हरम' का उल्लेख यह दर्शाता है। कि बढती ताकत के साथ बदन सिंह ने शाही रिवाज को उपरोक्त घटना, यदि वह वास्तव में घटी भी थी, के पूर्व ही रखना शुरू कर दिया था। पहले एक स्थान पर वह लिखता है कि हरम बनाये रखना बदन सिंह कि 'समद्धि' और प्रतिष्ठा प्रदर्शित करता था,[6] जो उसके द्वारा 1723 ई. जाटों का नेतृत्व अपनाने के बाद ही सम्भव हो सकता है। इसका तर्कसंगत अर्थ यह होगा कि गोद में लिए बच्चे के साथ उस स्त्री ने 1723 ई. के काफी समय बाद जाट–हरम में प्रवेश किया होगा। अतः इस कथन के अनुसार सूरजमल का जन्म 1723 ई. में या उसके बाद हुआ होगा और उसकी मृत्यु के समय (1763) सूरजमल 55 वर्ष का था,[7] वह उसके जन्म को और उसकी तथाकथित माँ के बदन सिंह के हरम में प्रवेश को 1708 ई. या उसके आस–पास बताता है। किन्तु कल्पना में चाहे कितने भी घोड़े दौडा लिए जायें यह विश्वास नहीं किया जा सकता कि 1708 ई. या उसके बाद के दशक तक बदनसिंह इतना सम्पन्न हो गया था कि वह हरम रख सकता था। वैंदेल के वर्णन में यह असंबद्धता, जो

किसी कारण से इतिहासकारों की नजर से चूक गई, उसके सूरजमल के पितृत्व के सम्बन्ध में पूर्णतः समर्थन शून्य वर्णन को मिथ्या ठहराती हैं। वह तथाकथित स्त्री बदनसिंह की पत्नी बनी या नही ंहम नहीं कह सकते परन्तु वह निश्चय ही सूरजमल की माँ नहीं हो सकती थी। संभावना यह हो सकती है कि वैंदेल ने सूरजमल के विरोधियों द्वारा फैलाई गई कुटिलता पूर्ण अफवाहों को अपनी कहानी का आधार बनाया हो। महत्वपूर्ण जाट व्यक्तियों के निजी मामलों के बारे में फैलाई गई दुर्भावना पूर्ण अफवाहों का अनुमोदन करते हुए उल्लेख करना वैंदेल की कमजोरी थी। यह देखने के लिए उसके द्वारा किए गए वर्णनों के पृष्ठों को उलटना भर पर्याप्त है। वह एक प्रतिष्ठित जाट के पितृत्व पर विवाद करता है।[8]

वैंदेल की धारणा को और आगे बढाते हुए डॉ. पाण्डेय यह मत प्रतिपादित करते हैं कि सूरजमल बदन सिंह के भाई रूपसिंह का, उसकी पत्नी देवकी से, पुत्र था और रूपसिंह की मत्यु के बाद (जिसे वह 1722 या उसके पूर्व बताते हैं) उसकी विधवा नन्हें सूरजमल को बांहों में लिए बदन सिंह के हरम में प्रविष्ट हो गई। अपने कथन के समर्थन में वे जाटों के रिवाज 'धरेजा' (अपने भाई की पत्नी से विवाह) का और डीग के चार तालाबों में से एक के 'रूप सागर' नाम का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।[9] सूरजमल के पितृत्व के सम्बन्ध में डां. पाण्डेय द्वारा लगाये गये अनुमान का विवरण प्रमाण रहित है और अखंडनीय समकालीन साक्ष्य के विपरीत है। सुजान चरित्र में एक प्रासंगिक अंश है– जिसमें सफदरजंग स्पष्ट रूप से रूपसिंह को सूरजमल का 'चाचा' कहता है, न कि पिता।

सूरजमल के घनिष्ट मित्र का यह निर्णायक वक्तव्य और जिसका अनुमोदन करते हुए उसके निकट साक्षी और ब्रज के निवासी (सूदन) ने उसे दर्ज किया है, डॉ. पाण्डेय की काल्पनिक पुनर्रचना को ध्वस्त कर देता है। वे रूप सिंह की मृत्यु को 1722ई. बताते है और उस तरह उनके अनुसार सूरजमल का जन्म उस वर्ष या उसके कुछ समय पूर्व हुआ था। परन्तु इसके साथ ही वे गणना की अंतर्निहित असंभावनाओं को सुलझाने की चिन्ता किए बिना बैंदेल से इस बात पर भी सहमत होते हैं कि 1763ई. में सूरजमल 55 वर्ष का था।[10] उनके द्वारा प्रस्तुत दोनों तर्क स्वीकार योग्य नहीं है। रूपसिंह बदनसिंह का सगा भाई था और उनके सम्बन्ध किसी भी प्रकार से खराब नहीं थे। अतः रूपसिंह की मृत्यु के बाद उसके परिवार वालों द्वारा उसकी स्मृति को सुरक्षित रखा जाए, रूपसिंह निश्चय ही इसके योग्य था। इसका ऐसे श्रद्धापूर्ण समर्पण के लिए उसका सूरजमल का पिता होना जरूरी नहीं था। इसी तरह यह निःसन्देह सच है कि अधिकांश जाट कुल विधवा–विवाह या 'करेवा' के रिवाज का पालन करते हैं। परन्तु डॉ. पाण्डेय भूल जाते हैं कि और लोगों से अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए स्वाभिमानी सिनसिनवार सामान्यतः ऐसे रिवाजों का पालन नहीं करते।[11] प्रतिष्ठा के प्रति इतने सचेत व्यक्ति के लिए यह एक और कारण था कि वह स्वयं एक विधवा से विवाह से बचा रहे।

वैंदेल को छोड़कर अन्य सभी इतिहासकार सूरजमल के पितृत्व के सम्बन्ध में किसी प्रकार का कोई संदेह व्यक्त नहीं करते। वे स्पष्ट रूप से उसका बदनसिंह के पुत्र के रूप में उल्लेख करते है। सूदन[12] और सोमनाथ[13] ने जिन्हें जाट मामलों की व्यक्तिगत अच्छी जानकारी थी, उसे

बदन सिंह का ज्येष्ठ पुत्र बताया है। अन्य स्वतंत्र स्त्रोत्र भी इसकी पुष्टि करते हैं। इसलिए तारीख–ए–अहमदशाही का लेखक, जो सूरजमल का समकालीन था बदनसिंह का सूरजमल के पिता के रूप में उल्लेख करता है।[14] वैंदेल से ज्यादा विश्वसनीय अधिकारी इतिहासकार फ्रांसू पूरा और स्पष्ट विवरण देते हुए हमें बताता है कि सूरजमल बदनसिंह का ज्येष्ठ पुत्र था, जिसका जन्म कामां के एक जाट परिवार की कन्या रानी देवकी से हुआ था।[15] गुलाम अली भी सूरजमल को बदनसिंह का ज्येष्ठ पुत्र कहता है।[16] हमारे दृष्टिकोण को सिद्ध करने वाले अन्य स्त्रोतों में 'तवारीख–ए–भरतपुर'[17] और 'मजमा –उल–अखवार'[18] भी हैं।

महाराजा सूरजमल एक लम्बे–तगडे और सुदृढ़ शरीर के योद्धा थे। उनका रंग सांवला था। उनकी आंखों से तेज टपकता था। उनके चहरे को देखकर ऐसा महसूस होता था, मानो अग्नि निकल रही हो। वे नेक मिजाज और सादे चाल–चलन के व्यक्ति थे। उनमें राजनैतिक योग्यता, सूक्ष्म–दृष्टि तथा निश्चल बुद्धिमत्ता एक बड़े अंश में विद्यमान थी। इमादुस्स्सादत का लेखक लिखता है– यद्यपि वह (सूरजमल) एक कृषक जैसा पहनावा पहनता था और केवल अपनी ब्रज भाषा बोल सकता था, परन्तु वास्तव में वह जाट–जाति का प्लेटो था। चतुराई, बुद्धिमता और राजस्व एवं नागरिकों के मामलों के प्रबन्ध में हिन्दुस्तान के प्रतिष्ठित लोंगों में उनकी तुलना केवल आसफजाह बहादुर (निजाम) से हो सकती थी। उसमें अपने मूलवंश के सभी अच्छे गुण विद्यमान थे–स्फूर्ति, साहस, चालाकी, कठोर अध्यवसाय, अदम्य तेज एवं भरपूर ओज जो कभी पराजय स्वीकार नहीं करता था, परन्तु किसी उत्तेजक खेल के अनुधावन में, चाहे वह युद्ध हो अथवा राजनय, वह अपने समकालीनों की अपेक्षा अधिक कोमल अन्तःकरण का व्यक्ति नहीं था, षडयंत्रों और अनैतिक कूटनीति के युग में उसने पाखंडी मुगलों और चालाक मराठों को चकरा दिया था। संक्षेप में वह एक चौकन्नी चिड़िया के समान था जिसने अपने को बिना फंसाये प्रत्येक जाल से दाना चुगा।[19]

अपने पिता के जीवन–काल में उसका पहला महान कार्य 1732 ई. में भरतपुर के किले पर कब्जा करना था। इसके लिए उसने (सूरजमल) उसके स्वामी खेमकरण जाट सोगरिया पर रात्रि में साहसपूर्ण आक्रमण किया। उस समय वह एक छोटा–सा मिट्टी का किला था और उसका उस समय तक दुर्भेद्य दुर्गीकरण नहीं हुआ था, जिसके साथ उसका नाम बाद में जोड़ा गया था। उसकी अप्रशिक्षित प्रतिमा ने उसे एक अभेद्य दुर्ग में परिवर्तित कर दिया और उसके इर्द–गिर्द एक सम्पन्न नगर का विकास हुआ–ऐसा नगर जो वैभव में दिल्ली और आगरा की शाही राजधानियों से टक्कर ले सकता था। उसके न्यायपूर्ण और बुद्धिमान शासन ने सभी वर्गो, व्यवसायों और धर्मो के लोगों को उसके राज्य की ओर आकर्षित किया, जो उस समय हिन्दुस्तान के अव्यवस्थापूर्ण मैदानों में एक मात्र ऐसा स्थान था, जहाँ शान्ति और सुरक्षा पाई जाती थी। आरम्भ में उसने राजपूतों की ईर्ष्या को समाप्त करने के लिए तत्कालीन सबसे शक्तिशाली राजपूत शासक महाराजा सवाई जयसिंह के साथ अपने आपको सम्बद्ध कर लिया ताकि – नवजात जाट सत्ता आमेर की छाया में निर्वाध रूप से विकास कर सकें। महाराजा के प्रति सूरजमल की निष्कपट भक्ति के फलस्वरूप उस महान शासक से उसे पिता के समान स्नेह प्राप्त हुआ। महाराजा के निधन के उपरान्त, अपने प्रिय

संरक्षक की अन्तिम इच्छा के अनुसार उसने उसके ज्येष्ठ पुत्र ईश्वरी सिंह के सिंहासन पर दावे का उसके छोटे पुत्र माधौसिंह के दावे के विरुद्ध समर्थन किया। माधौसिंह का अपनी माता की ओर से सिसोदियाओं के साथ सम्बद्ध था जिसका उसे गर्व था। ईश्वरी सिंह को आमेर के सिंहासन से हटाने के लिए मल्हार–होल्कर, गंगाधर तांतिया, मेवाड़ के राणाओं ने मराठों और सिसोदियाओं की एक बड़ी सेना के साथ जिसमें बाद में जोधपुर और कोटा की राठौर और हाड़ा टुकड़ियां भी शामिल हो गई, जयपुर की ओर कुंच किया। राजा ईश्वरी सिंह सूरजमल के साथ आमेर की अनिवार्य सैन्य भरती और जाट सहायकों के साथ अपनी राजधानी से रवाना हुआ।

रविवार, 20 अगस्त, 1749 को बागरू[20] में दोनों सेनाओं की टक्कर हुई, संघर्ष असमानों के बीच था और वह न्यायपूर्ण भी नहीं था, सात शासकों की सम्मिलित शक्ति एक राजा के विरूद्ध युद्ध कर रही थी, सेना के हरावल दस्ते की कमान सीकर के सामन्त सिंह को सौंपी गई थी, सूरजमल को मध्य की सेनापंक्ति का नेतृत्व करने का भार सौंपा गया था और राजा ईश्वरीसिंह पृष्ठ के नेतृत्व को संचालित कर रहा था। युद्ध के दूसरे दिन हरावल सेना का कमाण्डर सीकर का सामन्त, एक दृढ़ संघर्ष में मारा गया। तीसरे दिन आतुर शत्रु जिसे अब विजय की पूर्ण आशा थी युद्ध की व्यूह रचना में उपस्थित हुआ। आमेर की सेना उसका मुकाबला करने के लिए आई, इस निर्णायक दिन हरावल का नेतृत्व सूरजमल के हाथों में था। चालाक मराठा सरदार मल्हाराव ने एक बड़ी सेना को साथ लेकर ईश्वरी सिंह पर आक्रमण करने के लिए गंगाधर तांतिया को भेजा। तांतिया ने चुपके से चलकर उनियारा के सामन्त राव सरदार सिंह नरूका पर हमला कर दिया, जो इस समय आमेर के पृष्ठ भाग का नेतृत्व कर रहा था। पराजय राजा ईश्वरी सिंह के चहरे पर दिखाई दे रही थी। यह देखकर कि सब कुछ खोया जा चुका है राजा ईश्वरी सिंह ने अपनी अन्तिम आशा, सूरजमल को गंगाधर का मुकाबला करने का आदेश दिया।

जाट सरदार ने सिर झुकाया और एक छण भी सोचे बिना अपने से अधिक शक्तिशाली शत्रु के ऊपर बगल से हमला किया। अर्ध–विजयी मराठा और दृढ़ जाट के बीच दो घण्टे तक युद्ध चला, आखिर में गंगाधर को पीठ दिखानी पडी। संकट की इस महान घड़ी में जाट सरदार ने अतिमानवीय शौर्य प्रदर्शित किया, एक स्थानीय इतिहासकार ने लिखा है कि उसने अपने हाथ से 50 लोग मारे और 108 को घायल किया। सूरजमल ने आमेर की सेना को पराजय के मुँह से निकाल कर विजयश्री दिलाई। राजपूत चारण ने बहादुर जाट द्वारा इस अवसर पर प्रदर्शित शौर्य का बखान करने में कोई संकोच नहीं किया, बूंदी के कवि सूरजमल ने अपने नामरासी के इस कार्य की याद को इन छन्दों के द्वारा स्थायित्व प्रदान करने का प्रयास किया है –

''सहयो भले ही जट्टिनी, जाए अरिष्ट अरिष्ट।
जाठर तस रवि मल्लहुव,आमरेन को इष्ट।''
''बहुरि जट्ट मलहार सन,लरन लग्यो हर बल्ल।
आंगर है हुलकर, जाट मिहिर, मल्ल प्रति मल्ल।''

अर्थात जाटनी ने प्रसव–पीड़ा व्यर्थ में नहीं सही, उसके गर्भ से उत्पन्न सूरजमल (रवि) शत्रुओं के लिए अभिशाप और आमेर का हितैषी था। पृष्टभाग से पीछे लौटकर उसने हरावल में मल्हार राव होल्कर से युद्ध किया। कवि सूदन ने मल्हार राव होल्कर को रात्रि की छाया एवं सूरजमल को सूर्य की उपमा से अलंकृत किया है।

दोनों योद्धाओं की यह अच्छी टक्कर थी। इस संघर्ष ने आखिर में कम अध्यवसायी मराठाओं का धैर्य तोड़ दिया। मराठों ने शान्ति का प्रस्ताव प्रस्तुत किया तथा माधौसिंह को गुजारे के रूप में दिए गये पाँच परगनों से संतोष करना पड़ा।

इस युद्ध के पश्चात् महाराजा सूरजमल की कीर्ति सम्पूर्ण भारत में फैल गई, क्योंकि उन्होने शिसोदियों, राठोंरों, चौहानों और मराठों को एक ही साथ पराजित कर दिया था। यह बात राजस्थान क्या भारत के इतिहास में एकदम विचित्र और अपूर्व थी।[21]

सूरजमल का परिवार, आय और सैन्यबल

कौमी एकता, बिरादरी के आत्मिक सहयोग, प्रचलित सामाजिक 'परिणय सूत्र बंधन' सिद्धान्त, सहकर्मियों में सामूहिक दायित्व की भावना, भिन्न–भिन्न जातियों, खापों, मत–मतान्तरों, धर्म व सम्प्रदायों में आपसी सद्भाव तथा धर्म–निरपेक्षता से ही प्रतापी महाराजा सूरजमल ने कृषक प्रधान राज्य की स्थापना में उद्भुत सफलता प्रप्त की थी। उनके रनिवास में कितनी पत्नियाँ थी ? इस बारे में उपलब्ध सामग्री व ऐतिहासिक तथ्यों में अनेक भ्रान्तियाँ व भिन्नताएं हैं।

जागा पोथी तथा कुछ पुरानी फर्दो में साधारण अन्तर के साथ सूरजमल की आठ रानियों तथा छः सह–पत्नियों या सहचरियों का विवरण मिलता है।

नाम ठकुरानी	पारिवारिक सन्दर्भ
1. रानी हंसिया [22]	– पुत्री, चौधरी रतीराम नाहरवाहर, ग्राम सलेमपुर कलां
2. रानी किशोरी [23]	– पुत्री, चौधरी काशी सोलंकी जाट, निवासी होड़ल
3. रानी गंगा	– पुत्री, फौजदार हरलाल कछाया (कछौदिया) धीमासिरी
4. रानी कल्याण कौर (किसन कौर)	– पुत्री, चौधरी बिजैराम गडासिया
5. रानी खेत कौर	– पुत्री, चौधरी भागमल नौंहवार, वाजना उत्तरप्रदेश
6. गया देई	– सौहरौत जाट, सादावाद उत्तरप्रदेश
7. इन्द्रा	– कचौरे पाट
8. विरजा	– पुत्री ? जीवाराम सोरोतन, ग्राम बंचारी
सहचरी	– 1. जयकौर, 2. सदा कौर, 3. जलकौर, 4. पेमकौर 5. गंगाकौर, 6. कवरिया (कॉमर)

मायारानी याज्ञिक[24] का कथन है कि सूरजमल के अन्तःपुर में चौदह रानियाँ थी। लेखिका ने रानी हंसिया, किशोरी तथा गंगा का ही अति सूक्ष्म विवरण दिया है। ठाकुर गंगा सिंह[25] ने बिना किसी सन्दर्भ के 6 रानियों (हंसिया, किशोरी, गंगा, कवरिया, खेत कुंवारी तथा कल्याण कौर) को नामांकित किया है।

फादर फ्रांकोज वैंदेल ने पत्नियों की संख्या चार मानकर रानी हंसिया का ही उल्लेख किया है।[26] 'सुजान संवतसमें' के लेखक उदैराम कवीश्वर ने सूरजमल की छः रानीयों का उल्लेख किया है। इसी प्रकार परवर्ती इतिहासकार जॉन गोटलिइव कोहन ने निम्न छः रानियों का उल्लेख किया है।[27] इनमें से केवल प्रथम चार रानियां ही जाट वेश संभूत थीं।

नाम रानी	पारिवारिक सन्दर्भ
1. रानी हंसिया	– पुत्री, चौधरी रतीराम, ग्राम सलेमपुर
2. रानी किशोरी	– पुत्री, चौधरी काशी, होडल
3. रानी गंगा	– ग्राम बछामदी, भरतपुर

4. रानी कल्याणी – ग्राम नाहनी, झाँसी
5. रानी गौरी – गौड राजपूत, ग्राम अमाँह
6. रानी खत्तू – बहिन, चौधरी जीवाराम बंचारी

लेखक ने 1926 ई. की घटना में एक स्थान पर रानी जलकौर का भी उल्लेख किया है। जागा पोथी में जलकौर को सहपत्नी माना गया है। रानी हंसिया तथा किशोरी अति धर्म–परायणा, वैष्णव धर्म व संस्कृति की संरक्षिका, विलक्षण प्रतिभा होने पर भी बाँझ थीं।

संतति–

इतिवृत्तों से सुस्पष्ट है कि चार पत्नियों की कोख से पाँच पुत्रों जवाहर सिंह, रतनसिंह, नवलसिंह, नाहरसिंह तथा रणजीत सिंह का जन्म हुआ था। वैंदेल ने केवल चार पुत्रों (जवाहर सिंह, रतनसिंह, नवलसिंह, नाहरसिंह) का उल्लेख किया है।[28] 'सुजान–चरित्र' के लेखक सूदन[29] ने संतति के बारे में लिखा है –

त्यौंही सिंह सुजान कै प्रथम जवाहर जान।
नाहर रतन उभै सु ए नवल हरी बहुमान।।

कवि ने अन्यत्र 'सूर के पूत पाचौं अवाजा' लिखा है। संभवतः बाल्यावस्था में रणजीत सिंह का दुलार का नाम 'हरी' था। टॉड पाँच पुत्रों के नामांकन के अलावा हरिदेव बक्श[30] नामक ऐ धर्मपुत्र (दत्तक या पालित) का उल्लेख करता है। सूरजमल को यह बालक एक दिन शिकार खेलते समय मिला था। अन्यत्र इस कथन की पुष्टि नहीं होती है।

प्रबन्धकार उदैराम कवीश्वर ने 'सुजान संवत समें' में निम्न पाँच पुत्रों का उल्लेख किया है–

सूरजमल के पाँच सुत सुंदर राजकुमार।
मानहु बान अनंग के आनि लियो अवतार।।
जवर जवाहर सिंह सों नाहर नवल पुनीत।
रंग रसीले रूप सर राव रतन रनजीत।।

अस्तुः सूरजमल के पाँच पुत्र थे महाराव नाहरसिंह के अलावा शेष सभी ने राज्य संचालन किया था।

राजस्व – सूरजमल के राज्यारोहण 1756ई. के समय जाट राज्य की वार्षिक आय लगभग एक करोड़ रूपया थी। सूरजमल के विश्वासपात्र वकील राव राधाकिशन की सूचना के आधार पर मीर गुलाम अली केवल प्रसंगवश पानीपत के युद्ध से पूर्व जाट राजकोश कर स्थिति के बारे में लिखता है, कि –

सूरजमल एक करोड़ पचास लाख रूपये की जागीर का स्वामी था और उसके कोष में 5–6 करोड़ रूपया जमा था। पानीपत के तीसरे युद्ध 1761 ई. के बाद उसने मध्य दोआव में मराठा अधिकृत जागीरों तथा बलूची बस्तियों पर अधिकार कर लिया था।[31]

वार्षिक आय तथा सुरक्षित कोष के बारे में वैंदेल[32] लिखता है – ''सूरजमल ने अपने उत्तराधिकारीयों को जो संचित कोष तथा सम्पत्ति छोड़ी, उसके बारे में लोगों की राय में भिन्नता मिली। कुछ का अनुमान है कि सूरजमल ने नौ करोड़ का संचित कोष छोड़ा और कुछ इससे कम बताते हैं।

डॉ. यदुनाथ सरकार का अनुमान है कि उस समय सम्पूर्ण आगरा प्रान्त का 3/4 भाग था। सूरजमल ने भरसक प्रयास किया कि इस प्रान्त में मुगलों की आय से उसकी आय दुगनी हो जावे। फिर भी उसके पूर्वज तथा स्वयं के प्रयास से 10 करोड़ से अधिक संचित कोष नहीं था। उसका अधिकांश भाग भूमिगत था। [33]

टकसाल – सूरजमल ने डीग तथा भरतपुर में 'चांदी की टकसाल' नामक टकसालें भी स्थापित की। इसके अलावा वृंदावन तथा रेवाडी में भी मुगल कानील टकसालें थी। अन्य राजपूत राज्यों तथा नवावों की भाँति राज्य की कोई स्वकीय मुद्रा नहीं थी। 1763 ई. में सूरजमल ने सम्राट 'शाह आलम सानी' के नाम से इन टकसालों में चांदी का सिक्का चलवाया था, जिसका वजन 171.86 ग्रेन था। इस रजत मुद्रा के एक तरफ 'सिक्क मुबारक बादशाह गाजी शाहआलम' तथा पृष्ठ भाग में 'जर्ब बुर्जी अनवरपुर सन् जुलुस' की छाप थी और एक ओर 'फूल व कटार' का मुद्रण था।

इसी वर्ष तांवे की मुद्राऐं भी ढाली गई थीं, जिनका वजन 275 से 280 ग्रेन के मध्य था। राज्य का यह सिक्का 'हाली' कहलाता था। इसी सिक्के को सूरजमल की स्वाधीनता अथवा स्वाधीन सत्ता का प्रतीक माना गया था।[34]

सैन्य शक्ति – सैनिक क्षमता के बारे में वैंदेल का विचार है कि किलेदारों, जागीरदारों तथा जमीदारों के बन्दूकची, सवारों व पैदलों के अलावा सूरजमल अपने उत्तराधिकारीयों के लिए सवैतनिक 15 हजार धुडसवार, 25 हजार पैदल, 5 हजार घोड़ा, 60 हाथी, 300 सभी आकार प्रकार की तोपें तथा अनुपात में गोला बारूद के भण्डार छोड गया था।[35]

सैय्यद गुलाम हुसैन उसकी सैन्य कुशलता के बारे में लिखता है – ''सूरजमल के अस्तबल में 12000 घोड़े थे और इन पर विशेष तौर से प्रशिक्षित, निरन्तर इभ्यासी, अनुशासित, चुनिन्दा सैनिक सवारी करते थे। उन सैनिकों को घोड़े की पीठ से निशाना साधने, घूमकर पुनः बन्दूक भरने का अभ्यास कराया गया था। इस प्रकार सूरजमल ने अपने अश्वारोही दल को संख्यात्मक सामर्थ्य से भी कहीं अधिक शक्तिशाली और प्रभावपूर्ण बना दिया था। उसकी सेना में एक भी विदेशी सैनिक भर्ती नहीं था। उसके निजी गोल खास में चुनिंदा, सुयोग्य, अनुशासित हिन्दु–मुस्लिम अश्वारोही शामिल थे और उसको उनकी योग्यता तथा कुशलता पर पूर्ण भरोसा था।[36]

जाट राज्य की सीमाऐं– सूरजमल ने मृत्यु से पूर्व काठेड जनपद को 'साम्राज्य'' का रूप देकर पूर्व से पश्चिम 320 कि.मी. और उत्तर से दक्षिण 240 कि.मी. के लगभग अति विस्तृत कृषक प्रधान राज्य की स्थापना की। इस विशाल राज्य में काठेड़ तथा ब्रज के अलावा दो आव प्रदेश में मेरठ, सिकन्दराबाद, बुलन्दशहर, अलीगढ़, हाथरस, मुरसान, जलेसर, एटा तथा मैनपुरी, पूर्व में फिरोजाबाद, शिकोहाबाद, आगरा, मथुरा तथा दिल्ली के उत्तर –पश्चिम में रोहतक, फर्रूखनगर तथा दक्षिण में गुड़गाँव, रेवाड़ी, वल्लभगढ, अलवर सहित पूरा मेवात, बयाना तथा धौलपुर शामिल था। इस प्रकार इस राज्य की सीमायें पूर्व में नवोदित रुहेलखण्ड अर्थात गंगा का दाहिना तट पश्चिम में कछवाहा राज्य जयपुर, उत्तर में दिल्ली से लगभग 30 कि.मी. सराय बसन्त, दक्षिण में चम्बल नदी के उत्तरी तट तक फैल चुकी थी।[37]

महाराजा सूरजमल और मुगल

मुगल सम्राट मोहम्मदशाह के शासन के अंत तक जिन जाटों की गिनती मुगल सेना के मात्र सहायकों में होती थी वहीं जाट अहमदशाह के शासनकाल में साम्राज्य के कार्यों में महत्वपूर्ण भुमिका निभाने लगे। मुगल सम्राट अहमदशाह अक्षम और अशक्त था। वह अपना ज्यादातर समय विलासिता और अनावश्यक कार्यो में व्यतीत करता था। उसने अपना समस्त राज–कार्य कुचर्की और भ्रष्ट हिजड़े जावेद खां को सौंप रखा था जो शासन सम्बन्धी कार्यों से बिलकुल अन्जान था। राजमाता ऊधमबाई में न तो क्षमता थी ओर न ही समझ किन्तु उसके इरादे व महत्वाकांक्षाएँ बहुत अधिक थी। ऐसे समय में जब राजकोष खाली पड़ा था। और सैनिक अपने बकाया बेतनों के भुगतान के लिए लगभग प्रतिदिन झगड़ों पर उतर आते थे। वस्तुतः मुगल साम्राज्य 'बच्चों का खेल'[38] बनकर रह गया था। चूंकि शासन में भय नाम की चीज तो बिलकुल गायब हो चुकी थी, अतः अमीर और जमींदार मन मुताबिक जायदादें हथिया रहे थे।[39] इस समय विघटन का दौर चल रहा था, तथा 'साम्राज्य' शब्द मजाक बनकर रह गया था। साम्राज्य एक कबाइली रजवाड़ा बन कर रह गया था। जिसका अपना कोई सैन्यबल नहीं था, केवल बड़े–बड़े अमीरों के पास जो अपनी सैंनाएँ थीं, उनसे ही काम चल रहा था। नए बजीर सफदरजंग ने साम्राज्य को प्रतिष्टित करने के कुछ प्रयास किये, तो तूरानी अमीरों ने उसके विरूद्ध षड़यंत्र प्रारम्भ कर दिये जो वे लगातार करते रहे। इधर स्वयं शहंशाह का भी विश्वास उस पर से उठ गया, और वह एक को दूसरे गुट से लड़ाते–भिड़ाते रहने की विनाशकारी नीति का अनुशरण करने लगा। ऐसी परिस्थितियों में सफदरजंग को वे युक्तियाँ खोजने के लिए मजबूर होना पड़ा जिनसे एक ओर, वह अपने विरोधियों को कमजोर कर सके तथा दूसरी ओर, शक्तिशाली मित्र बना सके।[40] मुगल सम्राट मोहम्मदशाह ने तो जाटों के प्रति सामान्यतया सुलह–समझौते की नीति का अनुसरण किया, किन्तु उसके उत्तराधिकारी अहमदशाह ने सूरजमल और उसके अनुयायियों के साथ प्रारम्भ में दण्डात्मक रुख अपनाया। उसके बजीर और मीर बख्शी ने जाटों को युद्ध क्षेत्र में उतरने के लिए मजबूर कर दिया, हालांकि मीर बख्शी कुछ समय पूर्व ही दिल्ली से जा चुका था।[41]

यह वजीर ही था जो जाटों से मुकाबला करने सबसे पहले आया था। नवम्बर, 1749 ई. के मध्य में सूरजमल और उसके संरक्षणाधीन, बलराम द्वारा सफदरजंग की जागीर में पडने वाले फरीदाबाद को छोडने से इन्कार कर देने पर वजीर सफदरजंग राजधानी से बाहर आया। उसने बलराम से फरीदाबाद को तुरंत ही खाली करवा लिया और सूरजमल को पैगाम भिजवाया कि जो शाही क्षेत्र उसने हथिया रखा है, उसे वह लौटा दे। लेकिन सूरजमल ने जो भूभाग इतने परिश्रम से कमाए थे उनको छोडने के लिए वह तैयार नहीं था, और वजीर की तलवार का दम–खम परखने की तैयारी करने के लिए उसने डीग, कुम्हेर तथा अन्य किलों की मोर्चाबंदी करनी प्रारंम्भ कर दी। इस बीच सफदरजंग को उसने 'कभी आत्मसमर्पण करने के आश्वासन दिए तो कभी प्रतिशोध की

भी धमकियाँ दे डालीं।' हालात उस समय अनिश्चित हो गये क्योंकि उसी समय कासिम खाँ बंगश की हार और मृत्यु का समाचार सफदरजंग ने सुना और वह राजधानी लौट गया।[42]

फर्रुखाबाद में उत्पन्न समस्याओं का समाधान करने के बाद राजधानी लौटकर लगभग 6 माह बाद सफदरजंग ने एक बार फिर बलराम जाट पर चढाई कर दी। बलराम इस बीच बहुत शक्तिशाली हो गया था। उसके सैनिकों ने दिल्ली के निकट शम्सपुर में वजीर की चौकी पर हमला कर के उन्हें वहाँ से खदेड दिया। यह समाचार सुनकर सफदरजंग ने एक नया दस्ता भेजा, किन्तु उपद्रवकारी दबने के बजाय मुकाबला करने को तैयार हो गए। इस पर वह स्वयं निकल पडा तथा शम्सपुर के निकट उसने रात बिताई। यहाँ उसको पठानों के भयंकर विद्रोह की खबर मिली। इससे एक बार फिर उसके हौंसले पस्त हो गए तथा वह जाटों से समझौता करने को तैयार हो गया। उधर वजीर के आने से हतप्रभ हो जाने के कारण बलराम भी सुलह के लिए तैयार हो गया। एक मराठा वकील, जो दोनों के बीच मध्यस्थता कर रहा था, ने बलराम की दोनों कलाईयाँ आपस में बॉधकर खिजराबाद में वजीर के समक्ष पेश कर दिया और इस तरह अवैध तरीके से उसने (बलराम) जो कुछ भी अपने कब्जे में किया था उसे एक प्रकार से उसे ही दे दिया। वजीर फिर तुरंत राजधानी लौट गया।[43]

सूरजमल द्वारा सलावत खाँ की पराजय

मीरबख्शी, सलावत खाँ जुल्फिकार जंग, जो नारनौल का फौजदार होने के साथ आगरा और अजमेर सूबेदार भी था, ने सूरजमल से मूर्खतापूर्ण झग़डा मोल ले लिया। मुगल साम्राज्य और नागौर के बख्त सिंह के मध्य एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार सिंहासन पर विराजमान रामसिंह से गद्दी छीनने में मीर बख्शी सलावत खाँ को बख्त सिंह की सैनिक सहायता करनी थी। इसी उद्देश्य से सलावत खाँ नबम्वर 1749 में लगभग 20 हजार सैनिकों को लेकर बख्तसिंह की सहायता के राजधानी से चल पड़ा। रास्ते में उसने 30 दिसम्बर 1749 ई. को नीमराना (वर्तमान अलवर जिला) के दुर्ग पर अधिकार कर लिया, जाट दुर्ग रक्षकों को पराजय का मुँह देखना पड़ा। इस जाट दुर्ग रक्षकों पर विजय से सलावत खाँ उत्साह एवं मनोवल बढ गया और उसने अपना मूल कार्यक्रम बदलकर जाटों पर आक्रमण करने का फैसला किया। मूल अभियान के परिवर्तन से उसके साथी हतोत्साहित हो गए और उन्होंने उसे समझाया कि इस समय 'जाटों से युद्ध करना ठीक नही होगा' लेकिन वह नही माना साथियों की उचित राय की उसने उपेक्षा कर दी, तथा शिविर को आगरा के लिए प्रस्थान करने का आदेश दिया। उसने रात का पड़ाव सराय शोभचन्द में किया।[44]

इस बीच सूरजमल अपनी सेना को लेकर पास पास के स्थान नौगाँव की ओर चला गया था। उसने अपने वकील को सलावत खाँ के पास भेजा और आग्रह किया कि वह मेवात को न लूटे, क्योंकि यह क्षेत्र मुगल सम्राट मोहम्मदशाह ने उसे दिया था, तथा वह सम्राट के अधीनस्थ की तरह रह रहा था। असद खाँ की हत्या की कैफियत तलब करते हुए, उसने सूरजमल से दो करोड़ रुपयों की माँग की, और इसके साथ ही उसकी जागीर की भूमि खाली करने और सम्राट के साथ मिलने को कहा। सलावत खाँ की अंतिम माँग को स्वर्गीय कमरुद्दीन के साथ सूरजमल के पुराने सम्बन्धों को दृष्टि में रखते हुए समझना होगा। यहाँ उसका मतलब यह था कि वह कमरुद्दीन के पुत्र इंतिजाम–उद–दौला और उसके साथियों से सम्बन्ध तोडकर मीरबख्शी तथा उसके दोस्त, बजीर से नाता जोडे। अंत मे सलावत खाँ ने सूरजमल को सचेत किया कि या तो वह इन शर्तों को माने अथवा युद्ध के लिए तैयार रहे।[45]

सूरजमल ने इस चुनौती को स्वीकार कर लिया और शीघ्र ही अपने सहायकों गोकुलराम , सुरतीराम, बलराम, प्रताप कछवाहा आदि को लेकर तथा 6000 घुडसवारों को लेकर आगे बढ़ गया। अपनी शेष फौज उसने वही छोड दी। सलावत खाँ पर आक्रमण करने और सब तरफ से घेरने के लिए उसने अपने सैनिकों को पाँच टुकडियों में विभाजित कर दिया और 31 दिसम्बर 1749ई. की रात में आगे बढकर उसने बख्शी को अपने घेरे में ले लिया। अगले दिन 1 जनवरी 1750ई. दोपहर में फतेह अली के अधीन लड़ रही सलावत की फौज को सराय से कोई लगभग 5 किमी. दूर घेरकर उसकी मरम्मत शुरु कर दी। सूर्यास्त से दो घंटे पूर्व अली रुस्तम खाँ और हकीम खाँ खेशगी के नेतृत्व में टुकडी आई। किंतु घुडसवार जाट बंदूकधारियों के हमले को मुगल सेना झेल नही पाई। सलावत के खेमे में हडकंप मच गया। जाटों ने गोलयों से बौछार करके लाशों के ढेर

लगा दिए। बख्शी की फौज के दक्षिणी सिरे पर हाकिम खाँ हाथी पर बैठकर कमान सँभाले हुए लड रहा था।

हर नारायण ने उसके हाथी की ओर अपना घोडा दौडा कर खान को मार डाला। हरावल दस्ते का संचालन कर रहा अलीरुस्तम गंभीर रुप से घायल हो गया और जाटों ने असाधारण विजय प्राप्त कर ली। वे फिर सलावत खाँ के शिविर पर टूट पडे और चार 'घडी' (लगभग पौने दो घंटे) तक उसे लूटते रहे। अमीर–उल–उमरा तो इतना आतंकग्रस्त हो गया कि वह भागने को हो लिया, किंतु कमाण्डरों की सतर्कता के कारण ही उसे इस कायरतापूर्ण कार्य से रोका जा सका। अंतः दो–तीन दिन तक बुरी तरह घिरे रहने के बाद मजबूर होकर बख्शी ने सुलह के लिए निवेदन करने का निश्चय किया उसने अपने वकील को सूरजमल के पास इस प्रस्ताव के साथ भेजा कि वह उस सारी जमीन को छोड देगा जिस पर उसने अभी कब्जा किया है। इस पर जवाहर सिंह को सुलह की शर्तें बताने के लिए सलावत खाँ के पास भेजा गया। उसकी शर्तें यह थी।

(I) बख्शी के लोग न तो पीपल के वृक्षों को काटेगें और न हिन्दू मन्दिरों या उनके किसी भी आस्था स्थल को अपवित्र या क्षतिग्रस्त करेगें।

(II) सलावत खाँ के राजपूत अभियान में स्वयं भागीदारी करते हुए सूरजमल अजमेर की मालगुजारी के रूप में राजपूतों से 15 लाख रुपये वसूल करेगा, वशर्ते बख्शी नारनौल से आगे न बढ़ें।[46]

सराय शोभचन्द का निर्णायक युद्ध सूरजमल के जीवन की एक शानदार और सम्मानजनक घटना है। इसके पहले कोई भी जाट–नेता मुगल साम्राज्य के प्रधान सेनापति को पराजय का मुँह न दिखा सका था। उसकी इस सफलता से मेवात का उसकी राज्यक्षेत्र वापस मिल जाने के अलावा कोई पूंजीगत लाभ उसे नही हुआ था। तथापि उसके सम्मान में अभिवृद्धि हुई थी और उसमें आत्मविश्वास भी बढ़ा था जो इस बात से स्पष्ट होता है कि अजमेर की मालगुजारी वसूल करने जैसे कठिन कार्य को उसने स्वीकार किया था और जहाँ तक मुगल सल्तनत का सम्बन्ध है, इससे एक बार फिर सिद्ध हो गया कि उसका पतन अत्यधिक निम्नतर स्तर पर पहुँच गया है।

सलावत खाँ की जो अवमानना हुई उसके लिए उसका ही उतावलापन जिम्मेदार था। इतने खतरनाक अभियान की ओर बढ़ने से पूर्व उसने आवश्यक सर्तकता और सावधानी नहीं बरती थी। एक नही अनेक इतिहासकार ने यह प्रमाणित किया है कि इस युद्ध के लिए सूरजमल को मजबूर किया गया था और उसने यह 'लड़ाई मात्र आत्मरक्षा के लिए' लड़ी थी।[47] यह बात स्पष्ट करने योग्य है कि ऐसी स्थिति में होते हुए भी सूरजमल ने अमीर–उल–उमरा को मारने या गिरफ्तार करने का प्रयास नहीं किया। इसके विपरीत उसने अपनी 'अशिष्टता' के लिए खेद व्यक्त किया तथा निष्ठा का भरोसा भी दिया।[48] उसकी इस विनम्रता ने निःसंदेह उसकी व्यवहारिक बुद्धिमता का परिचय दिया। अब चूँकि उसका तात्कालिक लक्ष्य प्राप्त हो चुका था इसलिए उसने बख्शी के स्वाभिमान को लगी ठेस पर मरहम लगाने का प्रयास किया। इसके साथ ही यह घटना पराजित शत्रु के प्रति उसकी वीरोचित सदाशयता को भी प्रदर्शित करती है। अपने कट्टर दुश्मन वजीर, इमाद को बाद में शरण देना इस सदाशयता का एक और उदाहरण है।

सूरजमल और सफदरजंग के मध्य मित्रता

पेशवा के प्रतिनिधि के खरीते से ज्ञात होता है कि बजीर जब बंगश देश के लिए राजधानी से प्रस्थान करने को था तब 'जाट' सूरजमल बजीर के निमंत्रण पर दिल्ली के पास में कहीं मिलने आया था। सफदरजंग ने अपने एक अधिकारी को उसका स्वागत करने के लिए भेजा था। इसके बाद वह स्वयं भी गया और खिजराबाद के निकट किशनदास के तालाब पर दोंनों में बातें हुईं। फिर सूरजमल को विदा करके बजीर सफदरजंग राजधानी वापस आ गया। इन दोनों के मध्य क्या बातें हुई और किन विषयों पर की इसके विवरण हमें ज्ञात नही है। किंन्तु यह तो स्पष्ट है कि उस वार्तालाप के पश्चात दोनों एक मैत्री–संधान में बँध गये।[49]

शाही बजीर का स्वयं चलकर आना सूरजमल के प्रति ऐसे अद्वितीय और अभूतपूर्व सम्मान का प्रदर्शन था जो शासन के सर्वोच्च अधिकारी द्वारा किसी भी जाट नेता को नही दिया गया था। तत्कालीन राजनीतिक परिदृश्य में यह भरतपुर परिवार के प्रति बढ़ते सम्मान का परिचायक था। इसके साथ ही बजीर की मजबूरीयों को भी प्रदर्शित करता है, जिसकी चर्चा पूर्व में की जा चुकी है, जिससे प्रभावित होकर वह जाट नेता को प्रसन्न करने के लिए इतनी दूर गया था। स्पष्टतया, सूरजमल ने इसे लाभदायक समझा और बजीर की सदाशयता का सम्मान करते हुए उससे समझौता करना बेहतर समझाा।

इस प्रकार पारस्परिक गुणों की स्वीकृति तथा अन्य लाभों की संभावनाओं ने 1750 ईं में सफदरजंग और सूरजमल को एक–दूसरे से बाँध दिया। अधिक स्पष्ट रूप से कहा जाए तो गलत नही होगा कि इन दोनों ने अपने–अपने चाचा क्रमशः सादत खाँ और रूपसिंह के दिनों की मैत्री को नयापन देकर मजबूत किया।[50]

सूरजमल और प्रथम अफगान अभियान

अफगान विद्रोह के पुनरार्वतन से सफदरजंग चिंतित था। अतः उसने वहाँ चढाई करने की एक योजना बनाई और 25 जुलाई 1750 ई. को रवाना हो गया। मार्ग उसे अपने सहायक नबलराय की मृत्यु और उसकी पराजय का दुःखदायी समाचार मिला। परिस्थिति की गंभीरता को महसूस करते हुए उसने अतिरिक्त फौज एकत्रित करने का फैसला किया तथा अन्य लोगों के अलावा जाटों को भी सूचित किया।उसने सूरजमल को पत्र लिखकर उससे तुरंत सहायता देने का अनुरोध किया।[51] तदनुसार, बजीर के साथ शामिल होने के लिए जुलाई 1750 ई. के अंत में सूरजमल कोल आया। सुजान चरित्र के अनुसार बजीर ने अपने इस मूल्यवान सहयोगी का स्वागत करने के लिए अपने अधिकारीयों में से एक को भेजा। जब सूरजमल उसका अभिवादन करने के लिए गया तो बजीर ने अत्यधिक आत्मीयता दिखाई तथा नई समस्या पर बातें करते हुए वह उसके हाथों को अपने हाथों में थामे रहा। सूरजमल ने राय दी कि भदावर के हिम्मत सिंह सदृश व्यक्तियों से कुछ और सहायता जुटा लेनी चाहिए। फिर शिष्टाचार प्रदर्शित करते हुए बजीर भी उसके पास आया।

सूरजमल ने यह कहते हुए उसका अभिवादन किया ''हम जमींदार आपके अभ्यागम से सम्मानित महसूस करते है।'' वार्तालाप करते हुए सफदरजंग ने अपने अतिथेय से अनुरोध किया कि वह उसका पूरी तरह और हार्दिक समर्थन करें। सहायता का आश्वासन देते हुए सूरजमल ने बुलाई गई फौज की संख्या बढ़ाकर 15,000 कर दी।[52] कोल से निवृत्त होकर बजीर फिर अगस्त के प्रारंभ में मरहरा गया, जहाँ वह अन्य सहयोगियों की सेनाओं की प्रतीक्षा करने के लिए एक माह रुका अंततः इन सेनाओं की पूरी संख्या लगभग 70,000 सैनिक आ जाने पर सफदरजंग ने अपना प्रस्थान किया तथा आखिरी पड़ाव रामचतौनी के निकट बनाया। दूसरी तरफ 20,000 अपनी सेना तथा 10,000 रुहेलों को लेकर अहमद खाँ वंगश शत्रु का मुकाबला करने के लिए तैयार खडा था। 'सुजान चरित्र' के अनुसार अहमद खाँ ने अपने वकील को सूरजमल के पास भेजकर उससे अनुरोध किया कि वह उसके विरुद्ध न लडें। किंतु जाटों के राजा ने बजीर से मित्रता तोडने से इनकार कर दिया।[53] आखिरकार 13 सितम्बर 1750ई. को प्रातः 9 बजे युद्ध शुरू हो गया। सफदरजंग अपनी अधिकतर सेना को लेकर केन्द्र में खडा था, जबकि सूरजमल सैन्याग्र के लगभग निकट बजीर की दाहिनी ओर, सेना का संचालन कर रहा था और इस्माइल खाँ बजीर के बाँए था उधर अहमद खाँ वंगश ने अपनी सेना को दो भागो में विभाजित कर रखा था, पहले भाग में 10,000 सैनिक शत्रु के विरुद्ध रुस्तम खाँ अफरीदी के नेतृत्व में तैनात थे, और दूसरी तरफ की सेना को बंगश ने अपने अधीन छिपाकर तैनात किया था।, ताकि अचानक हमला किया जा सके। एक रोचक कहानी यह भी बताई जाती है कि रुस्तम खाँन ने वंगश सरदार को सलाह दी कि सैनिक (अर्थात् वह स्वयं) दूसरे सैनिक (अर्थात् सूरजमल) से लडे और नबाव (अर्थात् अहमद खाँ) दूसरे नबाव (अर्थात् सफदरजंग) से लडें।[54]

पठानों के बढने और दोनों ओर की तोपों की गरज के साथ युद्ध प्रारंभ हुआ। सूरजमल और इस्माइल खाँ ने आगे बढ़कर रुस्तम खाँ का मुकाबला किया। बल्लभगढ़ के बलराम जाट ने दोंनो सेनाओ के बीच एक ऊँचे टीले पर कब्जा करके अपनी तोपें जमा दी। जाटों की तोपों ने पठानों पर प्राणंतक हमले में आग उगलनी शुरू कर दी और एक बार तो उन्हें पीछे हटा दिया, किंतु शीघ्र ही 7,000 सैनिकों को लेकर रुस्तम खाँ अपने साथियों से जा मिला और अन्ततः जाटों की तोपों सहित वह जगह भी छीनने में सफल हो गया। बलराम और उसके जाट साथी बहुत बहादुरी से लडें, किंतु शत्रु के अधिक सैनिक आ जाने से उन्हें भारी क्षति उठ़ानी पडी। चैन सिंह, साहेबराम और तिलक सिंह तोमर उन लोगों में शामिल थे जो इस लडाई में काम आए। इस पर सूरजमल ने अपने मामा सुखराम को तुरंत बलराम की सहायता के लिए भेजा और यह आदेश दिया कि तलवारों की बजाय तीर और तोड़ेदार बंदूकों से युद्ध किया जाए, और वह स्वयं इस्माइल खाँ और हिम्मत खाँ के साथ अर्द्धचन्द्राकार स्थिति में आगे बढ़ गया तथा तोडेदार बंदूको और तीरो का उपयोग करते हुए पठानों पर झपटा। रुस्तम खाँ और उसके साथी बहुत वीरता से लडें किंतु वे शत्रु का मुकाबला नही कर सके। लगभग 6–7 हजार पठानों के साथ रुस्तम खाँ मारा गया। दूसरी तरफ 3–4 हजार जाट खेत हुए। सूरजमल ने भागते हुए शत्रुओं का अलीगंज तक पीछा किया उनसे खूब लूटपाट की। इस प्रकार उसने युद्ध के क्षेत्र में पूरी तरह विजय प्राप्त कर ली।[55] लेकिन जो कुछ सूरजमल ने प्राप्त किया उसका स्वामी वह नही बन सका। उससे इस युद्ध का नक्शा ही बदल गया तथा सूरजमल की मेहनत बेकार गई। अहमद खाँ से सफदरजंग के युद्ध के विवरणों से हमारा अधिक मतलब नही है। यहाँ इतना ही याद रखना पर्याप्त होगा कि अपने सैनिकों का मनोबल बढाने के लिए अहमद खाँ बंगश ने यह अफवाह फैला दी कि रुस्तम ने लडाई जीत ली। अब यदि वे ऐसा नही कर सके अर्थात अपने शत्रु, जो इस समय उनसे लड रहा है यानि बजीर को पराजित नही कर सके तो अफरीदी उन पर हसेगें। अतः अफगानों ने निश्चिय करके बजीर पर हमला बोल दिया, जिसने पीछा करने वालों को कुमुक भेजकर अपनी स्थिति बहुत खतरनाक ढंग से कमजोर कर ली। स्थिति उस समय और भी गंभीर हो गई जब रावबहादुर सिंह, मीरबका, कामगर खाँ विलोच और शेरगंज जैसे हरावल सेना में तैनात सेनापति रणक्षेत्र से भाग निकले। अफगानो ने सफदरजंग की मजबूरी का लाभ उठाकर उस पर दो तरफ से आक्रमण कर दिया। बंदूक की एक ही गोली ने हाथी पर बैठें बजीर को हौदे में ही ढ़ेर कर दिया। पूरी तरह पिट जाने के बाद उसे किसी प्रकार से बचाकर युद्ध क्षेत्र से बाहर लाकर मरहरा में सुरक्षित लाकर दिल्ली की ओर रवाना कर दिया गया।[56]

अफरीदियों का पीछा करके जब विजयी सूरजमल लौटा तो उसने सफदरजंग की पराजय और पलायन की खबर सुनी। कुछ समय के लिए उसने पलाश वृक्षों की छाया में प्रतीक्षा की तथा आगे नही बढा। अहमद खाँ बंगश को इससे चिंता हुई, तथा उसने अपने आदमियों को जाटों की तरफ जाने से मना कर दिया सूरजमल स्वयं भी अफगानियों की गतिविधियों के प्रति सशंकित था। अतः वह रणभूमि से बाहर आ गया और नदी के किनारे रात व्यतीत करने के पश्चात् अपने घर वापस हो गया।[57]

रामचतौनी की पराजय ने अंततः सफदरजंग को समस्याओं के त्रिकोण में फँसा दिया। अत्यधिक अपमान और उससे उत्पन्न मानसिक पीडा में ग्रस्त होकर उसे अब अपने राज्य क्षेत्रों की सुरक्षा की चिंता होने लगी जो अब असुरक्षित हो गए थे। उसके विजयी शत्रुओं ने उसके क्षेत्र के काफी भाग को रौंद डाला और शेष को हडपने के प्रयास करने लगे। कोढ में खाज तो तब पैदा हुई जब उसके दरवारी विरोधियों को भी लाभ उठ़ाने का स्वर्ण अवसर मिल गया।

शहंशाह के इशारे पर जावेद खाँ, ऊधम बाई और इंतजाम ने उसकी सम्पत्ति और महल के अधिग्रहण की योजना बना डाली और बजारत से उसको हटाकर इसके पुराने दाबेदार इंतजाम–उद–दौला को सौंपने का प्रबन्ध कर लिया।[58] उपलब्ध साक्ष्य से ज्ञात होता है कि इस विषम कष्टावस्था में उसका ध्यान आशाभरी दृष्टि से पुनः अपने विश्वस्त और शक्तिशाली मित्र सूरजमल की ओर गया। 'मेम्बोआर दे यात' में बताया गया है कि उसे (सूरजमल) अपने बच्चों की श्रेणी में रखने का सम्मान देते हुए उसने (सफदरजंग) और कई जागीरे देने का वादा करके वापस भेजा, तथा इसी तरह के और भी कई इनामात बख्शते हुए उसे अपनी मैत्री में और भी अधिक मजबूती से जकड लिया।[59]

अतः स्पष्ट होता कि अपने साहसिक कार्यों में सूरजमल पर बजीर की निर्भरता और उसी अनुपात में तत्कालीन राजनीतिक लेन–देन में सूरजमल की भागीदारी बढती जा रही थी। जो उसकी प्रतिष्ठा का प्रतीक था।

तथापि, इधर सफदरजंग द्वारा सूरजमल से अपनी मैत्री को मजबूत करने के प्रयास किए जा रहे थे, उधर उतनी ही तत्परता से उसके दरबारी विरोधी उसे गिराने की सोच रहे थे। इस कार्य के जावेद खाँ ने एक कुचक्र रचा और उसके लिए सूरजमल के पुत्र जवाहर सिंह को मोहरा बनाया। जावेद ने जवाहर सिंह को बुलाकर सम्राट के सामने पेश किया, सम्राट ने उसे 'राय' की उपाधि से विभूषित किया जो सामान्यतया अत्यधिक सम्मानीय व्यक्तियों को दी जाती थी, वैसे उचित तो यह होता कि इस तरह के उपहार उसके पिता को दिए जाते या पितामह को दिए जाते। इस तरह भारी आशाओं से भरकर जवाहर सिंह को फिलहाल वापस भेज दिया गया और उस दिन की प्रतीक्षा की जाने लगी कि जब उचित अवसर आने पर उसके पिता की शक्ति को क्षीण करने और इस तरह सफदरजंग को कमजोर करने के लिए उपयोग किया जाना था। वैसे तो इसका निशाना सफदरजंग ही था।[60]

सूरजमल और द्वितीय अफगान अभियान

जवाहर सिंह के लिए किए गये उद्देश्य मूलक उपकार को जावेद खाँ भुना नही पाया। क्योंकि स्वयं 70 लाख की रिश्वत लेकर कमजोर पड गया। तथा सफदरजंग को क्षमा दिलवाकर पुनः वजारत दिलवा दी। सफदरजंग ने अपनी पराजय का बदला लेने के लिए गंभीरता से चिंतन–मनन प्रांरभ कर दिया जिस पर वहाँ से लौटने के बाद सदाँ विचार करता रहता था। इस्माइल वेग, राजा लक्ष्मी नारायण, राजानागरमल और सूरजमल तथा अन्य सहयोगियों को बुलाया गया तथा विचार–विमर्श के बाद मराठों से भी सहायता प्राप्त करने का भी निर्णय किया गया। सफदरजंग ने मराठा और जाट सेनाओं को प्रतिदिन क्रमशः पच्चीस हजार रुपये और पन्द्रह हजार रुपये देने का वायदा किया। सभी आवश्यक तैयारियों के बाद वजीर ने प्रस्थान कर दिया। आगरा पहुँचकर उसने 20 हजार मराठा सैनिकों को शादिल खाँ के विरुद्ध तैनात कर दिया और जाटों सहित शेष सेना को लेकर फर्रुखावाद की ओर कूच कर गया। मराठा सैनिक टुकडी ने कादिरगंज में 20 मार्च, 1751 ई के आस पास शादिल खाँ की छोटी–सी फौज को पराभूत करके शादिल खाँ को भागने के लिए मजबूर कर दिया।[61]

यह सुनने पर अहमद खाँ बंगश ने इलाहबाद की घेराबंदी उठा ली, और अपनी राजधानी की ओर बढ़कर उसने फतेहगढ़ में डेरा डाल दिया। यहाँ उसने गंगाधर तांतिया के अधीन मराठा सैनिक टुकडी को पराजित कर दिया। तदनंतर, मराठों और जाटों को लेकर सफदरजंग पहुँच गया तथा उसने फतेहगढ़ को पूर्व की ओर छोडकर तीन तरफ से घेर लिया। इस किले में रोज ही झडपें होती रहीं किंतु किसी भी पक्ष को कोई निर्णायक लाभ नही मिला। जब यह घेरेबंदी एक माह से भी ज्यादा खिच गई तो सादुल्ला खाँ अपनी 12,000 रोहिला सैनिक टुकडी को लेकर फतेहगढ़ की दूसरी ओर गंगा तट पर पहुँच गया। यहाँ उसने अहमद बंगश को शेखी बघारते हुए यह संदेश भेजा कि अगले दिन वह सफदरजंग, सूरजमल और मराठा सेनापतियों के सिर लेकर उसके पास पहुँच जाएगा। उसके पहुँचने से वजीर को चिंता हुई और उसने सूरजमल मल्हारराव होल्कर तथा जयप्पा शिंदे को विचार–विमर्श के लिए बुलाया। यहाँ यह निर्णय लिया गया कि सादुल्ला खाँ को नदी के पार बंगश सेना तक पहुँचने से रोका जाए। अतः खांडेराव और तांतिया के अधीन मराठे तथा जवाहर सिंह और गोहद के राणा भीमसिंह के अधीन जाट आगे बढ़ गये और सिंगीरामपुर में नदी पार करके उन्होंने बहादुर खाँ के अधीन सादुल्ला खाँ के सेनामुख पर हमला कर दिया। वे लडे तो बहादुरी से किंतु एक ओर मराठा दूसरी ओर जाटों के आक्रमण को झेल नहीं सके। आखिरकार पराजित होकर वह मारा गया। कोई 10–12 हजार अफगानी मारे गये या घायल हुए। बहादुर खाँ के धुर्रे उड जाने से इस युद्ध का नक्शा ही बदल गया। सादुल्लाखाँ भी डर के मारे आमला भाग गया। उसके भागने की खबर सुनकर महमूद खाँ बंगश भी साहस खो बैठा और गंगापार अपने पिता के पास पहुँच गया। जवाहरसिंह ने उसे घेर लिया होता, किंतु भीमसिंह ने ऐसा नहीं होने दिया, क्योंकि बंगश परिवार से उसकी मित्रता थी। अहमद बंगश निरुत्साहित तो पहले ही

था, और अब शिविर से उठती ऊँची– ऊँची लपटों को देखकर वह स्वयं तथा दुर्गरक्षक घबरा गए। उस रात ही वह किले से निकलकर गंगापार आमला भाग गया। मराठों और जाटों ने भगोडों का बहुत दूर तक पीछा किया, और वे उनके इतने निकट थे कि शिकारपुर में नदी को पार करते हुए उनकी दशा बहुत दयनीय हो गई थी। भगोडो ंमे से अनेक या तो शत्रु के हाथ आ गये या नदी में डूब गए। अगले दिन 19 अप्रैल, 1751 ई. को फतेहगढ पर विजेताओं का कब्जा हो गया। इसके बाद वर्षा के कारण युद्ध में शिथिलता आ गई और सफदरजंग लखनऊ चला गया।[62]

वर्षा के बाद सफदरजंग वापस आ गया और नवम्बर, 1751 ई. में उसने रुहेलखण्ड के अनियत तथा असंबद्ध युद्ध को पुनः प्रारंभ कर दिया। इधर–उधर कुछ–एक छिटपुट झटके लगने के अलावा शाही सेना दवाब बनाए रखने में सफल रही तथा अफगानों और उनके साथियों को उसने कुमायूँ के तराई क्षेत्रों में खदेड दिया। चिल्किया में अफगानों के डेरे से 6 मील (लगभग 10 किमी.) के फासले पर वजीर और उसके मित्रों ने अपने पडाव डाल दिए। दोनो पक्षों के बीच यदाकदा झडपें होती रही, किंतु इनका कोई निर्णयात्मक परिणाम नहीं निकला। ऊबड–खाबड कठिन क्षेत्र, अगम्य वन प्रदेश, अफगान शिविर को घेरे हुए झरने और सरिताएँ और सबसे बडे सैन्य मित्र मराठों की बढती उपेक्षा की भावना, क्योंकि वायदा के मुताबिक लूट में कम हिस्सा उन्हें मिला, अतः उन्होनें शाही अभियान के मार्ग में बाधाएँ उत्पन्न करनी शुरु कर दी थी। होल्कर और सूरजमल दोनों ने ही अफगानों के शिविर में प्रवेश करने के प्रयास किए, किंतु वे असफल हुए। इस बीच उतावला हो चला था, उसने अपने मित्रों से एक बात पर असहमति व्यक्त की, कि – दो महीने में उन्हें वहाँ पहुँचने का कोई योग ही नही मिल रहा है। अंततः शूरवीर राजेन्द्रगिरि गोसाई आगे आया तथा शत्रु के डेरे पर आक्रमण करने का निर्णय लिया। किंतु जयप्पा ने धोखा दिया और पूरी योजना से अहमद बंगश को अवगत करा दिया जिससे गुंसाई की पराजय हो गई उसी समय मुगल सम्राट को अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण की भनक लगी, जिससे वह चिंतित हो गया और उसने वजीर को आदेश दिया कि वह अफगानों से समझौता करके तुरंत राजधानी वापस आए। अतः अब वजीर के पास कोई विकल्प नहीं रह गया था। अतः एक वर्ष से अधिक समय से चल रहे युद्ध को उसने समाप्त कर दिया और अफगानों से समझौता कर लिया। इसके बाद वह लखनऊ में शासन को पुनः पटरी पर लाने के लिए उधर चला गया।[63]

इस प्रकार सफदरजंग के पक्ष में यह अभियान समाप्त हुआ। कुल मिलाकर उसके लाभ दिखावे में अधिक, किंतु यथार्थ में कम थे। इसके दोनों सैन्य मित्रों ने आरंभ में तो उसे पर्याप्त सफलता दिलाई किंतु अंत में कोई भी प्रभावशाली सिद्ध नहीं हुआ। चिल्किया में विशेष रुप से मराठे भी कुछ नहीं कर सके। वस्तुतः वे दोहरी चाल चल रहे थे और इस अभियान को उन्होंने इस तरह की चाल से निष्पादित किया जिससे अंततः लाभ उनको ही मिले। जबकि सफदरजंग को शत्रु को नीचा दिखाने का खोखला–सा सन्तोष भर मिल सका। चिल्किया में तो सूरजमल से भी सफलता बचकर निकल गई। किंतु अपनी शक्ति के अनुपात में मालिक की सेवा उसने पूरी निष्ठा और ईमानदारी से की।[64]

सफदरजंग द्वारा जावेद की हत्या और सूरजमल

सफदरजंग जब दिल्ली वापस आया तो उसे यह जानकर बेहद खीझ हुई कि वह तो केवल नाम का वजीर है जबकि सारी शक्तियाँ और अधिकार तो जावेद खाँ के पास जा चुके है। वस्तुतः जावेद खाँ सदैव सफदरजंग का कट्टर विरोधी रहा था, उसके उद्देश्यों को निष्फल करने, उसकी ताकत कमजोर करने उसके खिलाफ शहंशाह को भडकाने तथा यदि भारी रिश्वत न दी जाए तो वजारत से उसे हटाने के षडयंत्र जावेद खाँ करता रहता था, अन्य शत्रुतापूर्ण कार्यों के साथ उसने सफदरजंग के सबसे शक्तिशाली और परममित्र सलावत खाँ को जो सफदरजंग की तरह ही शिया था, को मीरबख्शी (सेनाध्यक्ष) के पद से बर्खास्त करवा दिया था और उसके स्थान पर तूरानी गुटके गाजीउद्दीन फिरोज जंग को नियुक्त करवा दिया था। अब उसने सफदरजंग से वल्लभगढ के बलराम जाट को तोडने के प्रयास किए। यह प्रयास पहले उसके द्वारा सूरजमल के पुत्र जवाहरसिंह को सोद्देश्य शहंशाह की कृपादृष्टि तथा अनुग्रह दिलाने के प्रयत्न की याद दिलाता है।

बलराम की घटना ने सफदरजंग को क्रोध से आग–बबूला कर दिया और उसने अपने रास्ते में सबसे बडे रोडे जावेद को हटाने का संकल्प कर लिया। क्रोध के क्षणिक आवेश में शहंशाह ने खुद उसे इसी आशय का संदेश भेजा।[65] सफदरजंग ने अब अपने विश्वासपात्र सहयोगी मित्र सूरजमल को साफ तौर पर राजनीतिक मामलों पर सलाह–मशवरा के लिए, परंतु वास्तव में संभावित विरोध को संयुक्त रुप से कुचल देने के लिए बुलवाया।

सूरजमल ने उचित उत्तर दिया और कालका पहाडी पर अगस्त 1752 ई. में अपना शिविर डाल दिया, उधर वल्लभगढ का बलराम अपनी सेना के साथ सूरजमल से आ मिला। जब यह समाचार जावेद को मिला तो वह बेचैन हो उटा क्योंकि अतीत में वह उसके संरक्षण की याचना किया करता था, इस समय में भी वह यह चाह रहा था कि वह उससे पहले मिले और अपने मामलो पर चर्चा करे। लेकिन राजधानी में बजीर की उपस्थिति में प्रथक से मुलाकात करने का अवसर नही मिला। अंततः यह निश्चित हुआ कि 27 अगस्त 1752 ईं को जावेद बजीर की हवेली जाए और वहाँ वे दोनों सूरजमल तथा अन्य लोगों से भेंट करें। निर्धारित तिथि को सफदरजंग ने सूरजमल को बुलाने के लिए इस्माइल खाँ को भेजा, उसे हिदायत दी कि जावेद को सूरजमल के आने की खबर न दे दे और उससे अनुरोध करे कि सूरजमल से वार्तालाप करने के लिए उसके निवास स्थान पर आए। इसके तुरंत बाद जावेद आ गया, उसके बाद दोपहर में सूरजमल आया और तीनों के बीच विचार–विमर्श हुआ। शाम को सफदरजंग अपने प्रतिद्वंद्वी जावेद को एक भीतरी कक्ष में ले गया जहाँ संक्षिप्त बातचीत के बाद मुगल सैनिको ने उसे मौत के घाट उतार दिया। इस कत्ल की खबर से भारी अफरा–तफरी मच गई लेकिन कोई शत्रुतापूर्ण गतिविधि नही हुई। यह अफवाह फैल गई कि बजीर ने सूरजमल को भी मार डाला है। इस पर क्रोधित जाट सैनिकों ने बजीर की हवेली घेर ली और जब सूरजमल खुद बाहर आया और वह उनके सामने थोडे समय बैठा रहा, तभी उनकी आशंका दूर हुई।[66]

जो भी हो, सफदरजंग को वह चाहे जितना अनिवार्य लगा हो, किंतु जावेद की विश्वासघातपूर्ण हत्या के परिणाम अपेक्षा के विपरीत हुए। उसने शाही परिवार को नाराज कर दिया, अमीर–उमरा उससे दूर हो गए। और चारो तरफ शंकाएँ पैदा हो गई। शंहशाह ने, जो सदाँ दूसरे पर निर्भर रहने का अभ्यस्त था, अब बजीर के अधिक क्षमतावान और खतरनाक तूरानी विरोधियों, इंतजाम और नए मीर बख्शी इमाद पर विश्वास करना शुरू कर दिया। इस तरह एक संगठित और शक्तिशाली विरोधी पक्ष अस्तित्व में आ गया जिसके कारण आखिरकार वजीर का पराभव हुआ तथा जावेद के खात्मे ने सफदरजंग को पहली बार बजीर की हुकुमत और विशेषाधिकारों के प्रयोग के लिए समर्थ बनाया। आगामी कुछ महीनों में उसने स्वयं जो कुछ प्राप्त किया, उसके अलावा उसने अपने समर्थकों के हितों को बढावा दिया और विरोधियों को अलग–थलग किया। सूरजमल सदैव उसके साथ रहा था। अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए, उसने 20 अक्टूबर 1752 ईं को अपने मित्र एवं सहयोगी को शंहशाह के सामने पेश किया, जिसने बदन सिंह को (जो तब भरतपुर में था) 'महेन्द्र' की उपाधि प्रदान की[67] स्पष्ट समय का उल्लेख किए बिना वैंदेल दावा करता है, कि अहमदशाह ने उसे (सूरजमल को) जसवंत सिंह (जोसंद सिंह) की उपाधि दी जिसका अर्थ उसे राजा के रूप में मान्यता दिया जाना था, और नगाडे बजवाने का अधिकार भी दिया गया, परन्तु यह अधिकार शंहशाह के निवास के 12 कोस (36 कि.मी लगभग)के भीतर अमल में नही लाया जा सकता था।[68]

कुछ दिनों बाद सूरजमल को मथुरा का फौजदार भी नियुक्त कर दिया गया, जिसे मराठों से हुई सन्धि के अनुसार पेशवा के पास रहना था। इसके फलस्वरुप एक वार्षिक नजराने पर उसके हाथों मे आगरा सूबे के यमुना के दोनों ओर के अधिकांश भाग की सूबेदारी आ गई। ये समस्त अनुग्रह सूरजमल को पहले (मार्च 1751 ईं में) 3000 जात और 2000 घुडसवार का मनसब और उसके पुत्र रतनसिंह को 'राव' की उपाधि और उसके दूसरे पुत्र जवाहरसिंह को 1000 जात और 1000 घुडसवार की मनसब के अलावा थे। यह जवाहरसिंह के पहले ओहदे के अलावा था। अब उसे 4000 जात और 3500 घुडसवारों का धारक बना दिया गया था।[69]

इस सम्मान ने जाट बजीर सम्बन्धों और भरतपुर राज्य के उदय और विकास में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया यद्यपि उसके प्रमुख के पास सारी मूलभूत योग्यताएँ थी, मुगल बादशाह द्वारा शासकीय तौर पर स्वीकृत शाही उपाधि और अधिकार का अभाव था। अब वदन सिंह को शाही उपाधि मिलने से उसकी पूर्ति हो गई थी। इसका अर्थ बादशाह द्वारा जाट राज्य को मान्यता देना भी था। अब वदन सिंह हिन्दुस्तान के राजाओं में स्थान पाने का बैधानिक दावा कर सकता था। वैंदेल अंत में कहता है, कि अब मुगल बादशाह ने स्वयं जाटों के प्रमुख को राजा बना दिया था, जैसे कि आमेर के जयसिंह और अन्य राजा थे। यहीं से उसके राजनीतिक उत्कर्ष के 'युग' के सिलसिले की शुरुआत मानी जानी चाहिए।[70]

सूरजमल और राजधानी में गृहयुद्ध

राजमाता तथा तूरानी गुट से सम्बद्ध सामन्तों द्वारा भडकाये जाने पर बादशाह अहमदशाह ने नबाव सफदरजंग को बजीर के पद से हटा दिया, उसकी जागीरें छीन ली तथा अवध और इलाहबाद के वायसराय के पद से हटा दिया था। उनके मध्य अब गृहयुद्ध प्रारंभ हो गया। भूतपूर्व वजीर अपने स्वामी की कृतघ्नता से हक्का–बक्का था, वह निर्जीव की भांति आत्म–समर्पण करने को तैयार नही था, अतः उसने राजधानी का घेरा डाल दिया और अपने विश्वासपात्र मित्र राजा सूरजमल जाट को बुलवा भेजा।

अफगानों ने जो सफदरजंग के स्वाभाविक शत्रु थे, गाजी–उद–दीन इमाद–उल–मुल्क के नेतृत्व में शाही सेना का साथ दिया। क्रोधित नवाब द्वारा भडकाये जाने पर जाटों ने पुरानी दिल्ली और उसके पडौस को इतनी बुरी तरह लूटा कि लोग उसे भी 'जाटगर्दी' कहकर याद करते हैं। परिस्थितियाँ जो भी रही हों लेकिन जाटों ने जो क्रूरता दिखाई वह घोर निंदा की पात्र है, और अधिकांश इतिहासकारों ने ऐसा किया भी है। भारत की राजधानी की कैसी बदकिस्मती थी। केवल दो दशकों (1739–1761 ई.) के थोडे ही समय में यह 'नौ गर्दियों' की शिकार हुई। दो हमलावरों नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली द्वारा कुल मिलाकर सात बार, भिन्न–भिन्न मराठा सरदारों द्वारा आठ बार, वजीर इमादुलमुल्क के उकसाने पर चार बार और जेटा गूजर तथा बहादुर खाँ विलोच द्वारा एक–एक बार वह ध्वस्त की गई।[71] और इतना ही पर्याप्त न था इसी बीच औरों के साथ मिलकर जाटों ने दिल्ली की लूटपाट की सूची में एक और नाम जोड दिया।

इस अन्याय अत्याचार पूर्ण काण्ड ने बादशाह और सफदरजंग के बीच सारे नाते तोड दिए। उसने सफदरजंग को वजारत से बर्खास्त कर दिया, और उसके स्थान पर इंतिजाम–उद–दौला को इस पद पर नियुक्त किया। भूतपूर्व वजीर के अनुयायियों और उन सभी लोगों के घरों और सम्पत्ति को जिन पर उससे सहानुभूति रखने का शक था, लूट लिया गया। बादशाह ने सभी जमींदारों और मुखियाओं को पत्र भेजकर सफदरजंग के खिलाफ अपने साथ शामिल होने को कहा। शहंशाह ने और सफदरजंग के विरोधियों ने सूरजमल को कभी भारी सम्मान का वायदा देकर और कभी बदला लेने की धमकी देकर अपने पक्ष में करने की पुरजोर कोशिश की, किंतु विश्वासपात्र जाट ने उन दोनों के प्रति 'तिरस्कार का भाव अपनाया'।[72]

उधर अपनी बर्खास्तगी के बदले में सफदरजंग ने अकबर आदिलशाह नाम के एक प्रतिद्वंदी बादशाह को सिंहासन पर बैठा दिया और स्वयं को बजीर एवं सलावत खाँ को मीर बख्शी बना दिया। सूरजमल ने इस कार्यवाही का समर्थन किया। अतः अब पूर्णतया युद्ध का वातावरण बन गया, इसी क्रम में 17 मई की रात को शाही पक्ष से दिल्ली के दक्षिण में स्थित फिरोजशाह के कोहटीला को छीन लिया, इस्माइल खाँ ने भी तोंपे चढा दी गोलीबारी शुरु कर दी। कुछ गोले किले के भीतर भी जा गिरे, परंतु शाही सेना के जाट अपनी जगह पर डटे रहे। यह युद्ध बहुत लम्बा चला किंतु निर्णायक नही रहा। आखिरकार इस्माइल खाँ ने कोहटीला खाली कर दिया, जिस

पर शाही सेना ने अधिकार कर लिया। किंतु कुछ समय बाद ही उन्होंने सफदरजंग के शिविर पर आक्रमण कर दिया और दक्षिण में स्थित 'तालकटोरा' की ओर पीछे हट जाने को मजबूर कर दिया।[73]

14 जून के दिन सफदरजंग की सेना ने पहल करते हुए, राजेन्द्र गिरि गुसांई, इस्माइल खाँ और सुरतीराम गौड के नेतृत्व में जाटों ने दुश्मन के सभी ठिकानों पर आक्रमण कर दिया। जाटों और किजिलवाशों ने विद्रोही बख्शी और मराठा सेनाओं को भारी क्षति पहुँचाई, उनकी विजय निशचित सी हो गई थी, कि इसी बीच इमादुल–मुल्क सेना लेकर आ गया और बडी वीरता के उसने युद्ध लडा और शत्रु को खदेड दिया। गोलियों की बौछारों के बीच राजेन्द्र गिरि और सुरतीराम घायल हो गए। इसमें राजेन्द्रगिरि की दूसरे दिन मृत्यु हो गई। इस साहसी सेनापति की मृत्यु से सफदरजंग को इतना भयंकर सदमा लगा कि दस दिन तक वह पूरी तरह निष्क्रिय रहा।[74]

अब सफदरजंग प्रायः यह प्रतिद्वंद्विता हार चुका था। उसके गिरते मनोबल और सबके प्रति उदासीनता ने उसके अनुयायियों में और कमी कर दी।सूरजमल भी उसकी निराशाजनक स्थिति को समझ गया, और वह अपनी बर्बादी को न्यौता दे, ऐसा अव्यवहारिक भी नहीं था। अतः वह एक सम्मानजनक शान्ति के लिए बेचैन हो उठा,हालाँकि न तो उसने सफदरजंग के पक्ष से अपना बदला और न पीछे हटा।उसने अपने प्रतिनिधियों को बजीर (इंतिजाम) के पास क्षमादान और शान्ति के लिए समझौता करने भेजा, पर इसी शर्त पर कि उसे अपने अधिकार के सारे क्षेत्रों के साथ रहने दिया जाए। इंतिजाम ने इसका उत्तर दिया और सूरजमल के साथ संधि तय करने के लिए अपने आदमी भेजे। इसी समय बादशाह ने राजा देवी दत्त और रामनाथ को सूरजमल के पास भेजने के लिए प्रोत्साहित किया। उसने रात जाट शिविर में बिताई और फिर जाट प्रमुख की बादशाह को संबोधित एक याचिका लेकर लौट आया। तथापि इस पर हुई चर्चाओं के दौरान इमादुल मुल्क, जो अंतिम फैसले तक लडाई पर अडा रहा, ने इस प्रस्ताव का विरोध किया और फिलहाल शांति का यह प्रयास असफल हो गया। इस बीच फिर 1 जुलाई को एक घमासान युद्ध हुआ जिसमें तोपखाने की प्रमुख भूमिका थी। जाट सेनानायक गोकुलराम इस बात पर क्रुद्ध था कि पहले हुई लडाई में उसका भाई सुरतीराम घायल हो गया था।

अतः उसने नागाओ के साथ एक सुदृढ आक्रमण का संचालन किया और अपने शत्रुओ को पराजित किया। परंतु इस घटनाक्रम में वह एक गोले से गंभीर रुप से घायल हो गया, किंतु इस जाट सेनापति की इच्छा थी, कि शत्रु का पीछा जारी रखा जाये। परंतु जाट इस सदमे से अचंभित, थे वे अपने लाभ को उसके अंतिम परिणाम तक नही ले जा सके। इस प्रकार विजय एक बार फिर सफदरजंग के हाथों से निकल गई।[75]

ऐसी स्थिति में सफदरजंग को सूरजमल ने परामर्श दिया कि शहर और किले की सुरक्षित सीमा से दूर शत्रु को खुले में जाने के लिए वह एक रणनीति के तहत दक्षिण में पीछे वापस आ जाए।सफदरजंग ने सलाह को स्वीकार किया और दिल्ली से 12 मील (लगभग 19 कि.मी) दक्षिण में चला गया, जैसे ही वह पीछे हटा, तो इमाद खिजराबाद तक आगे बढ़ गया। 25 जुलाई को जवाहर सिंह बलराम और राजा गूजर के अधीन जाटों ने रुहेलों पर आक्रमण कर दिया और फिर

गढी मैदान के किले पर घेरा डाल दिया। एक लंबी और भीषण लड़ाई छिडी जिसमें दोनो पक्षों ने विशिष्ट संयम और शानदार वीरता का प्रदर्शन किया।अंततः जाटों की विजय हुई।इस हार ने इमाद को गुस्से से आग–बबूला कर दिया।अगले दिन वह राजधानी पहुँचा और बादशाह से खुद नेतृत्व करने की अपील की, ताकि मामले को निपटाया जा सके परंतु बजीर की सलाह पर अहमदशाह ने स्पष्ट रुप से मना कर दिया। [76]

कुछ दिनों बाद सूरजमल ने बदरपुर और सराय बख्ताबर के बीच अपना शिविर लगा दिया। 19 अगस्त को जाट, किजिलबाश और नागा आगे बढ़े और तुगलकाबाद और यमुना के बीच एक लड़ाई हुई, जिसमें जाटों और रुहेलों ने अपने शौर्य का प्रदर्शन किया।प्रांरभ में जाटों का पक्ष भारी रहा लेकिन शिवसिंह की जाँघ में एक भाला आकर लगा, और शत्रु सेना ने जाटों को पीछे धकेल दिया।अगली सुबह सफदरजंग फरीदाबाद चला गया और कुछ दिनों बाद बल्लभगढ़ के दक्षिण तक पीछे हट गया।इसी बीच इमाद आगे बढता रहा और फरीदाबाद के उत्तर में पहुँचकर बल्लभगढ़ किले रूपी काँटे को निकाल फैंकने का फैसला किया।इसी बीच अपने वेतनों की बकाया राशि की माँग करते हुए सिपाही और शाही तोपची अपनी चौकियों से हट गये।इस पर सफदरजंग ने अपने आदमियों को फिर से इकट्ठा किया और हमला बोल दिया, परंतु इसका कोई परिणाम नही निकला।फिर 7 और 8 सितम्बर को 5 से 6 हजार जाट फरीदाबाद तक पुनः आगे बढ़ गये।उन्होने अपने थोडी–थोडी देर बाद के हमलों से शत्रु की रसद पूर्ति मार्ग को काट दिया।हालाँकि इस घटनाक्रम में उन्होंने अपने एक सरदार मोहकम सिंह को खो दिया।स्थिति के इस मोड ने इमाद को 'निरुत्साहित' कर दिया।और उसने एक बार फिर बादशाह से सहायता की प्रार्थना कि, पर इसका भी कोई बहतर परिणाम नही निकला यह सोचकर कि वह अकेले अपने दुश्मनों को नही कुचल सकता, इमाद ने होल्कर और शिंदे से उसने वचन दिया कि वह एक करोड रुपयों के अलावा इन सब के ऊपर अवध और इलाहबाद की सूबेदारी देगा, जिसका कि मराठों को पहले ही आश्वासन दिया जा चुका था।[77]

इसी बीच बजीर और शंहशाह, इमाद की क्षमता और तेजी से बढ़ती उसकी प्रतिष्ठा से भयभीत हो ,शांति के आतुर हो उठे।अतः एक ओर जहाँ उन्होंने माधोसिंह को आने और शान्ति–स्थापना में सहायता देने के लिए लिखा, वही दूसरी ओर उन्होने सूरजमल के द्वारा पुनः किए जा रहे निवेदनों के प्रति अनुकूलता दिखाई।ठीक उसी दिन जब इमाद शंहशाह से मिला सूरजमल ने बजीर से सम्पर्क किया और शान्ति स्थापना के लिए कुछ लाख रुपये देने का वचन दिया। इंतिजाम ने 14 सितम्बर को अपने वकील लुतफुल्ला बेग को सूरजमल के पास भेजा और फिर दोनों ने मिलकर सफदरजंग से भेंट की।उसके बाद कट्टर इमाद की विवशता का लाभ उठाकर सूरजमल और सफदरजंग की फौजों ने आगे बढ़कर हमला कर दिया और सराय बख्तावर खाँ, वदरपुर तथा अन्य स्थानों पर शाही सेनाओं को पराजित किया। कुछ समय बाद सफदरजंग ने बख्तावर खाँ पर दक्षिण दिशा से और जाटों ने उत्तर दिशा से हमला कर दिया।

बीकानेर और मराठों द्वारा बख्तावर खाँ को कुमुक पहुँचाने तक सारी रात घमासान लड़ाई चलती रही और हमलावरों को पीछे खदेड दिया गया। इस विश्वासघाती हमले ने शंहशाह और

उसके दरवारियों को ठीक ही अचंभे में डाल दिया। कट्टरवादियों को एक मौका मिल गया और बजीर के तमाम प्रयासों के बाद शांति वार्ता एक बार भंग हो गई।[78]

फरीदाबाद के तालाब पर 29 सितम्बर को इस श्रृखंला की अंतिम उल्लेखनीय लड़ाई लडी गई।सफदरजंग और सूरजमल ने इमाद के अधीन नई फौजें पहुँचने से पूर्व शाही फौजों पर एक भीषण हमला कर दिया। जवाहर सिंह को पीछे रखकर ये दोनों आगे बढ़े और गोलीवारी के बीच कई मराठों को मारते हुए शाही चौकियों के दाई ओर के भाग पर नियंत्रण कर लिया। तथापि, हाफिज बख्तावर,अबू तुब और अन्य लोगों के नेतृत्व में लगातार आई कुमुक ने लडाई फिर से जारी रखी।अंत में इमाद और नजीब एक और कुमुक लेकर आए।इस अवसर पर शानदार साहस का प्रदर्शन करते हुए इमाद अपने हाथी को दुश्मनों के बीच ले गया और भीषण लडाई के बाद, जिसमें दोनों पक्षों को भारी नुकसान हुआ, वह जाटों को परास्त करने में सफल हुआ, जो घायल हुए उनमें इस्माइल और सदाराम जाट भी थे। अपने दुश्मनों को दक्षिण में और पीछे धकेलते हुए इमाद ने नजेसर पर कब्जा कर लिया और मराठों के साथ उसने जाट आबादी को लूटा।

कुछ दिनों बाद शहंशाह के आदेश के अनुसार माधोसिंह आ पहुँचा। अब इमाद को छोडकर हर एक व्यक्ति लडाई खत्म करने के लिए वाकई व्याकुल था। मराठों के साथ इमाद के मेल–जोल ने वजीर, शहंशाह, सफदरजंग और सूरजमल सभी को चिंतित कर दिया था। सूरजमल ने वजीर के माध्यम से शान्तिपूर्वक समझौते की कोशिश की थी लेकिन इमाद के विरोध के कारण वह असफल रहा था।अब अक्टूबर के मध्य में उसने नजीब के माध्यम से इमाद से सीधे समझौता वार्ता शुरु की।इस बार इमाद मान गया और उसने नजीब और बहादुर खाँ विलोच और अजीतसिंह का वल्लभगढ और शाही चौकियों के बीच एक स्थान पर सूरजमल से समझौता वार्ता करने का निर्देश दिया।सूरजमल यथा स्थिति बनाए रखना चाहता था, अर्थात उसे अपने वर्तमान प्रदेश और सफदरजंग को अवध और इलाहाबाद की सूबेदारी रखने दी जाए।इन प्रस्तावों पर इमाद राजी नहीं हुआ।इसके विपरीत उसने सूरजमल को सारे महल और यही नहीं जो मूलतः उसके पिता के पास थे, उन्हें भी सौपने को कहा।किंतु सफदरजंग के सम्बन्ध में उसने कहा कि उपरोक्त दो प्रांतो के बदले उसे अहमदाबाद और गुजरात दिए जा सकते है।इस तरह इमाद की हठधर्मिता के चलते एक बार फिर समझौता वार्ता भंग हो गई।

तथापि अपने प्रतिद्वंदी वजीर की गुप्त नीति के कारण इमाद को बहुत जल्दी अपने कदम वापस लेने पडे।बादशाह द्वारा उसकी पीठ पीछे समझौते की योजना का भांडा फूट गया। इससे बख्शी खिन्न हो गया, जो इस बात का श्रेय लेना चाहता था अतः उसने सूरजमल से संवाद शुरु कर किया था।परंतु इंतिजाम खाँ उससे आगे निकल गया।उसने व्यवस्था की कि माधोसिंह के शिविर में शहंशाह जाए और वहाँ सूरजमल से सन्धि करे।तदनुसार 25 अक्टूबर को अहमदशाह जिससे बाद में इंतिजाम आ मिला, खिजराबाद गया।परंपरा अनुसार अपना नजराना भेंट करने के बाद माधोंसिंह ने बादशाह को 9 अशर्फियॉ भेंट की और सूरजमल को क्षमा करने के लिए प्रार्थना की।जाट वकील ने अशर्फी भेट की और ऐसी ही प्रार्थना की।बादशाह ने भेंट स्वीकार कर ली।सूरजमल को माफ कर दिया गया और दिल्ली लौट आया। वजीर ने इस बात पर बेहदखुशी

मनाई कि सुलह इमाद द्वारा नही की गई।अपने शिविर से सूरजमल माधोसिंह के शिविर में गया, जहाँ वह वजीर से, जो पूर्व व्यवस्था के अनुसार प्रतीक्षा कर रहा था, मिला और उसे अशर्फीयॉ भेंट की।बाद में बजीर चला गया, पर सूरजमल और अकीबत महमूद राजा के शिविर में उस रात और बाद में पाँच दिनों तक रुके रहे।उस पर विश्वास करने के प्रत्येक कारण है कि सूरजमूल ने अपने पुराने मित्र सफदरजंग से सम्मानजनक क्षमा को प्राप्त करने में योगदान दिया।शहंशाह से मुलाकात के बाद पहली नवम्बर को सूरजमल अपने शिविर में लौट आया।[79] इसी प्रकार गुप्त रीति से सफदरजंग से भी 7 नवम्बर को समझौता हो गया।

सफदरजंग के दृष्टिकोण से, गृहयुद्ध में जाटों की भूमिका के अपने आकलन में यदुनाथ सरकार कुछ अनुदार प्रतीत होते है।वह कहते हैं कि जाटों द्वारा दिल्ली की लूटपाट ने 'राजधानी और उसके आस–पास के क्षेत्रों के लोगों को सफदरजंग से दूर कर दिया' और 'निष्ठावान जाट सहयोगी' सफदरजंग के पक्ष में 'एक भी रणक्षेत्र को बदल देने में असफल रहे।'[80]

शौर्य और साहस की जाटों में कमी नही थी या वे अपने संख्या बल की कमी को पूरा नहीं कर पाए।सफदरजंग के 15,000 जाटों का लाभ उसी दिन प्रभावहीन हो गया जब जनीब 15,000 सैनिकों और 2,000 जेटा गूजर के साथ विरोधी पक्ष से आ मिला था और फिर सफदरजंग जिसका सेनापतित्व कमजोर था ज्यादा–से–ज्यादा औसत दरजे का था और बाद में निराश भी हो गया था। दूसरी तरफ इमाद जैसा वीर और चतुर सेनानायक जिसके पास काफी बडी फौज थी।

इस संदर्भ में सूरजमल और उसके आदमियों से चमत्कार की अपेक्षा करना व्यर्थ होगा।क्योंकि अधिकतर अभियानों में जाटों ने प्रारंम्भिक बढत हासिल की, परंतु लगातार कुमुक आने से शत्रु का पक्ष भारी हो गया।किंतु सूरजमल के बिना, अकेले सफदरजंग की, उसकी अविच्छेद कमजोरियों को देखते हुए, क्या दशा होती इसकी कल्पना करना कठिन नहीं है।हालॉकि जाट सरदार अपने साथी को विजय हासिल कराने में निश्चय ही असफल रहा, तथापि यह नकारात्मक उपाय अपने आप में सफदरजंग को सूरजमल की शस्त्रों से सहायता का वास्तविक महत्व प्रकट करता है।यह सत्य है, कि जब लडाई कुछ समय आगे बढ रही थी तो उसके बाद सूरजमल की समझौता की इच्छा थी, परंतु वह भी निराशाजनक परिस्थितियों में फिर भी अपने मित्र की कीमत पर नहीं।सफदरजंग के संकट के समय उसके सम्बन्धियों और उच्च पदाधिकारियों ने उसका साथ छोड दिया था, परंतु सूरजमल निष्ठापूर्वक उसके साथ खडा था, और जब वह समझौता वार्ताए कर रहा था जब भी वह अपने साथी के हितों की रक्षा के लिए पूरे प्रयत्न करना न भूला।[81]

एक–दूसरे से अलग होते हुए दोनों (सफदरजंग और सूरजमल) के ह्रदय जरुर दुखे होंगे, जिन्होंने अतीत में एक–दूसरे के लिए इतना कुछ किया था।विदा होते समय सफदरजंग ने सूरजमल को एक शानदार खिलअत भेंट की थी, और सूरजमल ने अपने 'प्रिय मित्र', भूतपूर्व वजीर को घोडे, ऊँट गाडियाँ तथा अन्य ऐसी ही वस्तुएँ बडी संख्या में भेंट की थी। कुछ भी तकनीकी बातें क्यों न हों, तथ्य यह है कि विद्रोह की समाप्ति के पूर्व ही वही शहंशाह और तत्कालीन वजीर विद्रोहियों के और विद्रोही उनके करीब आना शुरु हो गए थे।

सूरजमल और शाही वजारत

अब दिल्ली में इमाद ने वजारत हडप ली और अहमदशाह की जगह अपने कठपुतली, आलमगीर द्वितीय को सिंहासन पर बैठा दिया।इधर सूरजमल की नीति का मुख्य उद्देश्य अब अपने पूर्व अधिकृत क्षेत्रों को पुनः प्राप्त करना एवं अराजकता के मध्य अपने हिस्से के नए क्षेत्रों को हडपना था।अतः उसने अनुमान लगाया कि एक मित्रभावी वजीर उसके उधमशील कार्यों को कानूनी जामा पहनाने और उसकी प्रतिष्ठा को भी बढाने में एक सुविधाजनक माध्यम सिद्ध होगा। अतः वह राजधानी के कामकाज में सर्वेसर्वा के रुप में अपनी पसंद का व्यक्ति चाहता था।पहले उसने इस संभावना का पता लगाया कि क्या इमाद के तोड के लिए उसके विश्वस्त हितैषी इंतिजाम को आगे बढाया जा सकता है।अतः 22 नबम्वर 1754 को उसका दूत,रुपराम,जयसिंह पुरा (दिल्ली) में होल्कर के दीवान गंगाधर से मिला और वार्ता की।ये दोनों इस बात पर सहमत हो गए कि बल्लभगढ़ पहले की तरह सूरजमल के अधीन रहने दिया जाए और इंतिजाम को इस शर्त पर शंहशाह का सेवक बनाया जाए कि किले में इमाद के अधिकारियों की जगह शंहशाह के प्रति निष्ठावान लोग तैनात किए जाएँगे।इमाद किसी भी तरह शंहशाह को अपने हाथ से नही जाने देना चाहता था।अतः इस प्रस्ताव को रद्द करते हुए वह जयसिंह पुरा से अंदर चला और रघुनाथ राव के पास पहुँचा। रघुनाथ राव को यह विश्वास हो गया कि इंतिजाम के अधीन धन की संभावना नही बढेगी और इस तरह इमाद वजारत रखे रहा।

कुछ महीनें बाद एक अधिक सक्षम आकांक्षी जाट राजकुमार के पास पहुँचा।उसके मित्र सफदरजंग का बेटा और उसका उत्तराधिकारी शुजा ने शाही वजारत की आकांक्षा अपने दिल में पाल रखी थी। पानीपत में इमाद की दुर्गति का लाभ उठाते हुए,शुजा ने अपने दूत अली कुली खाँ दागस्तानी को अपने परम्परागत मित्र सूरजमल और अहमद वंगश के पास इमाद की वजारत से बर्खास्त करने में उसकी सहायता माँगने के लिए भेजा।सूरजमल ने इस प्रस्ताव को पंसद किया और शुजा भी उसके शत्रु के खिलाफ सहायता करने के लिए सहर्ष तैयार हो गया। अली कुली खाँ ने सैफुद्दीन मोहम्मद और राजधानी मै मौजूद किशनचंद सूद से भी सम्पर्क किया।तानाशाह इमाद से छुटकारा पाने के साधन के रूप में शंहशाह ने भी इस योजना को अपनी सहमति दे दी।इस परिवर्तन को लाने के लिए, जो तत्कालीन परिस्थितियों में बादशाह के साथ–साथ सूरजमल के लिए भी बेहतर सिद्ध होता।[82] इसके लिए आवश्यक सैनिक तैयारियाँ की गईं।लेकिन इस षंडयत्र के मुख्य सूत्रधार शुजा द्वारा उसके क्रियान्वय में की गई लापरवाही और विलंब ने इमाद को जमे रहने का प्रयास करने का मौका दे दिया। अतः इमाद दिल्ली दौड़ा आया (मई,1755 ई.) और उसने तत्काल स्थानीय षडयंत्रकारीयों को कुचल दिया। इस तरह षडयंत्र शुरू होने से पहले ही कुचल दिया गया।

इसके बाद उसने मुख्य षडयंत्रकारी सूरजमल से बदला लेने का प्रयत्न किया और उसके खिलाफ एक दंडात्मक अभियान की योजना बनाई गई।यद्यपि, उस पर अमल नही हो सका, उसने

बादशाह के नाम पर नजीब को 17 जून 1755 को प्रत्यक्षतः दोआव मे सूरजमल द्वारा हाल ही में अधिकृत क्षेत्रों से उसे उखाडने के लिए भेजा, परंतु वस्तुतः वह शुजा के साथ उसकी भागीदारी पर अपनी नाराजगी व्यक्त करना चाहता था।शक्तिशाली जाट, जिसने बजीर और रुहेला फौजों की पूरी तरह उपेक्षा कर दी, युद्ध की मुद्रा में आगे बढा।परंतु इसी बीच राजा नागरमल ने,जो युद्ध नही चाहता था,हस्तक्षेप किया और सुलह के लिए अपने प्रयत्नों में सफल हुआ।इस शान्ति समझौते पर डासना में 10 जुलाई 1755 ई. को दस्तखत हुए।[83] इमाद जो अपने दुश्मन को सजा देना चाहता था,उसकी बजाय अब उसके अधिकांश क्षेत्रीय इलाकों को कानूनी तौर पर उसके अधिकार को स्वीकृति देनी पड़ी। परंतु सूरजमल अभी भी शांत नही हुआ था। इसके बाद के महीने के एक मराठे खरीते में लिखा था। बजीर और जाट के मन मिल नही पाए हैं, जाट धमकी दे रहा है, परंतु बजीर के पास सूरजमल से लड़ने की ताकत नही है।[84] शुजा उच्च पद के लिए बहुत अधिक लालयित था और इस झटके के बाबजूद उसके लिए उम्मीद छोड देना मुस्किल था।इसमें शक की जरा भी गुंजाइश नही कि वह अपने पुराने कट्टर सहयोगी सूरजमल के सम्पर्क में बना रहा।फिर भी शुजा आवश्यक पहल, साहस या इच्छाशक्ति का प्रदर्शन नही कर पा रहा था और चतुर सूरजमल अपने तमाम हितों के बावजूद इस परिस्थितियों में खुद को बाहर न निकल पाने वाली स्थिति में फसाना नही चाहता था।जहाँ तक इमाद का प्रश्न था, वह वजारत को बनाए रखने के लिए किसी भी सीमा तक को तैयार था।उसने पहले सूरजमल को तोडने की कोशिश की फिर शुजा को बंगश के खिलाफ भडकाने की कोशिश की।उसने इलाहबाद की सूबेदारी शुजा से बंगश को हस्तांतरित कर दी। इससे शुजा चिंता में पड़ गया और वह बंगश को इलाहबाद जाने से रोकने के लिए फर्रुखावाद की ओर बढ़ा।

अक्टूबर, 1756 ई. के आस–पास यह अफवाह फैली कि राजा सूरजमल और शुजा ने गठबंधन कर लिया है और बंगश को उखाडते हुए वे बजीर से लडना चाहते हैं। इसने सूरजमल और उसके सलाहकारों नागरमल और नजीब को उलझन में डाल दिया।नागरमल ने बजीर से सूरजमल की मुलाकात कराने की कोशिश की और नजीब ने बजीर को इलाहबाद शुजा को बहाल करने के लिए तैयार किया।शुजा ने भी इस सम्बन्ध को बढ़ाने के लिए अपने मनसूबे त्याग दिए शुजा के प्रायः पीछे हटने के बाद इमाद को हटाने की कोशिश एक बार फिर खत्म हो गई। तथापि, बजीर फिर भी सूरजमल की गतिविधियों के बारे में चिंतातुर रहा।[85]

सूरजमल और शाही समस्याएँ

अब अफवाह फैली कि अहमदशाह अब्दाली भारत की राजधानी दिल्ली पर आक्रमण करने बाला है।इस बात से वजीर चिंता ग्रस्त हो गया।इमाद स्वयं तो कुछ करने की स्थिति में नही था, अब उसे संभावित संकट से निपटने के लिए सहयोग की विशेष आवश्यकता थी, अतः अब उसका ध्यान अपने शक्तिशाली शत्रु सूरजमल की ओर गया।लेकिन लम्बे समय से चली आ रही शत्रुता के कारण जाटों को राजी करना बहुत ही दुष्कर कार्य था।अतः उसने नागरमल की सेवाएँ चाहीं।नागरमल ने अपने दूत सुजान नामक ब्राह्मण को सूरजमल के वजीर से मिलने के लिए सहमत करने के उद्देश्य से भरतपुर भेजा।जाट राजा सूरजमल राजी हो गया और नबम्वर 1756 के प्रथम सप्ताह में तिलपत पहुँच गया।नजीब उससे मिलने गया, उसके पीछे–पीछे राजा नागरमल भी पहुँच गया जो बजीर की तरफ से बातचीत करने के लिए जाट–शिविर में रुका था।वजीर का एक विश्वासपात्र मेंहदी कुली खाँ नाम का व्यक्ति सारे समय वहाँ उपस्थित रहा।

एक भिन्न स्वर प्रतिध्वनित करते हुए जाट राजा ने कहा ''हम जमींदार लोग शंहशाह की मदद से रहते है।इस वक्त दक्षिणी मराठों की सेना भारत के इन भागों (उत्तर भारत) में घुस आई है।और वह रैयत के घरों को लूट रही है। छोटे–बडे (सभी) जमींदारों के तालुको को तहस–नहस और नष्ट करते हुए उसने विद्रोह उपद्रव और अशांति फैला रखी है।और (इस परिस्थिति में) मुख्यतः जोधपुर मेडता जयपुर और (भरतपुर सहित) अन्य समस्त राजाओं ने नर्मदा के इस ओर (उत्तर मे) उनके आगमन को रोकने और अपने कब्जे के स्थानों से उन्हें (मराठों) मार भगाने का (भी)और शाही इलाकों को शंहशाह को सौंपने का फैसला किया गया।हम भी (हडपे गये) महालों और यहाँ तक कि अपनी पुरानी जमीदारियों को भी छोड देगें।इन प्रस्तावों को स्वीकार कर वजीर–उल मुमालिक भी हमारा समर्थन और सहायता करें और अकबराबाद की और कूचकर मालवा और गुजरात को मराठों के चंगुल से मुक्त कराने की कोशिश करें।'' ''और इस तरह अपने घरों को सुरक्षित कर'' जाट ने आगे कहा ''संयुक्त फौजें फिर अब्दाली को खदेडने के लिए पंजाब की ओर कूच करें जैसा कि 1748 ई।.में किया गया था।''[86]

सलाह का यह अंश इस जाट पुरुष की राजनीतिक दूरदर्शिता और यथार्थ को समझ ले ने की क्षमता को प्रकट करता हैं। वह मराठों और अब्दाली दोनों को संकट का संभाव्य स्त्रोत मानता था।परंतु इन दोनों में से मराठा समस्या को निपटाने को प्राथमिकता दी।इसमें कोई संदेह नही कि उसका दृष्टिकोण मूलतः उसके निजी अनुभव द्वारा नियंत्रित था। उनके हाल के आक्रमणों के अतिरिक्त लुटेरे मराठा अभी बकाया राशि की, माँग कर रहे थे और जाट क्षेत्रों को लूट रहे थे।, जबकि उसे अब्दाली की क्रुरताओं का अभी अनुभव ही करना था।परंतु अधिकांश अन्य राजाओं का भी ऐसा ही अनुभव था।मराठों की तरह अब्दाली ने सारे हिन्दुस्तान को धमकी नही दी थी।मराठों ने जर्जर होती सल्तनत के अधिकांश भाग को सीधे अपने राजनीतिक शासन के अधीन करके या उसे आर्थिक तौर पर अपना मातहत बनाकर अब तक सबसे अधिक धक्का पहुँचाया था।

मराठों ने 1752 ई.में अब्दाली से लडने और उसे खदेडने की जिम्मेदारी ली थी।फिर भी उन्होंने स्वयं पूरी तरह जोर नही लगाया।शाही प्रतिरक्षा की जिम्मेदारी पूरी तरह इनकी थी लेकिन उन्होंने अन्य लोगों द्वारा इस दिशा में जो भी पहल की गई, उसे पलीता लगाया। फरवरी 1752 ई. का उदाहरण इसे स्पष्ट करता है जबकि सामंतो और अन्य राजा बादशाह से यह निवेदन कर पीछे रहे कि चूँकि उसने मराठों को आगरा और अजमेर तथा सभी 24 प्रांतो की चौथ दे दी है और सारे अधिकार उनके हाथों में सौंप दिए है तो उन्ही से पूछिए कि अब आगे क्या किया जाए।[87] यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि 1748 ई.में अब्दाली के खिलाफ ये ही राजा शाही फौज के साथ शामिल हुए थे, किंतु मराठों से सन्धि के बाद आमतौर पर वे आगे नहीं आए।

सल्तनत की सेवा के बहाने मराठे हिंदुस्तान पर एकाधिकार की लालशा कर रहे थे। यद्यपि उसके भाग्य की उन्होंने शायद ही कोई परवाह की, और अपने विभाजित और पारस्परिक ईर्ष्यायुक्त नेतृत्व के कारण वे शासितो का कुछ भी भला करने के योग्य थे। तथा उनकी आम नीति के बारे में कुछ न कहना ही बेहतर होगा।उनकी विस्तारवादी कार्यवाहियों के बारे में शाही इतिहासकार की टिप्पणी है कि उन्होने (मराठों) ने सारे हिन्दुस्तान को लूटा और तहस–नहस किया था।[88] इसमें कोई आश्चर्य नही कि इसलिए सूरजमल ने यह वकालात की कि 'सलतनत की सबसे अच्छी सुरक्षा' पहले मुगल शहंशाह के नेतृत्व में संयुक्त मोर्चा बनाकर उत्तर से समान रुप से सभी के स्थाई दमनकारियों को खदेड बाहर करने में है।उसकी योजना के अनुसार बाद में पंजाब से आए अफगान हमलावर अहमदशाह अब्दाली को खदेडने का काम हाथ में लिया जाना चाहिए और मनुपुर की लडाई के परिणाम को देखते हुए संयुक्त मोर्चा बनाकर किये जाने वाले इस कार्य से सफलता असंभव नहीं थी।

सूरजमल का प्रस्ताव ढहती सल्तनत के प्रति उसके सामान्य दृष्टिकोण को भी प्रतिबिंबित करता है।सबसे पहले यह अवश्य स्वीकार कर लिया जाना चाहिए कि वह भी सल्तनल की पुरानी ओजस्विता और ताकत की बहाली की इच्छा नहीं कर सकता था, क्योंकि इससे निश्चित ही उसके अपने अस्तित्व के लिए खतरा पैदा हो जाता पर साथ ही उसने किसी प्रकार भी उसकी सल्तनत की समाप्ति भी नहीं चाही। मराठों और अब्दाली के विरुद्ध निर्भीक मोर्चा बनाने पर जोर देकर, विशेषकर हाल में ही हस्तगत क्षेत्रों को लौटाने के प्रस्ताव द्वारा वह सल्तनत को एक नया जीवन देने की इच्छा रखता था।[89] इससे प्रतीत होता है कि उसने तर्क रखा कि यदि इसी तरह गिरावट चलती रही तो न केवल सल्तनत समाप्त हो जाएगी, वरन् अपने अंतिम निष्कर्ष में उसके फलस्वरुप जन्मी राजनीतिक अस्थिरता और शून्यता के बीच विभिन्न राजाओं को भी भारी क्षति उठानी पडेगी।इस साझा खतरे को दूर करने के लिए वह उपरोक्त पुनर्व्यवस्था करने का समर्थन कर रहा था। वह वस्तुतः एक माह संघ की स्थापना की बात सोच रहा था।जिसमें मुगल बादशाह उसका सर्वोच्च प्रमुख और अर्द्धस्वतंत्र शासको –प्रमुखो के बीच समन्वयकारी कडी होता।शहंशाह के दृष्टिकोण से यह एक आदर्श स्थिति तो नहीं होती।परंतु जो आदर्श होता है, वह सदैव व्यवहारिक तो नहीं होता। स्थितियां ऐसे बिन्दु पर जा पहुंची थी कि अब उन्हें लौटना एक असंम्भव कार्य था।किसी सत्ता का बिल्कुल न रहने से नाम के लिए रहना तो बेहतर है।अतः सूरजमल द्वारा

प्रस्तावित योजना उस समय की पेचीदी राजनीतिक समस्याओ के लिए एक बुद्धिमतापूर्ण एवं यथार्थवादी समाधान थी।[90]

सबसे अधिक दृष्टव्य उसका देश भक्तिपूर्ण एवं राष्ट्रवादी स्वर है उसने धरती पुत्रो के संयुक्त प्रयासो से, अहमदशाह अब्दाली की सहायता से नहीं, जो विदेशी होने के कारण इस जमीन के प्रति सहज लगाव नहीं रख सकता था, एक राजनीतिक पुनरुज्जीवन की परिकल्पना की थी।

परंतु इमाद–उल–मुल्क मराठों को, जिन पर इसकी वजारत निर्भर थी, दबाव नही चाहता था। अतः उसने सूरजमल के समझदारी के प्रस्तावो की उपेक्षा कर दी।'आजिज आकर' वह वजीर को उसके भाग्य पर छोडकर घर लौट गया।दरबारी इतिहासकार के इन शब्दो में छिपी निराशा की भावना किसी से छिप नहीं सकती जब उसने कहा....और सूरजमल सल्तनत की सेवा न कर सका।[91]

सूरजमल और शाह आलम (अली गौहर)

1 सितम्बर 1757 ई. मराठो और इमाद ने बादशाह के साथ मिलकर अपने संयुक्त शत्रु नजीर को दिल्ली से खदेड दिया था। और ऐसा माना जाता है कि इस कार्य में जाटो ने भी सहयोग किया हालॉकि राजधानी में वास्तविक शासको के बदलने से सामान्य स्थिति में कोई बदलाव नही आया।इस समय वजीर इमाद की एकमात्र चिन्ता यह थी कि स्वयं निर्विवाद रुप से सत्ता का मालिक बना रहे। इस हेतु वह अपने संभावित विरोधियों को चुन–चुनकर राजधानी से खदेडना चाहता था।

मई 1757 से मार्च 1758 तक प्रत्यक्ष उत्तराधिकारी मिर्जा अब्दल्ला, जिसे अली गौहर और शाह आलम की उपाधि दी गई थी, वह रेवाडी और रोहतक में अपनी जागीरे फिर से प्राप्त करने के प्रयत्नों में उत्साहपूर्वक जुटा हुआ था।वजीर ने उसे वापस बुलवाया और उसको गिरफ्तार करने के लिए अनेक षडयंत्र रचे और मई, 1758 ई. में उस पर आक्रमण कर दिया, लेकिन शाह आलम बचकर भाग निकला और अपनी जागीर में पहुंच गया।[92]

राजा सूरजमल ने शहजादे की सेवा में उपस्थित रहने के लिए अपने पुत्र रतनसिंह को पटौदी भेजा। अपने पिता की ओर से जाट राजकुमार ने अली गौहर को 2,000 रु., 1 हाथी, 7 घोडो और 5 कपडों के थानों के साथ 101 अशर्फिया बतोर नजराना और ऊँटों तथा गाडियों पर लदी खाधान्न सामग्री और अन्य रसद भी भारी मात्रा में भेंट की।[93] स्पष्टतः इमाद–अली गौहर विवाद को अपने स्वयं के लाभ की दिशा में मोडने के लिए चतुर जाट का एक सुविचारित कूटनीतिक कदम था। एक ओर इस व्यवहार से उसने भटकते युवराज को अपनी ओर करने का प्रयत्न किया, वहीं दूसरी ओर उसने इस प्रकार इमाद पर भी दवाब डाला ताकि वह जाट से समझौता कर ले।हमें ज्ञात नहीं कि अली गौहर की क्या प्रतिक्रिया हुई। पर इमाद अपने प्रतिस्पर्धी को जाट द्वारा सहायता देने से बहुत परेशान हो गया।इसके पहले (30 मार्च,1758) उसने अपने एक

अन्य प्रतिस्पर्धी इंतिजाम को निगरानी में रखा था। इंतिजाम द्वारा जाट और रुहेला राजाओं को सहायता–याचना के लिए लिखे गए पत्रों के पकडे जाने के बाद उसने ऐसा किया था। परंतु अली गौहर उसकी पहुच के बाहर था और साथ ही यह प्रतीत होता था कि उसे जाट राजा का भी समर्थन प्राप्त है। अब वजीर ने जाट राजा को मनाना शुरु किया, जिसका कि 1753ई. से उसने लगातार विरोध किया था। 2 जून 1758 ई. को उसने पुराने मध्यस्थ नागरमल जिसकी जाट राजा से घनिष्ठता थी, को बुलवाया और उससे कहा कि वह अली गौहर की हिमायत न करे। असहाय आलमगीर द्वितीय से औपचारिक अनुमति लेकर वजीर ने 3 जून को अपना दूत अपने पुराने शत्रु सूरजमल के लिए 6 कपडो का एक खिलअत तथा रत्नजडित शिरस्त्राण भेजा। स्पष्टतया, चतुर, दूरदर्शी जाट इसी प्रकार की स्थिति पैदा होने की प्रतीक्षा कर रहा था।उसी दिन नागरमल ने जाट राजा को पलवल स्थित उसके खेमें में वजीर का यह अनुरोध पहुंचाया।

उसके बीच तीन दिनो तक समझौता–वार्ताएँ चलती रही। 6 जून को नागरमल नाहरसिंह (सूरजमल के अन्य पुत्र) के साथ लौटा और वजीर को राजा के उत्तर से अवगत कराया नाहरसिंह खिजराबाद में ही रहा।[94]

नाहरसिंह की दिल्ली के बाद हुई लंबी वार्ताएँ और बाद की घटनाएँ संकेत करती है कि अली गौहर के मामले ने पलवल वार्ताओ को मूल विषय की ओर मोडा अर्थात जाट–वजीर सम्बन्धो की ओर यह भी संकेत दिया कि उनके प्रमुख मतभेदो को निपटारा कर लिया गया था।इसके एक पहले संकेत के रुप में सूरजमल ने अली गौहर को कोई भी सहायता करने के लिए कदम नहीं उठाया। इमाद ने पहले इसी की आशंका थी। यह विश्वास किया जाता है कि बाद में उसने शहजादे के किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए सहायता देने से बिल्कुल मना कर दिया।तारीख–ए–आलमगीर सानी ने इस सम्बन्ध में एक ऐसी घटना का उल्लेख किया है, जिस पर अभी तक किसी का ध्यान नहीं गया था। यह घटना हमें बताती है कि बिहार और बंगाल को अधीन करने की अली गौहर की किसी भी योजना को विफल करने के लिए इमाद ने एक अन्य शहजादे हिदायत बख्श को विहार का सूबेदार बना दिया और अली गौहर को बागी घोषित कर दिया। ऐसा करते समय यह कुटिल षडयंत्रकारी सूरजमल की 'विशाल फौज' पर ही पूरी तरह निर्भर था। उसकी योजना यह थी कि हिदायत बख्श पहले आगरा रवाना हो जाट–समर्थन ले और फिर बिहार के लिए प्रस्थान करे।परंतु इसी बीच मार्च में सूरजमल के जयपुर रवाना होने की खबर आई।इससे वजीर निराश हुआ।उसने क्या सोचा था और क्या हो गया।'दरबारी इतिहासकार ने टिप्पणी की है।

हमारे उद्देश्य के लिए उपरोक्त योजना उतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं, जितनी कि वह फरवरी–मार्च, 1759 में जाट–वजीर सम्बन्धों पर प्रकाश डालती है। यह दर्शाती है कि यद्यपि वजीर ने मराठों का साथ नही छोडा था फिर भी वह जाट–शक्ति पर कितना निर्भर था। तथापि, दत्ताजी शिंदे के आक्रमण तेवरों ने उसे जाट राजा के और अधिक निकट कर दिया।एक वर्ष बाद 9 जनवरी, 1760 ई. को या उससे पूर्व यह प्रक्रिया चरम परिणति पर पहुंच गई।जब मराठा–गठबंधन से मोहभंग होने के बाद इमाद अब्दाली के भय से सुरक्षा हेतु जाट दरबार में पहुंचा।उसने अपने

परिवार और सामान को पहले ही वहॉ भेज दिया था।कैसी बिडंवना है।जैसाकि बैंदेल ने लिखा है, इमाद अब उसी सूरजमल के किलो के सामने गिडगिडा रहा था, जिन्हें नष्ट करने के लिए कुछ समय पूर्व उसने सम्पूर्ण हिंदुस्तान को हथियार बंद कर दिया था।' सूरजमल ने वजीर की प्रतिष्ठा के अपुरुप उपयुक्त तमाम आदर और ध्यान दर्शाया और उसे भरतपुर के अपने सबसे अच्छे महल में रखा।राजनीतिक जरुरतों और उसकी विशिष्ट उदारता ने ही शाही वजीर को संरक्षण देने में मार्ग दर्शन किया। इससे उसकी छवि और उज्ज्वल हुई। तथापि, वजीर होने के साथ एक कुख्यात राजहंता भी था। ऐसे व्यक्ति को संरक्षण देने के कार्य ने उसके विरोधियों को एकजुट होने के लिए एक और अतिरिक्त कारण दे दिया। वजीर–जाट गठबंधन से शाहआलम अपने राजनीतिक भविष्य के प्रति चिंतित हो उठा। इमाद उसका कट्टर शत्रु था और सूरजमल इधर उसका साथ दे रहा था। उसे संदेह था कि कहीं इमाद सूरजमल की सहायता से तख्त के लिए किसी और को न खडा कर दे (स्पष्टतया उसने 30 नवम्बर, 1759 को इमाद द्वारा शाहजहाँ द्वितीय को राजा के पद पर प्रतिष्ठित किए जाने के बारे में नहीं सुना था) अतः उसने अब्दाली से दिल्ली का ताज देने की प्रार्थना की।[95]

सूरजमल और स्थायी सरकार के लिए प्रयत्न

पानीपत का तृतीय युद्ध 1761 ई. जो कोई उल्लेखनीय फैसला नहीं कर पाया। मराठा–शक्ति को निस्संदेह, इसमें जबरदस्त धक्का लगा था, किंतु उनकी क्षति न तो स्थायी थी और न अपूरणीय। इसी प्रकार अहमदशाह अब्दाली भी विजेता होने के बावजूद कोई स्थायी आर्थिक लाभ प्राप्त नही कर सका। यही नहीं, शीघ्र ही उसने पंजाब में दुर्दम्य सिक्खों के आगे बढ़ते–बढ़ाव को रोकने में निरंतर बढ़ती कठिनाईयों को भी अनुभव किया। दूसरी ओर, उसके भारतीय सहयोगियों को अब मराठों के स्थान पर शक्तिशाली जाटों का सामना करना था। जहां तक मुगल सल्तनत का प्रश्न था पानीपत का युद्ध उसके भयावह रोगों के लिए कोई रामबाण औषधि भी सिद्ध नही हुआ था। इसके विपरीत अफगान–मराठा प्रतिस्पर्धा से तो पूरा ''मुगल राजतंत्र ही दाँव पर लगकर उलट गया था।'' शाकिर ने अफसोस करते हुए कहा कि ''सल्तनत चारों ओर शत्रुओं से घिर गई है।''[96] जो कुछ थोडा–बहुत बच गया था, उसे हथियाने के लिए वे दीवानगी की हद तक छीना–झपटी करते हुए निजी प्रभुता की आकांक्षा कर रहे थे। शाही राजधानी बिना शहंशाह और वजीर के थी, जो परस्पर तलवारें भाँज रहे थे। मीर बख्शी, जिसने सारे अधिकार हथिया लिए थे, काफी शक्तिशाली था, परंतु वह अपने घोषित ताजदार को सिंहासन पर बैठाने के लिए 'कोई बलिदान करने या खतरा उठाने' के लिए तैयार नही था। विडंवना तो यह थी कि स्वयं मुगल शहंशाह भयभीत था कि कहीं वह मीर बख्शी के हाथों मे पडने के लिए असहाय न कर दिया जाए। जो शाही मुगलों के परम्परागत शत्रु विजयोन्मत्त अफगानों का नेतृत्व कर रहा था। इसके साथ ही रुहेला तानाशाह ने अपनी ताकत को बढ़ाने अपना एक स्वतंत्र विशाल राज्य बनाने तथा अपने रिश्तेदारों और पिट्ठुओं को संगठित करने, उनको ऊँचे ओहदों पर बैठाने के लिए सरकार में अपनी सर्वश्रेष्ठ स्थिति का दुरुपयोग किया।[97]

जब इस नीति को एक–दूसरे क्षेत्र में इसी तरह के प्रयत्नों का सामना करना पडा तो एक भयानक संघर्ष अनिवार्य था। पानीपत का उत्तरार्द्ध–काल जाट शक्ति का स्वर्णिम काल था। अपनी 'अवर्णनीय बुद्धिमत्ता' शानदार राजनीतिक गांभीर्य और अतुलनीय कूटनीतिक संसाधन क्षमता से सूरजमल ने उन तूफानी दिनों मे अपना रास्ता यह सुनिश्चित करने के लिए बनाया था चारों ओर व्याप्त हास के बीच भी उसकी समृद्धि में निरंतर वृद्धि और उसकी सत्ता में अवाध बढोतरी रहे। इस समय तक वह समूचे उपमहाद्वीप में सबसे शक्तिशाली और समृद्ध शासक बन गया था।[98] नजीब और उसके बीच दुश्मनी तो पहले ही से थी जो परिवर्तित होती परिस्थितियों में अब सामने आ गई। आने वाले वर्षों में इनकी प्रतिद्वंद्विता दिल्ली के इतिहास का एक केन्द्रीय विषय बन गई। हिन्दुस्तान से नियमित रुप से नजारने की अदायगी तथा पंजाब पर अपने पूर्ण वर्चस्व को सुनिश्चित करने के लिए अहमदशाह अब्दाली मराठों और सूरजमल से कोई समझौता कर लेना चाहता था। इसी उद्देश्य से वह सभी राजाओं के बीच सहमति से उत्पन्न शांति तथा दिल्ली में नियमित और सहजता से कार्य करने वाली एक सरकार की स्थापना करके जाना चाहता था। इसलिए उसने तख्त पर

शहंशाह के रूप में आलमशाह को स्वीकार किया और इमाद को वजीर तथा नजीब को मीर बख्शी तैनात किया। स्वदेश रवाना होने से पूर्व उसने अपने राजदूत याकूब अली खाँ को निर्देश दिया कि वह मराठों से शांति–समझौते को अंतिम रूप दे और उस समय सूरजमल के एक पेंशनयाफ्ता के रूप में रह रहे इमाद के लिए वजारत की खिलअत और कलमदान लेकर जाए। अब्दाली ने इमाद को भी लिखा कि वह आए और उसकी ओर से स्वयं को सर्वाधिकारी घोषित करता हुआ दिल्ली शहर में प्रवेश करें।[99]

याकूब अली खाँ और पेशवा के वकील बापू जी महादेव ने 9 अप्रैल, 1761ई. को दिल्ली से मथुरा के लिए प्रस्थान किया जहां सूरजमल और इमाद पहले से ही पहुंच चुके थे। सूरजमल ने अफगान दूत को 19 अप्रैल 1761ई. को उपस्थित होने की अनुमति दी। इमाद ने कलमदान और खिलअत प्राप्त किए। सूरजमल इमाद, याकूब अली, बापूजी और गंगाधर तांतिया ने आपस में विचार–विमर्श किया। वहाँ 'उपस्थितजन' विशेषकर इमाद, तात्या और सूरजमल ने याकूब अली की पेशवा से भेंट के लिए प्रस्थान करने से हतोत्साहित किया। उन्होंने कहा कि वहाँ जाने की कोई आवश्यकता नही है और यहीं बैठकर सारी बातें तय की जा सकती हैं। उत्तराधिकारी के तथा जवान बख्त, नजीब, शुजा और रुहेला के वकील भी वहाँ पहुंच गए।[100] इस, तरह देश मे शान्ति का प्रवेश कराने और सामान्य प्रशासन की पुनःस्थापना के उद्देश्य से भारत की महत्त्वपूर्ण ताकतों का भरतपुर राज्य (मथुरा) में सम्मेलन शुरू हुआ।

यह सम्मेलन दो माह तक चला,[101] परंतु जैसा कि पूर्वानुमान था, अंततः वह निष्फल रहा। सामान्य स्थिति बहाल करने के लिए पारस्परिक मित्रता और सदभावना की सबसे पहले जरुरत थी। किंतु तत्कालीन प्रतिष्ठितजन में बस इसी का अभाव था। उनके पारस्परिक सम्बन्धों में ईर्ष्या और भीषण राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता का बोलबाला था। इसके साथ ही व्यक्तिगत पूर्वाग्रह थे, जिन्होंने वातावरण को और भी दूषित बना दिया था। एक ओर, नजीब तथा शाहआलम में और दूसरी ओर सूरजमल तथा इमाद में कोई स्नेह भावना नही रह गई थी। जब वजारत का सवाल उठा तो शुजा का जाट राजा से, जो इमाद की ताकत था, नाराज होना स्वाभाविक था, और यदि मराठा खरीतों पर विश्वास किया जाए तो इमाद के लिए वजारत हासिल करने में सूरजमल ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इसके अलावा यदि रुहेला सरदार जवान बख्त, जीनतमहल, शुजा और अन्य लोग इमाद–उल–मुल्क की वजारत से नफरत करते थे तो दूसरी ओर ऐसे भी लोग थे, जो नजीब से ईर्ष्या करते थे और राजधानी में उसके बढते प्रभाव को पसंद नही करते थे।

मथुरा शांति–सम्मेलन की असफलता के लिए जदुनाथ सरकार ने सूरजमल के तथाकथित षडयंत्रकारी मंसूबों को जिम्मेदार ठहराया है। उनके अनुसार ''सूरजमल का इरादा सल्तनत की वास्तविक सरकार पर काबिज होना था और बादशाह के नाम पर रुहेलो, वंगश और शुजा से पड़ोसी प्रदेशो को छीनना, परदे के पीछे रहते हुए उन्हें अपने पास रखना था।'' इससे अवध और अफगानी दूत नाराज हो गए।

''इसका स्वभाविक परिणाम हुआ कि समझौता वार्ताएँ टूट गई''[102]

पानीपत में मराठों की पराजय के पश्चात अब्दाली के विजेता साथियो की सेनाओं ने दोआब के अपने कब्जे वाले क्षेत्रों को बढाने के लिए पहले–पहल मौके से ही लाभ उठा लिया था। परंतु इस विजय का पूरा लाभ दिलाए बिना अब्दाली की वापसी और मराठों के प्रति शाहआलम के झुकाव, जो शायद इस बोध से जन्मा था कि मराठे अभी भी शक्तिशाली हैं, वे उपरोक्त क्षेत्र अपहारकों को कब्जे बनाए रखने सम्बन्धी अपने आचरण पर पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित किया था। नजीब और शुजा ने मल्हार राव होल्कर को अपने इस निर्णय से सूचित करना उचित समझा कि वे अपने द्वारा कब्जे में ली गई भूमि को छोड देगें वशर्ते उनका प्रभार लेने के लिए वह अपने अधिकारी भेजे। संभवतः इन सरदारों की बातों पर विश्वास न करते हुए होल्कर ने अपने दीवान गंगाधर को अंतर्वेदी में महलों की पुनःस्थापना में सहानुभूति और शक्तिशाली जाट राजा का समर्थन प्राप्त करने के लिए भेजा।[103]

गंगाधर को बजीर इमाद–उल–मुल्क से काशी और प्रयाग के पवित्र स्थलों की सनदें भी लेनी थी। तथापि, तांतिया के मिशन, सूरजमल के साथ उसके निरंतर बने रहने और दोआब में कोल की ओर उनके संयुक्त कूच तथा मराठा सम्मेलन के दौरान जाट राजा से पेशवा के पत्राचार ने शायद नजीब, शुजा और अन्य लोगों को चिढा दिया और साथ ही उन्हें मराठा दोआब को खाली न करने का एक बहाना भी दे दिया।

उपरोक्त परिपेक्ष्य में देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिन दूरस्थ इलाकों के लिए सूरजमल की कुटिल योजनाएँ कहा गया है वे वास्तव में सम्बन्धित वकीलों द्वारा मराठों को जमीन न देने का एक बहाना था। या ज्यादा–से–ज्यादा सूरजमल के रुख के प्रति उनका (वकीलों) संदेह था। ऐसा भी नही कि सूरजमल महत्वाकांक्षी नहीं था।

लेकिन बापू महादेव हिंगने के खरीते से स्पष्ट होता है कि इमाद–उल–मुल्क, अपने संरक्षक के परोक्ष समर्थन से, एक समय किसी और को सिंहासन पर बैठाने का भी विचार कर रहा था। अली मुहम्मद खाँ तो आगरा पर जाट कब्जे को वहाँ झूठे दावेदार को, जिसे 1753ई. [104] में सफदाजंग ने सिंहासन पर बैठाया था, सिंहासन रुढ करने की इमाद–उल–मुल्क की योजना ही बताता है। स्पष्टतः इमाद जानता था कि उसकी वजारत शहंशाह को मंजूर नहीं होगी जो, यदि एक मराठी खरीते पर विश्वास किया जाए तो, अपने कट्टर दुश्मन (इमाद) को 'खत्म कर देना' चाहता था। अतः छल–प्रपंच में कुशल इमाद एक नए शहंशाह को सिंहासन पर बैठाना चाहता था। जहाँ तक शाहआलम का प्रश्न है, उसे सदा से इस बात का संदेह रहा था और इमाद का प्रतिरोध करने के लिए ही उसने नजीब को अपने निकट होने का प्रलोभन दिया।

बताया गया है कि इमाद ने अब्दाली के दूत याकूब अली से इस योजना की बात छोडकर इस सम्बन्ध में उसकी सहायता चाही थी। परंतु उसने स्पष्ट तौर पर उसे बता दिया कि उसे खिलअत सौंपने के बाद उसका काम खत्म हो गया है और शाह के हुक्म के बिना वह अपनी मरजी से कुछ नहीं कर सकता। याकूब ने अंत में कहा, ''तुम (इमाद) जो भी ठीक समझो करो। किंतु अपनी ताकत के बल पर ही कर सकते हो।[105]

परंतु इमाद की अपनी तो कोई ताकत थी ही नहीं। यदि किसी पर मुख्य रुप से निर्भर रह सकता था तो वह सूरजमल की सहायता पर, और यदा–कदा मराठों और रुहेलों पर इनमें से अंतिम दो तो शाहआलम की बादशाहत के प्रति इमाद की नफरत में भागीदार नही थे, यद्यपि वे आमतौर पर वजारत के उसके दावे का समर्थन करते थे। जहाँ तक सूरजमल का प्रश्न है, उसकी उसमें (इमाद की वजारत में) ही ज्यादा रुचि थी। अब जबकि उसके आश्रित को पानीपत के विजेता जैसे व्यक्ति की सहज स्वीकृति प्राप्त हो गई थी। तब वह इमाद के वास्तविक वजीर बन जाने पर उसके माध्यम से मुगल–शासन पर वर्चस्व स्थापित करने की कल्पना कर रहा था और इसके साथ–साथ अपने अभियानों को कानूनी मान्यता भी दिलाना चाहता था।[106] परंतु घृणा के पात्र राजहंता के साथ उसके मेल–मिलाप ने शाहआलम और जीनतमहल को ठीक ही नाराज कर दिया था। अभी कुछ ही समय पूर्व ही तो शाहआलम ने परोक्ष रुप से और राजमाता ने सीधे–सीधे दुर्रानी को जाट राजा के विरुद्ध कुच करने के लिए उकसाया था। इसलिए वह (जाट राजा) शाहआलम से नाराज भी था। परंतु साथ ही यह पता नहीं चलता कि चतुर राजा एक प्रतिस्पर्धी शहंशाह को तख्तनशीन करने की बदनामी लेने के लिए तैयार था।

दूसरी तरफ इमाद ने अपने हितों की पूर्ति के लिए पहले भी शहंशाह को हटाना सुविधाजनक समझा था और अब वह पुनः ऐसा करने के लिए उत्सुक था। परंतु यह तथ्य कि जाट राजा ही उसकी मुख्य शक्ति था, अतः इमाद की चाल के पीछे उसकी सहज सहमति है, यह समझ गया, जबकि वास्तविकता यह नहीं थी। आगरा पर कब्जा कर लिया गया था, परंतु न तो उस समय या बाद में किसी को तख्त पर बैठाया गया था। यह प्रतीत होता है कि सूरजमल की तटस्थता ने अंततः उसके आश्रित (इमाद) को निराश कर दिया। बापू महादेव हिंगने से हमें यह पता चलता है कि मध्य जून, 1761ई. तक दोनों शाहआलम की बादशाहत को स्वीकार कर चुके थे और वे उसे मित्र बनाने तक का भी विचार कर रहे थे। जहाँ तक इमाद की वजारत का प्रश्न है, सूरजमल की निश्चय ही उसमें दिलचस्पी थी। परंतु नजीब ने दिल्ली में वास्तविक सरकार पर दृढतापूर्वक अधिकार जमा लिया था एवं किसी और को बर्दाश्त करने का उसका इरादा भी नहीं था। इन परिस्थितियों में मनोनीत वजीर के पद पर बैठाने के किसी भी प्रयत्न का अर्थ दिल्ली पर पूर्ण आक्रमण ही होता। इसे सूरजमल ने बुद्धिमत्तापूर्वक टाल दिया। नजीब ने जब यह कहा, तब उसने यह अंदाज तो लगा लिया था कि यदि उसने पहले राजधानी पर अधिकार कर लिया तो दूरदर्शी तथा स्वभाव से धैर्यवान सूरजमल उसे वहाँ से निकालेगा नहीं। अंत में याकूब अली मथुरा से दिल्ली लौट गया[107] और रुहेला भी वापस चले गए। जैसा कि चतुर रुहेला ने पहले ही भविष्यवाणी की थी। उन्होने नजीब को खदेड–बाहर करने का कोई प्रयत्न नही किया।

इस तरह खींच–तान वाले लंबे विचार–विमर्श के बाद मथुरा–सम्मेलन समाप्त हो गया। इस सम्मेलन का एक उद्देश्य राजधानी में एक–दूसरे की सहमति से एक नियमित प्रशासन की स्थापना करना था। तथापि, जब तक इमाद और नजीब का विवाद खिंचता रहा तब तक इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सका। नजीब की भूमिका की उपेक्षा करते हुए जे.एन. सरकार तर्क देते है कि ये वार्ताएँ मुख्यतः इसलिए असफल हुई,

क्योंकि सूरजमल और इमाद, नजीब और अब्दाली से स्थायी शान्ति नहीं चाहते थे और नजीब को अलग करके सल्तनत में अपना अकेला अधिकार स्थापित करना चाहते थे। लेकिन यह दोंनो ओर से काट करता है। तुलनात्मक रुप से एकमात्र अपने पास अधिकार रखने का दोष सूरजमल और इमाद की अपेक्षा नजीब पर ज्यादा लागू होता है। यहाँ यह याद कर लेना चाहिए कि मथुरा–वार्ताएँ इसलिए हुई थी कि अब्दाली की नजीब को मीरबख्शी और इमाद को बजीर बनाकर मुगल सरकार चलाने की योजना पर अमल किया जा सके। परंतु जब इमाद को वजारत की खिलअत अभी मिलनी ही थी कि नजीब ने मनोनीत वजीर और शाहआलम के बीच मौजूद झगडे को हवा देकर सारे अधिकार हथियाने की चाल चल दी थी, और इस तरह इमाद से आगे निकल गया था। सूरजमल और उसके आश्रित के खिलाफ फैसला जब विश्वास योग्य प्रतीत होता है जब नजीब द्वारा दिल्ली में वजीर के रुप में इमाद को उसका हक देने के बावजूद वे अपनी दुश्मनी और विरोध बरकरार रखते। परंतु ऐसे कोई प्रमाण नहीं मिलते कि जिनसे यह सिद्ध किया जा सके उसने वजीर के साथ कभी अनुकूलन बनने या उसके साथ मैत्रीपूर्ण ढंग से रहने की इच्छा व्यक्त की हो। यदि ऐसा न होता तो अपना पद हासिल करने के लिए इमाद और लोंगो से सहायता नहीं मॉगता। उस पर और उसके संरक्षक पर यह आरोप लगाया है कि वे नजीब को खत्म करना चाहते थे और दिल्ली में सारी सत्ता हथियाना चाहते थें, परंतु नजीब ने तो दिल्ली में एक बार सारी सत्ता हथिया लेने के बाद इमाद को प्रायः निष्कासित ही कर दिया था। नजीब की इस भारी पकड ने और उसके साथ इमाद के प्रति उसकी सतत शत्रुता ने कुछ समकालीन लोंगो को इमाद की वजारत की प्रभावशीलता ही नहीं, बल्कि स्वयं वजारत मिलने के प्रति शंकालू बना दिया था।[108]

इमाद के लिए तो वस्तुतः दरवाजे बंद ही हो गये थे। इन परिस्थितियों में तो केवल हथियार ही इमाद को उसका कानूननी हक इिला सकते थे। तथापि, इमाद भले ही निराश हुआ हो, लेकिन यदि सूरजमल तथा अन्य लोंगो ने संघर्ष की नौबत को टाला तो इसके लिए निश्चय ही उसकी निंदा नहीं की जा सकती। इसके अतिरिक्त, यह कहना भी एक पक्षीय होगा कि सूरजमल ने नजीब के प्रति दुराग्रही तथा अनम्य रुख अपना रखा था। हमारे पास समकालीन प्रमाण है कि सूरजमल के प्रति अपनी दुर्भावना को नजीब दिन–रात पोषित करता रहता था और उसे उखाड़ फेंकने की योजनाओं पर सदा विचारमग्न रहता था, जबकि ऊपर से यही दिखता था कि वह सूरजमल से समझौता करने का इच्छुक है। इसके अतिरिक्त यह भी नही भूलना चाहिए कि केवल सूरजमल ही रुहेला सरदार का विरोधी नहीं था। मराठे, हफीज रहमत तथा अन्य लोग भी उसके विरुद्ध थे और जैसा कि पहले बताया गया है, वे सब इमाद की वजारत के समर्थक थे।

और यदि हम व्यक्तिगत जिम्मेदारी निर्धारित करें तो साम्राज्य में पारस्परिक सहमति वाले नियमित प्रशासन की स्थापना के प्रयत्नों में पलीता लगाने की जिम्मेदारी औरों की अपेक्षा नजीब पर ज्यादा है। सरकार पर अपने निर्वाध नियंत्रण के द्वारा रुहेला तानाशाह ने मथुरा की वार्ताओं की नियति की पहले ही पेशबंदी कर दी थी। जहाँ तक सूरजमल का प्रश्न है, निश्चय ही वजीर के माध्यम से सल्तनत पर आधिपत्य जमाने की उनकी महत्वाकांक्षा थी, और नजीब की तानाशाही के

सामने समर्पण नहीं करना चाहता था। उक्त सम्मेलन की असफलता में छोटी शक्तियों का भी हाथ था। इस सारे मामले का सार यह है कि व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों और प्रतिस्पर्धी महत्वाकांक्षाओं ने सारी शक्तियों के सोच–विचार को दूषित कर दिया था।

एक व्यापक दृष्टिकोण से प्रश्नों को देखने के लिए बहुत कम लोग क्षुद्र स्वार्थों से ऊपर उठ सकते हैं। अतः यदि सौजन्यता का दिखावा भी बनाए रखा जाए तो बड़ी और नाजुक समस्याएँ ऐसे वातावरण में हल नहीं की जा सकती थीं। इमाद को पदासीन करने के प्रश्न पर सूरजमल ने लड़ाई नहीं थोपी, परंतु इस मामले में नजीब की नीतियों और व्यवहार ने उसे नाराज कर दिया और दोनों के मध्य झगड़ा और बढ़ गया।[109]

जो अब्दाली से धोखा खा जाने के बावजूद हमेशा की तरह सल्तनत की वजारत की इच्छा करता रहा था। इतने सूरजमल और इमाद के विरुद्ध नजीव और शुजा को एक–दूसरे के निकट ला दिया। तथापि रुहेलों ने सूरजमल के साथ अपने सम्पर्क बनाए रखे। सरकार में नजीब की प्रभुता से सूरजमल इतना नाराज था कि मथुरा–सम्मेलन के बाद उसने (अगस्त, 1761 की शुरुआत से ही) शुजा को वजारत और इमाद को मीरबख्शी पद दिलाने के बारे में सोचना शुरु कर दिया। जाट राजा ने शाहआलम द्वितीय को स्पष्ट तौर पर इस आशय का एक सुझाव भी दिया। तथापि शहंशाह ने इमाद से कोई भी सम्बन्ध रखने से इन्कार कर दिया।

इसके बजाय उसने उसके संम्पूर्ण विनाश की इच्छा जाहिर की और कहा जाता है कि अपने घातक शत्रु को लौटाने पर जोर भी दिया। तथापि सूरजमल इसके लिए तैयार नहीं हुआ। इस धटना ने निश्चय ही दोनों शाहआलम और सूरजमल के बीच समझौते की संभावना को नष्ट कर दिया होगा और कड़वाहट वढ़ा दी होगी।[110]

सूरजमल और नजीबुद्दौला

एक ओर, जहाँ वजारत के भाग्य का फैसला अभी होना था, शहंशाह को राजधानी ले जाने के लिए एक योजना बनाई गई। स्वयं शक्तिहीन होने के कारण अपनी वास्तविक गद्दीनशीनी के लिए वह दूसरों पर निर्भर था। परंतु कोई भी अकेले उसकी सहायता के लिए तैयार नहीं था। इसके लिए सामूहिक प्रयास की आवश्यकता थी। दनकौर घाट में दो प्रमुख व्यक्तियों नजीब और सूरजमल की मुलाकात आंशिक रुप से इसी योजना का एक भाग थी। इस सम्बंध में पहल करते हुए नजीब ने सूरजमल से व्यक्तिगत मुलाकात की व्यवस्था करने के लिए दिग्गज मध्यस्थ नागरमल को सितम्बर, 1761ई. के मध्य में कुम्हेर भेजा। तीन सप्ताह बाद राजा दिलेर सिंह, जाट वकील रुपराम कटारी और मोहनसिंह के साथ जाट राजा से मिलने दिल्ली से दनकौर गया। वहाँ वे पाँच दिन रुके, जाट राजा से उन्होंने बातें की और राजधानी लौट आए। उसके अगले दिन वे शर्तें तय करने के लिए नजीब से मिले। इसके बाद नजीब ने दो दूत, राजा चेतराम और दिलेरसिंह को सूरजमल के पास उसके प्रति निष्ठा की शपथ लेते हुए कुरान की एक प्रति साक्षी के रुप में लेकर भेजा। उन्होंने निकट ही कहीं दोनो प्रमुखों के बीच भेंट की व्यवस्था करनी थी। तथापि, अपने पूर्व कार्यक्रमानुसार सूरजमल दोनों दूतो को साथ लेकर गोवर्धन मेले के लिए चला गया। फिर 24 अक्टूबर को राजा नागरमल, याकूब अली, अब्दुल अहमदखाँ तथा अन्य लोग नजीब से बात करने के बाद जाट राजा के पास अब्दाली को जो रकम भुगतान करनी थी उसकी व्यवस्था के लिए गए। अब्दाली ने धमकी दी थी कि यदि भारतीय राजा उसे नजराने की रकम का भुगतान नहीं करेंगे तो वह फिर से आक्रमण कर देगा। उन्हें सूरजमल को नजीब से दिल्ली में, एक पखवाडा बाद, अपनी निर्धारित हिसार यात्रा से लौटने के बाद मिलने के लिए मनाना भी था।[111]

नवम्बर, 1761ई. के अंत में किसी समय रुहेला सरदार और जाट राजा के बीच चिर–प्रतीक्षित मुलाकात जाट राजा के दनकौर घाट स्थित शिविर में हुई। दोंनो की सेनाएँ यमुना के दोंनो किनारों पर उतरीं। अपने सलाहकारों के सुझाव के बावजूद नजीब ने अपनी सेना को पीछे छोडकर केवल कुछ सेवकों के साथ एक छोटी सी नाव में नदी पार की। ''सूरजमल ने उसके प्रति 'हृदय की महान शुद्धता दर्शाई।''[112]

1761ई. में अब्दाली के हाथों मराठों की पराजय हुई, लेकिन अहमदशाह अब्दाली की भारत में स्थाई राज्य करने की कोई मंशा नही थी, ऐसी स्थिति में भारत के राजनीतिक रंगमंच पर रिक्तता की स्थिति उत्पन्न हो गई। उस खालीपन की स्थिति को भरने के लिए तत्कालीन विभिन्न राजनीतिक शक्तियों ने अपने–अपने भाग्य को आजमाने के प्रयास किए। इसी क्रम में दोआब, राजपूताना, बुंदेलखण्ड, मालवा और अन्य स्थानों में बडे जमींदार राजा और बेदखल हुए स्थानीय मुखिया सब एक साथ मराठों की कब्जोवाली जमीनों पर टूट पडे। अफगान जाट, राजपूत, बुंदेला और शुजा सभी इसी दौड में शामिल हो गए। सबसे पहले लाभ उठाने वाले विजयी रुहेले थे।

शक्तिशाली सूरजमल भी कुछ कम महत्वाकांक्षी नहीं था और चारों तरफ अधिकार के लिए पागलपन की जो भगदड मची थी, उसका वह मात्र दर्शक नही बना रह सकता था। जैसा कि वैंदेल ने लिखा है, ''स्थिति को अपने पक्ष में करने के लिए जाट रुहेलों से न तो कम उत्सुक थे और न ज्यादा।''[113] यदि सारे समय नही तो कम–से–कम पानीपत के बाद कुछ समय निश्चय ही सूरजमल इमाद के माध्यम से दिल्ली पर नियंत्रण करने और अपने कट्टर दुश्मन नजीब को उखाड फेंकने के लिए उत्सुक था। नजीब से सूरजमल को बेचैनी और उतनी ही बेचैनी नजीब को सूरजमल से भी होना स्वाभाविक था।[114] परिस्थितियों की बिडंबना से दूसरे बंगश अभियान में बाद में दिल्ली के गृहयुद्ध में वे पहली बार प्रतिपक्षों की ओर से एक–दूसरे के विरोधी के रुप में मिले थे। इसके बाद उनके आपसी सम्बन्ध बिगडते ही गए। जाहिर है कि सूरजमल 1757 ई. मे रूहेला सरदार की अत्यधिक नृशंस भूमिका (दुर्रानी आक्रमण के दौरान) को नही भूला था। फिर 1759 ई. में सूरजमल ने इसके खिलाफ दत्ताजी की सहायता के लिए (नजीव के विरूद्व) एक टुकडी भेजी थी, और पानीपत के दौरान उसने मराठों के प्रति सहानुभूति दर्शाई थी । पानीपत के बाद नजीव ने दुर्रानी के हथियारो को एक बार फिर जाट पर आजमाने की कोशिश की थी। किंतु दुर्रानी के अचानक लौट जाने से उसकी सारी योजना धरी–की–धरी रह गई। इन सब बातों को देखते हुए कोई आश्चर्य नही कि यदि सूरजमल ने दिल्ली मे रूहेलों की प्रभुता का दृढ़ होना खतरनाक समझा हो।

यह कहा गया है कि सूरजमल पूरे दो आव को हथियाना चाहता था। पूरे दो आव पर कब्जा करने के प्रयत्न से नजीब, हफीज रहमत, डुडे खॉ, अहमद बंगश, शुजा, मराठों, बुंदेलो और अन्य छुट भैये सरदारों से एक साथ खतरनाक लड़ाई की स्थिति पैदा हो जाती। एक वेहद व्यावहारिक राजनीतिज्ञ होने के नाते यह संभव नही लगता कि अपनी तमाम श्रेष्ठ ताकत के बावजूद सूरजमल अपने विरूद्व इतने सारे दुश्मनों से लडना पसन्द करता, विशेषतया तब जब उसकी पीठ पीछे माधोसिंह से उसके सम्बन्ध निश्चय ही तनावपूर्ण हो गए थे और माधोसिंह भी नजीव के साथ मिल गया था।[115]

तथापि सूरजमल यमुना पार के अपने क्षेत्रों को फिर से प्राप्त करना चाहता था और इस नदी के दोनों किनारों से लेकर रावी तक के जाट नस्ली क्षेत्रों तक उसका विस्तार करना चाहता था।

यह मानने के लिए आधार है कि इन इलाकों के उसके जाट भाई रूहेला आधिपत्य से नाराज थे और दो आव तथा हरियाणा के लोग कम से कम भरतपुर के साथ सम्बन्ध जोडना चाहते थे। अपनी विस्तारवादी गतिविधियो के लिए सूरजमल को इससे भी प्रेरणा मिली। तथापि, यह तो सच है कि नजीब ने मेरठ और सिकंदराबाद के आस–पास के क्षेत्रों पर अपना अधिकार जमा लिया था, जिन पर पहले सूरजमल का निंयत्रण था। इन नस्ली सम्बन्धों के अलावा दिल्ली के दक्षिण और पश्चिम के क्षेत्र मे एक और कारण से सूरजमल की दिलचस्पी थी। वह मेवात तथा हरियाणा के कुछ हिस्सों को मिलाकर एक प्रथक राज्य अपने असंतुष्ट और अधीर बेटे जवाहरसिंह को देना चाहता था। पिछले 10 वर्षो से जवाहरसिंह मेवात को दवाने मे व्यस्त था। इसके अलावा भौगोलिक

राजनीति भी उत्तर की ओर विस्तार निर्देशित कर रही थी। दक्षिण में और आगे जाने मे उसकी रूचि नही थी, पश्चिम में राजपूतो ने रास्ता रोक रखा था और पूर्व मे शुजा और वंगश तथा रूहेला सरदारो की रूकावट थी। अतः वह केवल उत्तर की ओर ही आसानी से आगे बढ़ सकता था।

उत्तर में उसके राज्य के निकट ही विलोच जमीदारों के अनेक विद्रोही शिविर थे। इनमें रोहतक, महेन्द्रगढ और गुड़गॉव जिलो के कुछ भाग शामिल थे, जो हरियाणा का हृदयस्थल है तथा जहॉ आज भी जाट सबसे बडी संख्या में है। बलात कब्जा करके विलोची इस क्षेत्र के अनेक स्थानो के स्वामी बन बैठे थे।[116]

विस्तारवादी होने के नाते जाटों की भी विलोचों से कैसे बन सकती थी? इसके अलावा विलोच सरदार जाट राज्य के दुश्मनों का सत्कार करते थे और उसमें अव्यवस्था अराजकता फैलाने वाले तत्वों को आश्रय देते थे। फतेहसिंह बडगूजर जिसे फर्रुखनगर के सरदार कामगर खॉं ने 1755 ई. में आश्रय दिया था। और मेव लुटेरा सनुलबा जिसे मुसल्बी खॉं और असदुल्ला खॉं ने संरक्षण दिया हुआ था, इस तथ्य की पुष्टि के लिए पर्याप्त उदाहरण हैं। सन् 1760 ई. के बाद नजीब ने जाटों के विरुद्ध इन बिलोचियों को अपना आशीर्वाद और संरक्षण दिया। वह गठबंधन स्वयं बिलौचियों ने तो चाहा ही था, स्वयं नजीब भी ऐसा ही चाहता था। उसका खैरख्वाह अहमद शाह चला गया था और उसके अपने संसाधन कमजोर हो गए थे, नजीब स्वयं को अपने विरोधी सूरजमल से निपटने में असमर्थ पा रहा था, जो ''हर मामले में उससे श्रेष्ठ था।'' इन परिस्थितियों में कुटिल रुहेला सरदार ने माधोंसिंह तथा विलोच सरदारों से एक गुप्त समझौता कर लिया और इस तरह सूरजमल के चारो ओर कूटनीति का एक जाल बिछाने का प्रयत्न किया। विलोचियों को निर्भीक बनाने के पीछे प्रतीत होता है कि उसका उद्देश्य एक तीर से दो शिकार करने का था। एक तो जाट राजा का ध्यान बँटा रहे और दूसरे अवरोध में खडा कर अन्य क्षेत्र के जाटों से मेल के उसके प्रयत्नों को बाधित कर दे। इस नीति के साथ ही मुख्य दो आब के विवादग्रस्त क्षेत्रों में उसके (नजीब) कब्जे में अनिष्टसूचक घटनाओं के बीज छिपे थे। उन्होंने सूरजमल से एक खतरनाक संघर्ष की नौबत ला दी।[117]

अब हम सूरजमल के शेष जीवन में उसकी सैनिक गतिविधियों पर विचार करें। सन् 1761ई. के शुरुआती महीनों में चुप रहने के बाद मई के मध्य में वह आगरा के शाही किले पर कब्जा करने निकला। स्थानीय दुर्गरक्षकों को गत सात वर्षो से वतन नहीं मिला था और वह शाही भंडार से मूल्यवान वर्तन बेचकर अपनी जरुरतें पूरी कर रहे थे। वे इनते अधिक कष्ट में थे कि प्रतीत होता है कि वे किसी भी ऊँचीबोली देने वाले को किले की चाबियाँ सौंप सकते थे। पेशवा के एक पत्र से हमें ज्ञात होता है कि 1759 ई. आसपास किले का सेनापति तीन लाख रुपये नगद और दस से बीस हजार कीमत की जागीर के एवज में मराठों को किला सौंपने को तैयार था। यद्यपि सूरजमल बुरा न मान जाए, इसलिए हिचकिचाहट के साथ किले को लेना टाल दिया गया।[118]

उपयुक्त अवसर जानकर अब सूरजमल ने (50,000 घोंडो और एक लाख पैदल सैनिकों की अविश्वसनीय संख्यावली) बलराम के अधीन एक विशाल सेना भेजी और स्वयं मथुरा में डटा रहा। शहर और आस–पास के क्षेत्रों पर आसानी से कब्जा कर लिया गया। यद्यपि, किले पर जाटों का

पहला हमला दुर्गरक्षकों ने विफल कर दिया। इसके बाद जाटों ने नियमित घेराबंदी शुरु कर दी परंतु हमले द्वारा अभेद किले पर कब्जा करना कठिन काम था। किले की दीवारों के पास बने मकानों को लूटकर जाटों ने वहाँ रह रहे दुर्गरक्षकों के आश्रितों को बंदी बना लिया। अंत में एक माह से भी कम की घेराबंदी के बाद किले के सेनापति ने अपने गुजारे के लिए एक लाख रुपये नगद और पाँच गाँव मिलने का आश्वासन पाकर किले के द्वार खोल दिए। अनुमान है कि जाटों ने वहाँ 50 लाख रुपये हथियाए। तोपखाने, बारुद गोले, फर्नीचर व शाही तोपखाने की अन्य वस्तुएँ वहाँ से खिसका दी गई। उनमें से उत्तम वस्तुएँ डीग और भरतपुर पहॅचा दी गई। इसके पहले जाट इरादों की गुप्तचरों से सूचना पाकर नजीब ने शहजादे जबान बख्त के साथ बाहर निकलने और जाटों को रोकने की योजना बनाई थी। मुसब्बी खाँ और बहादुर खाँ विलोच भी कुछ हजार सैनिकों के साथ उससे आ मिले थे। तथापि, फौंजो और बारुदखाने में अपनी कमजोरी को जानकर उसने बुद्धिमानी से शत्रु की विशाल संख्यावाली फौंजो का सामना टाल दिया। इस तरह जाट महान मुगलों की प्रथम राजधानी आगरा का स्वामी बन गया।[119]

जब आगरा की घेरेबंदी जारी थी, तब एक जाट सेना यमुना के आस–पास के क्षेत्रों पर कब्जा करने के लिए भेजी गई। मथुरा सम्मेलन की समाप्ति के बाद सूरजमल स्वयं मथुरा से चला और जून, 1761 में यमुना पार कर कोल चला गया। वह वहाँ कुछ दिन ठहरा और उस क्षेत्र में अपने पुराने कब्जे वाले क्षेत्र पर उसने पुनः अधिकार कर लिया। अपनी छोटी सी सेना के साथ गंगाधर तांतिया भी जाट राजा के साथ गया और उसके साथ ही कोल में ठहरा रहा। पास के मराठा इलाकों को पुनः प्राप्त करने के लिए होल्कर का दीवान रुहेलों के विरुद्ध सूरजमल की सक्रिय सहायता के लिए समझौता करने की कोशिश कर रहा था। परन्तु प्रांरभ में कुछ सीमा तक अपना कूटनीतिक समर्थन देने के अलावा जिससे कुछ लाभ भी हुआ। सूरजमल ने इस सम्बन्ध में और कुछ नही किया।

संभवतः नजीब की कूटनीतिक चालों के प्रतिरोध के लिए सूरजमल समभाव रुहेलों की जो उससे दोस्ती करना चाह रहे थे, पेशकशों को मानने के लिए उत्सुक था। अतः अपने हितों की उपेक्षा कर जाट राजा मराठों के लिए रुहेलों से लडने वाला नही था। गंगाधर जब इंदौर लौटा तो जाट के व्यवहार से अवश्य हताश हुआ होगा। बाद में तत्कालीन प्रवृत्तियों के अनुरूप जाट राजा ने कई मराठा इलाकों पर भी हाथ डाला। तथापि यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि उसने राजा माधोंसिह और राजा विजय सिंह को संकेत किया था कि वे आगे बढकर मराठों से उज्जैन छीन लें, जहाँ वह बीच की मराठा चौकियों को नष्ट करता हुआ उनसे आ मिलेगा।

अक्टूबर, 1760ई. के लगभग हम जाट राजा को दनकौर मे पाते है, जहाँ वह शायद इस क्षेत्र की व्यवस्था में लगा हुआ था। इसी बीच उसकी फौजों ने यमुना के उस पार झज्झर तथा अन्य परगनों को हथिया लिया यह पूर्व में ही बताया गया है कि नजीब ने सूरजमल से समझौता–वार्ताएँ शुरु कर दी थीं। राजा दिलेर सिंह, रुपराम कटारी और मोहन सिंह दनकौर में जाट राजा के पास गए और 5 दिनों तक बातचीत करने के बाद 15 अक्टूबर 1761ई. को दिल्ली लौट आए। समझौते के अनुसार झाझर व हाल ही में हथियाए गए अन्य परगनों को वार्षिक नजराने

के एवज में सूरजमल को दे दिया गया, जिसके लिए राजा नागरमल ने जमानत दी। नजीब की ओर से राजा चेतराम और राजा दिलेर सिंह एक कुरान लेकर जिस पर नजीब ने जाट राजा के प्रति निष्ठा की कसम उठाई थी, सूरजमल के पास गए। बाद में नबम्वर 1761ई. में दनकौर घाट में जाट राजा में भेट की, जिसके विवरण पहले ही बताए जा चुके हैं।

जहाँ हम दिल्ली के शाह वलीउल्लाह द्वारा रुहेला सरदार को लिखे गए दो पत्रों पर विचार के लिए रुकेगें। इस पत्र में रुहेला सरदार ने वलीउल्लाह को जाटों के खिलाफ अपने जिहाद की तैयारियों की सूचना दी थी और जाट के प्रति अनुकूल रुख अपनाने वाले मुसलमानों के प्रति कैसी नीति अपनाई जाए इस पर उसकी सलाह माँगी गई थी। शाह वलीउल्लाह ने उसे लिखाः[120]

''जाटों पर जीत अल्लाह ने मुकम्मिल कर दी है। इसके बारे में आप कोई संदेह न करें। अल्लाह की मेहरबानी से जिस क्षण इस जाट तिलिस्म से सामना होगा, वह उसी तरह टूट जाएगा जैसा कि मराठों का (पानीपत की ओर संकेत) टूटा था।''

उसने नजीब को निराश न होने के लिए सांत्वना दी और कहा कि वह शत्रुओं के संख्याबल की श्रेष्ठता से अथवा मुस्लिमों के एक समूह की उनकी दोस्ती से भी आशंकित न हो क्योकि अंततः वे उससे (नजीब) लडने में समर्थ नही हो सकेगें। ''उनके हाथ नियंत्रण में रहेगें।'' अपने पत्र में शाह वलीउल्लाह ने नजीब को शत्रु की भाँति के दिखावे और छल–प्रपंच पर विश्वास न करने के लिए और न उन मुसलमानों की बात सुनने को कहा, जो उसे अभी आने वाले कई खतरों की दुहाई देकर अपने रास्ते से रोकने की कोशिश करेगें। उसे अपने कार्य में पूरा जोर लगा देने के लिए आह्वान करते हुए शाह वलीउल्लाह नजीब से पूछता है कि वह जाटों के विरुद्ध जेहाद के लिए ''कब निकल रहा है।'' इसकी उसे खबर दे ताकि वह तहे दिल से शुरु से लेकर ''उसकी जीत होने तक उसकी दुआ करता रहे।''[121]

नजीब ने अपने मार्गदर्शक और संरक्षक को एक मौखिक संदेश भेजकर दिल्ली के आस पास जाटों की प्रमुखता और उनके अडियलपन के सम्बन्ध में उठाये गए मुद्दों पर विस्तृत उत्तर चाहा। पहले के पत्र जैसे स्वर में उस महान विचारक ने नजीब को विश्वास दिलाया कि उसी तरह जिस तरह मराठे ही जड़ से उखाड़ दिए गए हैं उसने जाटों के विनाश का पूर्वाभास किया है और मुस्लिम विशेषतः रुहेला,जाटों के गाँवों और किलों को जीतकर उन पर कब्जा कर लेगें। जब अंतिम विजय तो सुनिश्चित है तो शत्रुओं के दमन का कार्य तत्काल शुरु किया जाना चाहिए। अपने पत्र के अंतिम भाग में शाह बलीउल्लाह दो बातों की चर्चा करता है। वह नजीब को याद दिलाता है कि लडाई में किस्मत बदलती रहती है, अतः वह किसी खराब खबर से निराश न हो। दूसरे वह उन्ही कतिपय हिंदू अधिकारीयों से सावधान रहने की चेतावनी देता है जो जाहिर तौर पर तो 'तुम्हारे और तुम्हारी सरकार के कर्मचारी है' परंतु गुप्त रुप से वे विरोधी जाटों से मिले है और वे जाटों का समूल विनाश नही चाहते। शाह वलीउल्लाह अंत मे चेतावनी देता है कि यदि नजीब ने उनकी पेशकशों पर ध्यान दिया तो (शत्रु प्रदेश पर) 'विजय में विलंब होगा।'[122]

इन पत्रों के विषय का सावधानीपूर्वक अवलोकन यह स्पष्ट करता है कि ये दोनों पत्र पानीपत के बाद (लगभग मध्य 1761 में) लिखे गए थे। ये मूल्यवान कागजात जाटों के प्रति

नजीब–उद–दौला की छलयुक्त नीति पर पर्याप्त प्रकाश यद्यपि ये पत्र जाटों के प्रति नजीब की चिंता, जो शाह वलीउल्लाह की चिंता के साथ घुली मिली थी, को प्रकट करते है, परन्तु उस सरदार की उनके प्रति भीषण विद्वेष को भी प्रकाशित करते है। विशेषकर एक पत्र जाटों के अतिक्रमण के प्रति उसके गुस्से को जाहिर करता है परंतु यह तथ्य एक सीमा के बाद नही खींचा जा सकता। हम जानते है कि नजीब ने जाट सरदार के विरुद्ध अब्दाली को भड़काया था और वह भी उस समय जब वह जाट सरदार अपनी राजधानी में चुपचाप बैठा हुआ था। यह प्रतीत होता है कि इन पत्रों में व्यक्त नजीब का दृष्टिकोण मूलतः जाटों के प्रति उसकी बुनियादी और पुरानी नीति से सम्बद्ध था। सूरजमल के विरुद्ध अपने जेहाद की तैयारियों की नजीब द्वारा शाह वलीउल्लाह को सूचना, जब शाह वलीउल्लाह की इस इच्छा के साथ कि वह जाट–अभियान पर रवाना हो वह उसे उसकी सूचना दे, कुल मिलाकर यह स्पष्ट होता है कि सूरजमल के विनाश के लिए नजीब तुला हुआ था। यह नही कि सूरजमल के मन में नजीब के प्रति शत्रुता का कोई भाव नही था या वह उससे चिंतित नही था। परंतु उसके मामले में हमारे पास ऐसा कोई ठोस और ठीक–ठीक समकालीन प्रमाण नही है कि वह भी इसी तरह की खतरनाक शत्रुता पाले हुआ था। बाद की कृतियों जैसे 'गुल–ए–रहमत'[123] में सूरजमल को दोष देने वाले कथन स्पष्टतः पक्षपातपूर्ण और अर्द्धसत्य पर आधारित हैं। शाह वलीउल्लाह का पत्र स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि यदि उसके पास संसाधन होते तो वह सूरजमल के विनाश के लिए पहला मौका मिलने पर ही कूद पड़ता। ऐसी नीति अपनाने से उसे जिस बात ने रोका वह स्पष्टतः श्रेष्ठ जाट शक्ति थी, जो नजीब की दृष्टि में मुस्लिमों की, निहितार्थ से समभाव रुहेलों और अन्य लोगों की, दोस्ती से और ज्यादा मजबूत हो गई थी। इस सन्दर्भ में देखने से यह कहना गलत न होगा कि जाटों के साथ समझौते के उसके प्रयत्न वास्तविक शांति पाने के लिए नही थे, बल्कि उसकी अपनी कमजोरी और इसके परिणामस्वरुप अंततः अपनी सफलता के प्रति उसके संदेह से जन्मे थे। वह केवल समय निकालने का और अपने बुरे इरादों को छिपाने का बहाना भर थे, जैसा कि सियर के लेखक ने निहितार्थ से स्वीकार भी किया है।[124]

अपने वृतांत के टूटे हुए सिरे को मुख्य सूत्र से जोडने के लिए अब हम आगे बढते हैं। सूरजमल के बाद जिन राज्यक्षेत्रों का अधिग्रहण किया उसकी समयावधि क्या थी इस बारे में यद्यपि, कोई स्पष्ट प्रमाण हमें प्राप्त नही है, किंतु अनुमानतः इसके बाद के दो वर्ष (1762 और 1763) सूरजमल के पास थी।[125]

जवाहर सिंह यमुना के पश्चिम में मेवात और हरियाणा में व्यस्त था जबकि नाहर सिंह नदी के पूर्व में दो आब में सक्रिय था। रेवाडी के ग्रामीण क्षेत्रों को अपने कब्जे में कर लेने के बाद जवाहर सिंह के नेतृत्व में जाटों ने सराय वसंत और संभल तक अपनी चौकियाँ स्थापित कर दी थी। उनके गॉव राजधानी से 12 मील (लगभग 20 कि.मी.) तक फैले हुए थे और उन पर जाटों का प्रशासन था। उधर दूसरी ओर जाटों ने धीरे–धीरे आज के बुलंदशहर जिले के अधिकांश भागों और गंगा तक मेरठ जिलों के भाग पर कब्जा कर लिया था। इसके पूर्व वे अलीगढ़ आगरा और एटा (जलेसर आदि जो पहले जाट राज्य के हिस्से थे)[126] जिलों पर कब्जा कर चुके थे।

वर्ष 1763ई. तक सूरजमल के नेतृत्व में जाट शक्ति गौरवपूर्ण शिखर पर पहुॅच गई थी, जो पहले या वाद में कभी नही पहुॅची। सूरजमल एक विशाल राज्य, अत्यधिक समृद्ध कोष और समकालीन भारत में सर्वाधिक अजेय और वीर योद्धा वाली सेनाओं का स्वामी था।[127] और ऐसी स्थिति में बंगाल के मीर कासिम ने यदि उससे सहायता की आशा की तो उसमें आश्चर्य क्या। परंतु चतुर जाट राजा अपने स्वभावगत संयम के अनुसार इतने दूरस्थ क्षेत्रों के मामले में स्वयं को नही उलझाना चाहता था। तथापि संभवतः अनुरोध किए जाने पर उसने शुजाउद्दौला की प्रच्छन्न धमकियों के विरुद्ध फर्रुखावाद के नबाव और अन्य अफगानों की सहायता के लिए 1763ई. के प्रांरभ में कृपाराम पुरोहित के नेतृत्व में 2000 सैनिकों का एक दस्ता जरुर भेजा था। संयोग से यह घटना एक तरफ जाट और इमाद और दूसरी ओर वंगश और अन्य रुहेला सरदारों के साथ उसके सम्बन्धों पर प्रकाश डालती है।[128] साथ ही वह अवध के नबाव के साथ सूरजमल के तनावपूर्ण सम्बन्धों को भी उजागर करती है।

1763ई. के अंत में जाटों और बिलोचियों के बीच एक झगडा हुआ। इस घटना के पीछे जाटों की विस्तारवादी महत्त्वाकांक्षाएँ और जाटों के प्रति बिलोचियों की अमैत्रीपूर्ण नीति जिम्मेदार थी। परंतु इस संघर्ष के उत्तेजित होकर बढ़ जाने का कारण बिलोचियों के सरदार मुसाबी खाँ द्वारा जाट राज्य में कानून और व्यवस्था को नष्ट करने वाले तत्वों को जान बूझकर सोद्देश्य आश्रय देना था। मेवात को डाकूओं के गिरोहों से भर दिया गया था। जवाहर सिंह, उनसे सख्ती से पेश आया परंतु वे शातिर डकैत प्रतीत होते थे और फिर बिलोच सरदार भी तो उनको संरक्षण दे रहे थे जिस कारण वे अपनी हरकतों से बाज नही आए। इन घृणित बट मारों मे से एक सानुलबा था जो दस घुडसवारों के साथ जाट–राज्य के केन्द्र डीग तक लगातार लूटमार करता था, नही तो होडल और बरसाना तक तो जाता था। सारे अत्याचारों का स्त्रोत यह शातिर डकैत जवाहर सिंह से भी बचकर पनाह लेने बिलोच राज्य क्षेत्र में घुस जाता था। यह डकैत तौरु की गढी में असदुल्लाह खाँ बिलोच के साथ रहता था, जो उसकी डकैती के माल में हिस्सा बँटाता था। जवाहर सिंह ने अपने पिता से कहा कि 'जब तक बिलोची दमित नही किए जाएगें।

तब तक वे सानुलबा और अन्य डकैतों को स्वेच्छा से अपने यहाँ से नही निकालेगें। स्पष्टतः युद्ध–स्थिति टालने के लिए सूरजमल ने बिलोचियों से पहले सानुलबा को खदेड–बाहर करने के लिए कहा, परंतु अपराध के ऐसे फायदेमंद एजेंट को खोने से उन्होनें इनकार तो करना ही था। अतः जाट राजा ने उनके विरुद्ध तलवार उठा ली। मुसाबी खाँ की सहायता के लिए बहादुरगढ का ताज मुहम्मद खाँ और अन्य बिलोच सामंत एकजुट हो गए। बाद में हुई लडाई में यद्यपि जवाहर सिंह को प्रांरभ में सफलता हुई किंतु अंततः उसे मुँह की खानी पडी। इस पराभव से वह क्षुब्ध और उत्तेजित हो गया उसने अपने पिता से कहा कि अब तो वह बिलोचियों को कुचलकर ही मानेगा तथा इस निश्चय के साथ उसने दुबारा उन पर हमला किया।

इन डकैतों को आश्रय देने वाले लोगों के संरक्षक नजीब–उद–दौला ने जवाहर सिंह की इस कार्यवाही पर आपत्ति की परंतु सूरजमल ने अपने पुत्र के संकल्प के प्रति अपनी मजबूरी व्यक्त की। तथापि उसने यह भी कहा कि सानुलबा जैसे डकैत को आश्रय देने के लिए बिलोचियों को तो

दंड मिलना ही चाहिए। अपने पुत्र को कुमुक पहुँचाने के लिए स्वयं सूरजमल 20,000 घुडसवारों, विशाल पैदल सेना और तोपखाने के एक हिस्से की शक्तिशाली सेना के साथ आगे बढ़ा और अक्टूबर, 1763ई. में फर्रुखनगर के मजबूत दुर्ग को घेर लिया। अब मुसाबी खाँ को लेने के देने पड़ गए।

सूरजमल के सामने उसके अपने संसाधन बेहद कमजोर थे और इस बार ताज मोहम्मद भी उसकी सहायता के लिए नही आया। नजीब के पास, जो नजीबावाद मे बीमार पड़ा था, सहायता के लिए प्रार्थनाएँ की गई । जाट तोपरखाने के किले की दीवारों मे दरार कर दी। अंत मे निराशा होकर मुसावी खॉ बाहर आया और हताशा की स्थिति मे उसने सूरजमल से मिलकर उसे किला सौपने का प्रस्ताव किया, बशर्ते उसे अपने परिवार के साथ सुरक्षित निकल जाने दिया जाए। जब इन संदेशो का आदान –प्रदान हो रहा था, तब सूरजमल को नजीब के (युद्वस्थल) की ओर बढ़ने और वहॉ आने के पीछे उसके उददेश्य की सूचना जरूर मिल गई होगी। अतः नजीब उस पर पीछे से हमला करे ऐसी स्थिति को टालने के लिए वह इस पूरे मामले को शीघ्र निपटाने को उत्सुक था। अतएव उसने मुसाबी खाँ को सुरक्षित जाने का वचन दिया। परंतु अगले दिन जब मुसाबी खाँ और उसके आश्रित उसके पास पहुचे तो सूरजमल ने अपना बचन भंग कर उन्हें कैद कर लिया और बाद में उन्हें कैदी बनाकर भरतपुर की जेलों में डाल दिया। इस प्रकार दोमाह की घेराबंदी के पश्चात अपने तमाम साजो–सामान के साथ फर्रुखनगर का किला 12 दिसम्बर, 1763ई. को जाटों के अधीन हो गया। किंतु प्रतिशोध की देवी ने बदला लेने में देर नहीं की।[129]

विलोच घटना ने, बदले में सूरजमल और नजीबुद्दौला के मध्य संघर्ष की स्थिति पैदा कर दी। दोंनो ये ''एक–दूसरे को फूटी आखों नहीं सुहाते थे, इस हद तक कि पहली ही मुलाकात में गुत्मगुत्था हो सकते थे।'' सूरजमल के विरुद्ध 'सहायता' के व्यग्र अनुरोधों पर विलोचियों को उनकी मुसीबत से बचाकर निकालने के उद्देश्य से नजीब ने गाजीबाबाद से कुमुक भेजी थी। यह तो मानी हुई बात है कि घटनाओं के अचानक नाटकीय रुप ले लेने से वह आश्चर्यचकित तो जरुर रह गया होगा। उसके दिल्ली पहॅुचने के दो दिन पूर्व ही (14 दिसंबर, 1763ई.) उसके मित्र–राजा जाटों के दाँव–पेचों से परास्त हो गए थे। अपने रक्षित व्यक्ति के उखाड फेंकने के लिए नजीब ने जाट को दंडित करने की चाह जितनी इच्छा की हो, किंतु अपने संसाधनों की हीनता और दीर्घकाल से चली आ रही अपनी बीमारी से मजबूर होकर उसे संयमित हो जाना पडा।

अतः उसने किसी अनुकूल अवसर आने तक कूटनीतिक सुनम्यता और कपटाचार का सहारा लेते हुए इस मामले को फिलहाल टालना ही सुविधाजनक समझा। संभवतः जैसाकि प्रोफेसर कानूनगो ने विश्वसनीय ढंग से तर्क दिया है[130], कि उसे अपने पुराने संरक्षक अहमदशाह अब्दाली से सहायता मिलने की आशा थी। दुसरी ओर, सूरजमल नजीब के साथ अपना हिसाब–किताब सदा के लिए बराबर कर लेना चाहता था क्योंकि उसके (नजीब) के कूच ने सूरजमल के मन में रुहेलाओं के प्रति कटु क्रोध और घृणा भडका दी थी फिर भी अपने इरादों को छिपाने की कोशिश करता रहा। कूटनीति चालों में वे नजीब और सूरजमल दोनों ने निष्णात थे, जैसा कि इस अवसर

पर दोनों के संदेशों में सवाल जवाब से प्रतीत होता है। कूटनीतिक चालों के वे सुन्दर उदाहरण हैं। नजीब को द्वारा सूरजमल को भेजा गया एक संदेश इस प्रकार है।

आप एक महान सेनापति हैं और आपके तथा मेरे बीच एक पक्की दोस्ती है। वे विलोची मेरे आश्रित है। और आपके साथ ऐसा दमनकारी व्यवहार किया और इस मामले मे मेरी भावनाओ की भी परवाह नही की यह कैसी भद्रता है ? खैर, अब जो कुछ होना था सो हो गया। आप किला अपने पास ही रखे ....(किंतु) मेरा ख्याल करते हुए आपको (विलोची कैदियो को) छोड़ देना चाहिए।[131]

आपके और मेरे बीच समझौता और सहबंध है। ये लोग शत्रु है। तो क्या आपके लिए यह उचित होगा कि आप मेरे दुश्मनो की रिहाई के लिए दबाव डाले और इस के लिए तर्क करे। नजीबावाद से दिल्ली कूच करना आपके लिए शोभनीय नही था। यह सबको मालूम पड़ गया है कि आप मेरे विरुद्ध अभियान पर आए थे। यदि इस समय तक यह कार्रवाही समाप्त नहीं हो जाती तो आप मुसाबी खाँ से (मेरे विरुद्ध) मिल गये होते। आप इस तरह की कार्यवाही करने की बात सोच रहे थे। तब आपके और मेरे बीच हुआ गठबंधन टूट गया, और विश्वास भंग आपकी ओर से हुआ। मेरी ओर से किसी भलाई की आशा मत रखिए।[132]

अपने दुश्मन की जबरदस्त ताकत से भयभीत होकर नजीब ने कई बार उसे संतुष्ट करने की कोशिश की। परंतु उसके व्यवहार से सूरजमल इतना चिढा हुआ था कि उसके सारे प्रयत्न निष्फल सिद्ध हुए। इसी बीच नजीब के ससुर डुंडे खाँ के नेतृत्व में गंगा तट पर अफगानों की एक टुकडी के आगमन ने जाट राजा को और भी नाराज कर दिया। रुहेला सरदार द्वारा भेजे गये मध्यस्थ–याकुब अली खाँ और उसके सेवक करामुल्लाह तथा अन्य भी उसे शांत करने में असफल रहे। उसने कहा :''अब (दिल) साफ करना असंभव है। मात्र अपने कबीले की फौंजो के घमंड के कारण वह नजीबाबाद से आया है। अतः यह जरूरी है कि मैं उसकी फौंजों को एक बार देख लूँ।[133]

पॉचवे दिन, अर्थात् 23 दिसम्बर, 1763ई. को वार्ताहार निराश होकर नजीब के पास लौट आए। सूरजमल ने फर्रुखनगर में जवाहरसिंह के पास शक्तिशाली दुर्गरक्षक सेना छोडकर दिल्ली के दक्षिण में यमुना पार की और हिंडन नदी के पश्चिमी तट पर जाकर ठहर गया। उसकी टुकडियों ने गाजियाबाद के आसपास ग्रामों को लूटा और उनमें आग लगा दी। इसके बाद जाट दिल्ली के दक्षिण में लौट आए। यह समाचार मिलने पर रुहेला सरदार अपनी सेनाओं के साथ दिल्ली के बाहर निकल आया और जाट सेनाओं से चार मील की दूरी पर खिजराबाद के बाग में आकर रुक गया। परंतु उन्हें लडाई में फॅसाए विना वह शहर में लौट आया। इसी बीच सूरजमल ने अपना साजो–सामान छोडकर यमुना पार की और नदी के दूसरी ओर अपना डेरा डाल दिया। नजीब ने अंतिम प्रयास करते हुए सुंदर मुल्तानी छींट के दो टुकडे लेकर अपने दूतों को सूरजमल के पास भेजा। इस संदेश में कहा गया था :

जो बीत गया सो बीत गया। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि आप हर तरह से मुझसे श्रेष्ठ हैं। आपके पास उत्कृष्ट बंदूकची हैं, उनके पास बढिया घोडे हैं। आपके अधिकार में मजबूत किले

हैं। इन दिनों हिंदुस्तान का कोई अन्य राजा आपकी तरह सुसज्जित नही है। अतः मैं आपसे नही लड रहा हूँ, बल्कि आप व्यर्थ में ही हिंसा का प्रदर्शन करते घूम रहे हैं। अब तो आपको वापस चले ही जाना चाहिए।

यह अपील भी क्रुद्ध राजा को शांत करने में असफल रही और इसका एक चुनौतीपूर्ण उत्तर भेजा। बिदा होते समय याकूब अली ने उससे अनुरोध किया कि अगले दिन उसके वापस होने तक (25 दिसम्बर, 1763ई.) कोई कार्रवाई न की जाए। तथापि सूरजमल ने उत्तर दिया कि यदि उसका यही मिशन था तो बेहतर होता कि वह आता ही नहीं। स्पष्टतः रुहेला जितना अधिक कूटनीतिक दृष्टि से नरम पड रहा था, जाट उतना ही अधिक निर्भीक होता गया। उसे यह पता नहीं था कि उसका अंत समीप आ रहा है। (अगले दिन की संध्या को ही) याकूब अली भी समझौते के पक्ष में था, परंतु करामुल्लाह को उसका व्यवहार अपमानजनक लगा और उसने कहा कि अब और कुछ नहीं तत्काल लडाई छेड देनी चाहिए, तथा रुहेला सरदार ने, जिसकी नाराजगी उचित थी, इस पर सहमति दे दी।[133]

अब पाँसा पड चुका था। नजीब–उद–दौला ने गुलाब सिंह गूजर, सैयद मोहम्मद खाँ बिलोच, अफजल खाँ, मुल्तान खाँ, जैविता खाँ ने अपनी सारी फौंजे, जो 10,000 से भी कम थी, लेकर भोर से दो घंटे पहले यमुना पार की और दिल्ली के 10 मील (लगभग 16 किमी.) दक्षिण–पूर्व में हिंडन नदी के पश्चिमी तट पर अपनी चौकी स्थापित कर ली। सूरजमल के पास कम से कम 25,000 की शक्तिशाली फौजें और भारी तोपखाना था जिसे लेकर वह उनके पास पहुँच गया। कई छिटपुट मुठभेडें हुई जिनमें जाटों ने अपनी श्रेष्ठता दर्शाई। दोनों पक्षों के बीच गोलावारी भी हुई, जो तीन बजे दोपहर तक चली। इसके बाद सूरजमल ने अपने दुश्मनों को तीन ओर से घेरने की कोशिश की। उसने 5,000 लोग नजीब के पीछे तैनात किए। सूर्यास्त के समय (उसी दिन, अर्थात रविवार, 25 दिसम्बर,1763) जब सूरजमल अपने एक छोटे से दस्ते के साथ फौजों की गतिविधि देख रहा था, वह सैयदू और उसके सैनिकों द्वारा मार डाला गया। जो शायद उसी की घात लगाए छिपे बैठे थे। ऐसे मामलों में जैसा कि होता, नेताविहीन जाट इस जबर्दस्त धक्के से हतप्रभ होकर उसी रात 25–26 दिसम्बर,1763 को अपना शिविर उठाकर ले गये और नजीब–उद–दौला को ''ऐसी विजयश्री सौंप दी जिसकी किसी ने भी आशा नही की थी।'' जेसुइट पर्यवेक्षक ने ठीक ही कहा है कि नजीब और उसके लोग बिना जाने ही विजयी हो गये थे।'[134]

इस प्रकार नियति ने अपेक्षाकृत कम उम्र लगभग 57 वर्ष में ही जाटों की नेत्र–ज्योति और उनका प्रकाशमान दीपक और प्लेटो[135] महाराजा ब्रजेन्द्र बहादुर सुजान सिंह[136] ठाकुर सूरजमल के नाम से लोकप्रिय यशस्वी व्यक्तित्व तथा अब भी उत्कर्षोन्मुख जीवन का अचानक व्यवच्छेदन कर दिया।

सूरजमल का मूल्यांकन

यदि बदन सिंह ने जाट राज्य की नींव रखी तो मात्र अपने संसाधनों, अध्यवसाय और चारित्रिक दृढ़ता से सूरजमल ने पहले एक प्रतिशासक और बाद में राजा की हैसियत से सुदृढ़ किया। वह तत्कालीन भारत में महानतम राजा की बुलंदियों तक पहुँचा, जिसके पास ने केवल विशाल राज्य था, बल्कि सम्पन्नतम राजकोष और सर्वाधिक शक्तिशाली सेना थी।

उसके नेतृत्व में जाटों ने मुगल साम्राज्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण भूमिका अभिनीत करने वाली अपनी स्थिति बनाई थी। शाही वजीर सफदरजंग उसकी मैत्री का सदा इच्छुक रहा और इमाद–उल–मुल्क उसके संरक्षण का अभिलाषी था और संभवतः पानीपत के युद्ध का इतिहास भी कुछ और होता यदि भाऊ ने उसकी सलाह की उपेक्षा न कर दी होती। यद्यपि जाट राजा के पास आवश्यक ताकत थी तब भी उसने दूरस्थ प्रदेशों पर शासन करने का इरादा नही किया। केवल 1757ई. को छोडकर, जाट राज्य असहाय अक्रांत और अकिंचन लोंगों के सदा सुरक्षित और तत्पर शरणस्थली रहा।[137]

अपने पिता का अनुसरण करते हुए सूरजमल ने उसके धर्मादा कार्यों में सुधार किया। बताया जाता है कि सोमनाथ चतुर्वेदी की अध्यक्षता में उसने एक धर्मार्थ विभाग स्थापित किया था।

शाह वली ने उस पर इस्लाम का उत्पीडक होने का आरोप लगाते हुए उसे एक धर्मांध के रूप में पेश किया है जिसने अपने पूरे राज्य में अजान पर पाबंदी लगा रखी थी। यद्यपि यह आरोप उसके उत्तराधिकारी के सम्बन्ध में कुछ सीमा तक सही है। किंतु सूरजमल के मामले में यह दृष्टिकोण अतिशयोक्तिपूर्ण और अनुचित प्रतीत होता है। स्वभाव से ही वह ऐसे धर्मांध व्यवहार का अभ्यस्त नही था। हिंदुओं के लिए एक महान समादृत केन्द्र ब्रज विशेषतया मथुरा, पर बार–बार अत्याचार हुए, जिनमें से एक तो सूरजमल के जीवनकाल (1757) में ही हुआ था। यद्यपि इस घटना ने उसके हृदय को गहरी वेदना पहुँचायी थी तब सूरजमल ने अपनी सत्ता के चरमोत्कर्ष के समय भी मथुरा में एक भी मस्जिद नहीं गिराई और इसके लिए उसे भाऊ की कटु उक्तियाँ सुननी पडी।[138] प्रतिशोध की भावना तो दूर उसने अपनी राजधानी में उदारतापूर्वक एक मस्जिद भी बनवाई हो। हम नहीं जानते कि उस काल का कोई और हिन्दु राजा इस तरह के कार्य पर गर्व कर सकता है। इस सदंर्भ में यह भी ध्यान देने योग्य है कि उसके निजी सेवकों में मुसलमान भी थे जो अपने स्वामी के प्रति सदा निष्ठावान रहे और उसके साथ अपने प्राण भी दिए।

मोहम्मदशाह के रुहेला अभियान के समय (1745) वीरतापूर्वक लडते हुए या बगरु में जयपुर हरावल दस्ते का नेतृत्व करते समय (1748) चाहे रामचतौनी में अफरीदीयों को धूल चटाते हुए (1750) या गढ़ी मैदान में नजीब के रुहेलों को पराजित करते समय (1753) या शोभाचन्द में मीरबख्शी को पराभूत करते हुए (1750) छोटी–मोटी अन्य छिटपुट लडाइयाँ लड़ते समय सूरजमल ने अपने पीछे बीरता और दृढ़ साहस की ख्याति छोडी। मराठा–इमाद के असंख्य सैनिकों (1754) का सफलतापूर्वक सामना करते हुए और दुर्रानी की बहुसंख्यक फौज के आक्रमणों के समय भी

(1757,1760) उसने अपने कुशल सेनापतित्व का परिचय दिया। उसे एक मात्र असफलता, जिससे वह प्रत्यक्षतः सम्बन्धित था, गृहयुद्व के समय सफदरजंग के साथ प्राप्त हुई थी। यदि उसकी अचानक मृत्यु न हुई होती तो हिन्ड़न मे अंतिम परिणाम क्या होता, इसका अनुमान प्रतिपक्षियो की अपनी–अपनी ताकत और उनके संसाधनो को देखकर आसानी से लगाया जा सकता है।

परिश्रमशील जाट किसान मे सदा सर्वोत्तम योद्धा के गुण भी होते है। एक बडे संकट के समय जैसा कि मराठा आक्रमण (1754) के समय उपस्थित हुआ था, सूरजमल ने जाटो की सेवाओ का लाभ उठाया जो जितने उद्योगशील किसान थे उतने ही उत्कृष योद्धा भी थे। उसके साथ ही उसने एक अच्छी स्थायी सेना की भी जरूरत समझी। अतः इसके लिए कदम भी उठाये। उसकी सेना मे यद्यपि जाट अधिक संख्या में थे, फिर भी अन्य जातियो के भी लोग उसमें थे । सियर से पता चलता है कि इस महान जाट सेनापति ने स्वयं अपने घुड़सवार बंन्दूकवाजो को अपनी ही शैली मे प्रदर्शित किया था। उसने ''घोड़े पर बैठकर निशाने पर गोली साधने और फिर घुमकर ओट मे उसे (बंन्दूक को) फिर भरने के लिए एक अभ्यास प्रचलित किया था। रोजाना अभ्यास कर वे ऐसे फुर्तीले और खतरनाक निशानेबाज बन गये थे.....कि भारत मे कोई अन्य सेना युद्धभूमि में उनका सामना करने का साहस नही कर सकती थी और न किसी भारतीय राजा में इतना साहस था कि इस जैसे राजा से युद्ध करके उसे परास्त करने की वह कल्पना भी कर सके।[139]

शांत आकलनशील दूर दृष्टि, दूरदर्शी होने की एक गंभीर अनुभूति, अनुकरणीय चतुराई के धनी सूरजमल की प्रतिभा कूटनीति के क्षेत्र में चहु ओर प्रकाशित हुई।[140] लोगों और मामलों को निपटाने में उसने अद्भुत चतुराई का परिचय दिया। गहरे संकट के क्षणो में भी उसने सराहनीय प्रत्युत्पन्नमति और धैर्य का प्रदर्शन किया । षडयंत्रो और अनैतिक कूटनीति के वातावरण में उसने न केवल पाखण्डी मुगलों और धूर्त[141] मराठों को, बरन चालाक अब्दाली और होशियार राजपूतों को भी हतप्रभ किया। निःसंदेह उसकी स्थिति बेहद नाजुक थी क्योकि वह दो सर्वाधिक दुर्धर्ष और शत्रुतापूर्ण शक्तियों के बीच खडा था, उत्तर में अब्दाली था और दक्षिण में बलात् अधिग्रहण करने वाले मराठे थे उनका शानदार खजाना इतना लोभियों के लिए सतत आकर्षण का केन्द्र रहा तो उसकी विस्तारवादी कार्यवाही तथा अपने पडौस में ही उसका स्वतंत्र अस्तित्व मुगलों और राजपूतों दोनों को चिढ़ा रहा था। इसके अतिरिक्त इस्लामी पुनर्जागरण की शक्तिशाली ताकतें भी अत्यधिक विरोधी थी। अब्दाली और मराठों ने अनेक बार नेस्त नाबूद करने की कोशिश की। वैसे भी सामान्यतया उसकी ओर सूरजमल के लिए सभांवित खतरा बना ही रहता था। इन परिस्थितियों में जाट राज्य का अस्तित्व बनाए रखना ही एक दुष्कर कार्य था। परंतु अपनी अद्भुत कूटनीतिक नमनीयता, 'विलक्षण' बुद्धिमत्ता और वीरोचित धैर्य से वह न केवल अपने सारे दुश्मनों की कार्यवाहियों को नाकाम करने में सफल हुआ, वरन लगातार आए संकटों के बावजूद वह अपनी संपत्ति को बढाने में सफल हुआ। बैंदेल कहता था जब लोग निचोडे जा रहे थे तब सूरजमल ने अपने ही साहस से ही मराठा– दुर्रानी की जबरदस्त वसूली से स्वयं को बचाए रखा। जब एक ओर अन्य शक्तिशाली राजा अपने साधनों को लुटाकर अब्दाली के साथ हो गये थे, तब वह दुर्जेय शत्रु (अब्दाली) से अपने राज्यक्षेत्र को बचाने में सफल रहा था। तत्कालीन संकट में जब उसके

सूरजमल के पडौसी भी अछूते नही बचे थे तब सूरजमल ने शांति सुनिश्चित कर ली थी, और जब हर व्यक्ति हार रहा था। तब उसने मराठो से, जिनकी पराजय का पूर्वानुमान उसने कर लिया था, स्वयं को अलग कर लिया था, किसी का सहारा लिए बिना किसी युद्ध के बिना अब्दाली को वापिस कर दिया और जब सभी को क्षति हो रही थी तब वह अधिक शक्तिशाली बन गया था।

अंत मे जेसुइट फादर सही लिखता है, ''मै हिन्दुस्थान में ऐसे किसी व्यक्ति को नही जानता जो ऐसा कर सकता था।'' ऐसा था सूरजमल, अपने समय का निपुण कूटनीतिज्ञ निःसंदेह नजीबुद्दौला भी कूटनीतिज्ञ चतुराई और राजनीतिक दूरदर्शिता का स्वामी था। परन्तु दोनो में अंतर यह था। कि नजीब के पास अहमदशाह अब्दाली जैसा शाक्तिशाली संरक्षक, मुक्तिदाता था। जब कि सूरजमल ने अकेले दम पर अब्दाली और मराठों को एक साथ और एक ही समय छका दिया। इसके अलावा सूरजमल ने अपने राज्य को प्रगति प्रदान की जब कि नजीब ऐसा नही कर सका।[142]

''राजा सूरजमल एक अच्छे शासक के सभी गुणो से संपन्न था.....और अपनी प्रजा तथा कोष का जबर्दस्त विस्तार करने में वह अपनी सरकार के माध्यम से सफल हुआ।

यह मुख्यतः इस राजा के अथक परिश्रम का परिणाम था। उसकी मुत्यु के समय तक जाट राज लम्बाई में 200 मील (लगभग 322 किमी.) पूर्व–पश्चिम और चौडाई में 140 मील (लगभग 225 किमी.) उत्तर–दक्षिण तक फैल चुका था। जिसमें दिल्ली सूबे का एक और आगरा का तीन चौथाई भाग शामिल था।

''(पश्चिम दिशा में) यमुना के पार दिल्ली के दरवाजों से लेकर चम्बल तक उसके अतिरिक्त किसी अन्य की सरकार नही थी, और गंगा की तरफ भी लगभग यही स्थिति थी।''[143]

मौटे तौर पर आगरा, मथुरा, धौलपुर, अलीगढ़, बुलंदशहर, मैनपुरी, मेरठ, रोहतक, गुडगाँव, रेवाडी के जिलों के साथ उसका मूल राज्य भरतपुर शामिल थे। जाट राजा ने अपने जाट भाईयों की सहज, नैसर्गिक संवेदनशीलता को समझने की दृष्टि थी। वह संभवतया जानता था कि उनके लिए अपने व्यक्तिगत या कवीलाई स्वाधीनता के गहरे पैठे लोकतान्त्रिक स्वभाव और भावनाओं को अचानक या पूरी तरह छोड देना, असंभव नही तो कठिन अवश्य था। अतः मुगलशैली की स्वेच्छाचारी, निरंकुश प्रणाली को इसी रूप में न अपनाकर उसने बुद्धिमानी का परिचय दिया। प्रोफेसर कानूनगो ठीक ही बताते हैं कि सूरजमल की मृत्यु के समय मौजूद जाट राज्य तब भी सामंती संघ था, और जाट राजा उसका सर्वोच्च प्रमुख था।[144]

उसकी बुद्धिमत्ता, कौशल प्रशासनिक क्षमता और उसके द्वारा संरक्षण के परिणाम स्वरुप दीर्घकाल तक व्याप्त रही अव्यवस्था और अराजकता के बाद उसके नियत्रंणगत क्षेत्र में शांतिपूर्ण स्थिति वापस आई। जिन क्षेत्रों को उसने अधीन किया था, उनके मूल्य में वुद्धि के लिए उसने जमींदार के काम को इतने उत्तम प्रकार से निभाया। कि उससे राजस्व में पर्याप्त वृद्धि हो गई। इसके साथ ही महलों और किलों, बाजारों पर काफी बड़ी राशि खर्च करने के बाद भी उसने अपने खर्च को इस तरह नियंत्रित किया कि ''अनेक वर्षो तक'' वह अपने राज्य के वार्षिक राजस्व का कम से कम आधा भाग बचाता रहा।[145]

हम जानते है कि उसके शासन के प्रांरभ में उसका वार्षिक राजस्व एक करोड रुपये था। फिर 1760ई. में वह डेढ़ करोड हुआ। इसके पश्चात् इसमें वृद्धि होती गई तथा परवर्ती वर्षो में वह हर साल 175 लाख वसूल करता था, जबकि उसका वार्षिक खर्च लगभग 65 लाख रुपये था। उसकी प्रतिवेदित आत्मस्वीकृति के अनुसार 1760ई. में उसके राजकोष में लगभग सात करोड रुपये थे। अतः वैंदेल का यह अनुमान सही है कि उसकी मृत्यु के समय उसके पास 10 करोड रुपये थे, जिसका अधिकांश भूमि में दबा था। इसमें काफी मूल्य के जेवरात और अन्य मूल्यवान वस्तुएँ शामिल नही है। तथापि लोक विश्वास के अनुसार उसके पास हाथ में 15 से 20 करोड रुपये थे।[146]

प्रशासन द्वारा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से दिए गए प्रोत्साहन के कारण वाणिज्य–व्यापार भी खूब फला–फूला। सूरजमल ने अपने समूचे राज्य में पारगमन कर की छूट दे रखी थी।

इसके फलरूवरुप अनाज अत्यधिक सस्ता हो गया था। अन्य वस्तुओं के सम्बन्ध में भी अवश्य ऐसा ही हुआ होगा। यदि सूरजमल ने राजकीय भवनों का निर्माण कराया तो वह बाजारों को बचाने की आज्ञा देना भी नही भूला। यदि 'इमाद' पर विश्वास किया जाए तो उसने व्यापारीयों की सुविधा के लिए डीग और अन्य स्थानों पर हजारों दुकानें बनवाई। वैंदेल के इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नही है किः

''मैं स्वेच्छा से स्वीकार करता हूँ कि जाट समृद्ध हैं और आज भी नादिरशाह, अब्दाली और मराठों द्वारा पहुँचाई गई क्षति के बावजूद हिंदुस्तान में यदि कोई खजाना सुरक्षित है तो वह जाटों का है।''[147]

अपनी विशाल सम्पदा में सूरजमल ने शाही शानों –शौकत की भी वृद्धि की तथा कला और साहित्य को भी संरक्षण प्रदान किया। पहली बार हमें यह पता चलता है कि उसके ही प्रोत्साहन पर कवि सोमनाथ ने , जिसे सूरजमल का सरंक्षण प्राप्त था 'ब्रजेंद्र विनोद' नामक एक लम्बी कविता लिखी थी।[148] बाद में सोमनाथ सेवानिवृत्त होकर वैर चला गया तो सूरजमल के भाई, प्रताप सिंह ने उसे सरंक्षण दिया। इसके कुछ ही समय बाद प्रताप सिंह के पुत्र बहादुर सिंह ने भी ऐसा ही किया। इस तरह सूरजमल के राज्य में अन्य कलाओं के विकास के साथ–साथ साहित्यिक गतिविधियों को भी प्रोत्साहन मिलता रहा। वस्तुतः सूरजमल कला का महान पारखी था।

नेपोलियन ने पेरिस को सजाने के लिए विजित स्थलों के कला की सर्वोत्तम वस्तुओं को हथियाया था। अपनी राजधानी की शोभा बढाने के लिए महमूद गजनवी तो कलाकारों को ही अपने साथ ले गया था। एक तरह से सूरजमल इन दोनों गुणों से सम्पन्न था। एक ओर, वह अपने दरबार को सँवारने के लिए आगरा के मुगल शानो–शोकत की चुनी हुई वस्तुएँ ले गया तो दूसरी ओर, उसकी सम्पत्ति और इच्छा शक्ति ने कंगाल दिल्ली दरबार के गरीब शिल्पियों को कला के नए गृह में आने के लिए प्रेरित किया। इसके अलावा अपने डीग, भरतपुर, वैर तथा कुम्हेर के किलों पर सूरजमल ने करोडों रुपये खर्च करके वहाँ सुदंर और आकर्षक इमारतें, सरोवर और उद्यान बनवाए। इमाद के रचनाकार का कथन है कि सूरजमल द्वारा निर्मित कुछ इमारतें इतनी शानदार थी। कि वैसी ''अन्यत्र नहीं मिलती, यहाँ तक कि दिल्ली और आगरा में भी नही।[149] इन सभी में

डीग का राजाप्रसाद वास्तुकला की दृष्टि से सबसे अधिक भव्य और 'उत्कृष्ट' था, जिसको सूरजमल ने इतने विशाल स्तर पर योजना बनवाकर निर्मित करवाया था कि 1768ई. तक भी उसका काम समाप्त नही हुआ था। दूर–दूर की यात्राएँ किए हुए एक प्रत्यक्षदर्शी ने बताया है किः

इस राजाप्रसाद को देखे बिना उसके विस्तार और शान की कल्पना करना कठिन है..... मैंने हिंदुस्तान में और कोई ऐसा प्रासाद नही देखा जो इसकी भव्यता की बरावरी कर सके।[150]

जैसा कि वैंदेल ने उसे चित्रित किया है, यदि वह महान जाट शासक सम्पत्ति का इतना लोभी था तो निश्चय ही वह यह भी जानता था कि उदारता और बुद्धिमानी से कैसे खर्च किया जाए।

यद्यपि उनका सहज और अनगढ़ स्वभाव जो जाट किसानों की अपनी विशेषता है–

न्यूनाधिक रूप से अप्रभावित रहा, तथापि जाटों की समृद्धि, शक्ति तथा बाहरी दुनिया से उनके मेल–जोल ने उनकी वेशभूषा, पोशाक, इमारतों, भाषा और आमतौर पर हर बात पर ''अपनी छाप छोडी है। जहाँ केवल उनके राजा ही आगरा और दिल्ली की शाही शान–शौकत देखते थे। अतः एक सामान्य व्यक्ति इस राजसी वैभव को ''डीग, कुम्हेर और भरतपुर में ही प्रत्यक्ष देख सकता था।[151]

अंततः सूरजमल ने जाटों को छोटे जमींदारों के रूप में प्राप्त किया था, परंतु थोडे ही समय में उसने उन्हें 'हिन्दुस्तान से भी अधिक प्रसिद्धि' तक ऊँचा उठा दिया।[152]

संदर्भ

1. सरकार कृत फाल II, 433।
2. गुप्ता कृत पानीपत, 44।
3. पाण्डेय कृत भरतपुर, 46।
4. कानूनगो कृत जाटस 385 और 65।
5. मेम्वोआर दे यात, 28।
6. वही, 23।
7. वही, 63।
8. वही, 46।
9. पाण्डेय कृत भरतपुर, 46।
10. वही, 46।
11. गंगासिंह, कृति उद्धरण 30–31।
12. सुजान, 4 और 6।
13. दीर्घ 4 ; सोमनाथ में 'रस पीयूषनिधि'।
14. तारीख–ए–अहमदशाही 43b।
15. तवारीख–ए–हुनूद 20 a।
16. इमाद 84।
17. तारीख–ए–भरतपुर 4b।
18. मजमा–उल–अखबार, इलियट में VIII 362।
19. इमाद पृ. 55।
20. राजपूताना पृ. 155।
21. महाराजा ईश्वरी सिंह का जीवन–चरित्र (हिन्दी), लेखक ठाकुर नरेन्द्र सिंह वर्मा वैदिक प्रेस अजमेर पृ.59–73।
22. डॉ. कानूनगो, जाट इतिहास, पृ. 159 ; द्रष्टव्य लेखक कृत 'ब्रजेन्द्र बहादुर महाराजा सूरजमल जाट (1986ई.) पारिवारिक परिचय पृ.62।
23. द्रष्टव्य 'ब्रजेन्द्र बहादुर महाराजा सूरजमल जाट पृ. 169।
24. 'भारतवीर' वर्ष 2, अंक 1, मार्गशीर्ष, कृष्णा 7, वि.स.1984 (नवम्बर, 16, 1927 ई.) पृ.5।
25. यदुवंश पृ. 256।
26. वैंदेल पृ. 90, 107 ; डॉ. कानूनगो, जाट इतिहास, पृ. 159।
27. जॉन कोहन पृ. 22 ब, 26 अ, 27 अ, 53अ।
28. वैंदेल पृ. 90।
29. सूदन पृ. 6, 235।
30. टॉड, जि. 2 पृ. 300।
31. इमाद पृ. 72।
32. वैंदेल पृ. 50, 51।
33. सरकार (मुगल), खण्ड 2, पृ. 307।
34. विलियम वेव (द करेंसीज ऑफ द हिन्दू स्टेटस ऑफ राजपूताना) पृ. 26–29।
35. वैंदेल
36. सियार, खण्ड 4, पृ. 28।
37. रेने मैडक अनु. 45 ; नुरुद्दीन पृ. 60 ब–61 अ।
38. शाह, 2।
39. सरकार कृत फाल, I 343, 339, 344।
40. श्रीवास्तव कृत, अवध, 130 ff।

41. वही, 141।
42. तारीख–ए–अहमदशाही, 22 b।
43. दिल्ली क्रॉनिकल (रघुवीर सिंह लाइब्रेरी, सर जदुनाथ सरकार कृत संक्षिप्त अनुवाद की पाण्डुलिपि), तारीख–ए–अहमदशाही, 22 b-23a।
44. सियर III, 311-313 तारीख–ए–अहमदशाही, 21 b।
45. सियर III, 313।
46. वही III, 314।
47. वही III, 314।
48. सुजान, 52 ;सियर III, 314।
49. अमीरा, 80 ; मेम्वोआर दे यात, 33।
50. सुजान, 54–60।
51. सुजान, 54।
52. वही, 56–64।
53. वही, 69–70।
54. इर्विन कृत वंगश नवाव्ज, 71।
55. सुजान 72–90 ; सियर III, 295।
56. श्रीवास्तव कृत, 160–62।
57. इर्विन कृत वंगश नवाव्ज, 75।
58. श्रीवास्तव कृत, अवध, 163–164।
59. मेम्वोआर दे यात, 34।
60. वही, 34–35।
61. सियर III, 304-305।
62. सियर III, 305-307।
63. इर्विन कृत वंगश नवाव्ज, 108–122।
64. सियर III, 29।
65. इमाद, 91 ; अमीरा, 85 ; इलियट, VIII, 133।
66. तारीख–ए–अहमदशाही, 40b-41a।
67. वही, 43b।
68. मेम्वोआर दे यात, 33।
69. वाकय–ए–आलम सानी, 70 ; कानूनगो द्वारा जाटस, 83–84।
70. मेम्वोआर दे यात 33–34 ; सरकार कृत फाल II 435।
71. गुप्ता कृत पानीपत, 321 ff।
72. कानूनगो कृत जाटस 85।
73. तारीख–ए–अहमदशाही, 55b-57b।
74. वही, 58b-59a।
75. तारीख–ए–अहमदशाही, 60a-60b।
76. वही, 66a-64a।
77. तारीख–ए–अहमदशाही, 67a-67b।
78. तारीख–ए–अहमदशाही, 72b-74b।
79. तारीख–ए–अहमदशाही, 83a-83b।
80. सरकार कृत फाल I 452।
81. कानूनगो, जाटस, 86।
82. वही, 109।

83. तारीख–ए–आलमगीर सानी 105–109।
84. एस. पी. डी. II 48।
85. तारीख–ए–आलमगीर सानी 157–158।
86. तारीख–ए–आलमगीर सानी 157–158, सरकार कृत फाल II 84।
87. एस. पी. डी. XXXI, 79।
88. तारीख–ए–आलमगीर सानी 380।
89. कानूनगो कृत जाटस, 116।
90. वही, 116–117।
91. तारीख–ए–आलमगीर सानी 158।
92. अलीगौहर के कार्यकलाप के विवरण सरकार कृत फाल, II, 161 ff ।
93. तारीख–ए–आलमगीर सानी 330।
94. तारीख–ए–आलमगीर सानी 332–333।
95. मुरासलात–ए–अहमद शाह दुर्रानी, 21 ; जी. सिंह द्वारा उदधृत दुर्रानी, 232–233।
96. शाकिर, 115।
97. सरकार कृत फाल II, 39, 384-386,
98. वही 381, 383, 442।
99. नूर 53 b, 54a (अब्दाली के उददेश्यों के विस्तृत विवरण के लिए देखे, सरकार कृत फाल II, 378-380।
100. एस. पी. डी. II, 103, XXVII, 272 ; नूर, 54b।
101. नूर 55b ।
102. सरकार कृत फाल II, 381 ।
103. एस.पी.डी. XXVII, 10, 15।
104. मिरात 921।
105. एस.पी.डी. II, 103।
106. एस.पी.डी. XXI, 202।
107. नूर 55a।
108. रजवाडे, I, 297 ।
109. वही, I, 297 ; एस. पी. डी. XXXIX, 10।
110. वही, I, 295।
111. वही, I, 295।
112. नूर 56a-56b ; एस.पी.डी. XXIX, 23।
113. मेम्वोआर दे यात 56।
114. सियर, IV, 28।
115. तारीख–ए–आलमगीर सानी, 106 ; एस. पी. डी. XXVII।
116. सरकार कृत फाल II, 38-39।
117. सरकार कृत फाल II, 385।
118. एस. पी. डी. XXI, 168।
119. मेम्वोआर दे यात 57–60, एस.पी.डी. II, 144 ; सरकार कृत फाल II, 382, 443-444।
120. शाह, 9।
121. वही, 9।
122. वही, 55, 81।
123. गुल, 123।
124. सियर, IV, 28।

125. शाह, 34।
126. मेम्वोआर दे यात 56–57।
127. नूर 66b ; सियर, IV, 28।
128. नजीब की उक्ति, नूर 69a।
129. नूर 60a, 64b ; मेम्वोआर दे यात 60 ; सरकार कृत फाल II, 447-449।
130. कानूनगो कृत जाटस 150।
131. मेम्वोआर दे यात 61।
132. नूर 64b-65a और इस्लामिक कल्चर, X, 654।
133. नूर 66b-67b; सियर, IV, 30-31।
134. मेम्वोआर दे यात, 63 सियर, IV, 29 और 33 ; स्कॉट कृत दक्कन II, 246।
135. इमाद 84।
136. नूर, 33a ब्रजेन्द्र विनोद, 212 ; तारीख–ए–अहमदशाही 43b।
137. मिरात 893।
138. इमाद 120–121।
139. सियर, IV, 28 ; नूर 66b।
140. हरिराम गुप्ता, पानीपत 153।
141. कानूनगो कृत जाटस 65।
142. सरकार कृत फाल II, 414-454।
143. मेम्वोआर दे यात 56 ; कानूनगो कृत जाटस 167।
144. कानूनगो कृत जाटस 221।
145. मेम्वोआर दे यात 57–67।
146. वही, 64–67, 86।
147. वही 66।
148. ब्रजेन्द्र विनोद 212।
149. इमाद 85।
150. मेम्वोआर दे यात 50–51।
151. वही, 50–51।
152. वही, 67।

चतुर्थ अध्याय

जवाहरसिंह का जीवन परिचय – 'भारतेन्दु' राव जवाहरसिंह का जन्म कब और कहाँ हुआ ? इसका कोई प्रमाणिक विवरण नहीं मिलता है। प्रमाणों के अभाव में अद्यतः अनिश्चितता है। पुनश्चः विवरणों व घटनाओं के आधार पर उसका जन्म समय विक्रम सम्वत् 1784 (1727–28 ई.) के आस–पास माना जा सकता है। पुस्तक 'महाराजा जवाहरसिंह और उनका युग' के लेखक एवं इतिहासकार रामबीर सिंह वर्मा ने उनका जन्म 21 फरवरी, 1733 ई. बसन्त पंचमी को डीग के महलों में हुआ माना है।[1] गौड वंश संभूत रानी गौरी की कोख से जन्म होने पर ही वह सूरजमल का ज्येष्ठ पुत्र था। उसका पालन–पोषण, शिक्षा–दीक्षा रनिवास में हुई थी, उसके जन्म के बारे में राज–परिवार तथा स्वार्थी राज–सरदारों में अन्यान्य भ्रान्तियॉ विद्यमान थीं। कुछ का कहना था कि वह अपनी माता के साथ सात माह का सूरजमल के सामने आया था। कुछ का कहना था कि वह अपनी माँ के जठर में आया था और कुछ का मानना है, कि वह सूरजमल का औरस पुत्र था।[2]

महाराजा सूरजमल के पाँच पुत्र थे, जवाहरसिंह, रतनसिंह, नवलसिंह, रणजीतसिंह और नाहरसिंह जिनमें जवाहरसिंह और रतनसिंह एक राजपूत रानी से थे, जिसके सौंदर्य से मुग्ध होकर सूरजमल ने उसके साथ शादी कर ली थी। फादर वैंदेल और इमादुस्सात का लेखक दोनों ही इस बात से सहमत हैं कि जवाहरसिंह की माँ एक राजपूतरानी थी। महाराज सूरजमल अपनी सभी रानीयों में वीर किशोरी रानी को जिसके कि कोई भी संतान नहीं हुई थी, अधिक प्यार करते थे। सौभाग्य से जवाहरसिंह को रानी किशोरी ने गोद ले लिया था। शैशव तथा युवावस्था में स्वभावतः उसको राव बदनसिंह का अधिक प्यार व दुलार मिला था। जवाहरसिंह ने अपने पितामह के सानिध्य में राज–काज की शिक्षा ग्रहण की थी और अपने पिता के सानिध्य में सैन्य संचालन, सैन्यसंगठन तथा युद्ध–कला में निपुणता प्राप्त की थी। अस्तु, उसमें शासकीय क्षमता, सैन्य संचालन व नियंत्रण की सहज क्षमता थी और वह स्वाभिमानी, निर्भीक, साहसी तथा दृढ सेनापति था।

आरम्भ में युवा जवाहरसिंह के हृदय में मुगल शासकों के प्रति घृणा थी। उसने एक बार दिल्ली के वजीर को अपने हाथ चूमने पर फटकार दिया था और उससे पूछा कि मेरा हाथ चूमकर मुझे अपवित्र क्यों कर दिया ?

कुछ लेखक जवाहरसिंह को कठोर, निर्दयी, प्रतिशोधी तथा कपटी आदि बताकर उसके चरित्र को भी शंका की दृष्टि से देखते हैं। वे यह भूल जातें हैं कि ब्रजभूमि पर औरंगजेब, नादिरशाह, अहमदशाह अब्दाली, मराठों आदि ने कैसे–कैसे अत्याचार किए, मन्दिरों, पाठशालाओं को ध्वस्त किया, बलात् धर्म परिवर्तन कराया, बहन–बेटीयों की इज्जत लूटी, बलात्कार, सामूहिक नर–संहार से लेकर खडी फसलों को उजाड दिया और भोली–भाली जनता की इज्जत, धन–सम्पदा को लूटा। ऐसा जवाहरसिंह ने देखा व भोगा था। इतिहास लेखकों ने उसके स्वभाव के बारे में अनेक अनुचित बातें लिखी है, लेकिन समय, परिस्थिति, काल एवं हालातों ने उसे ऐसा बना

दिया था कि वह शत्रु के प्रति निर्मम, कठोर, एवं दयाहीन रहे। वह सच्चा देशभक्त, वीर, परोपकार की भावना से ओत–प्रोत एवं निष्ठुर शासक था।

विदेशी आक्रान्ता अहमदशाह अब्दाली को हमारे देश के राजपूत नरेश भारत पर आक्रमण करने और जाट–सिक्खों के प्रभुत्व को कम करने हेतु आमंत्रित कर रहे थे। अब्दाली अटक से दिल्ली तक लूटपाट, नरसंहार करता हुआ निर्विरोध आ गया। मुगल साम्राज्य का इतना अद्यःपतन हो चुका था कि किसी ने भी अब्दाली के विरुद्ध म्यान से तलवार निकालने का साहस नहीं किया।

सन् 1756 ई. में जब अहमदशाह अब्दाली ने अपना चौथा आक्रमण किया तो सूरजमल ने जवाहरसिंह को मथुरा की रक्षा के लिए नियुक्त किया। परन्तु वह पराजित हो गया और वल्लभगढ की ओर भाग गया और स्वयं को दुर्ग में बंद कर लिया। अब्दाली की सेना का एक दस्ता लूटमार करता हुआ वल्लभगढ तक जा पहुँचा। जवाहरसिंह में चातुर्य की अपेक्षा दुस्साहस अधिक था। उसने एकाएक इस सैनिक टुकडी पर आक्रमण कर उनसे 150 घोडे छीन लिए। क्रोधित अहमदशाह ने बदला लेने के लिए अपनी सेना फरीदाबाद की ओर भेजी। उसने छल से काम लिया। सेना का मुख्य भाग फरीदाबाद के आस–पास के जंगलों छिपा दिया तथा कुछ अग्रिम टुकडियाँ वल्लभगढ की ओर भेजी, जहाँ जवाहरसिंह आक्रमण की प्रतीक्षा कर रहा था। सदैव की भाँति इस बार भी भारतीय सेना की गुप्तचर व्यवस्था असफल सिद्ध हुई। जवाहरसिंह को यह पता नहीं लग पाया कि अब्दाली की सेना का मुख्य भाग फरीदाबाद के जगलों में छिपा हुआ है। वल्लभगढ आयी हुई थोडी सी सेना मात्र छलावा है। अब्दाली की सेना की कम संख्या को देखकर जवाहरसिंह ने किले के बाहर आकर उस पर आक्रमण कर दिया। पूर्व योजना के अनुसार अब्दाली की सेना फरीदाबाद के जंगलों की ओर भागी तथा विजय के उत्साह में जवाहरसिंह ने उसका पीछा किया। फरीदाबाद के निकट पहुँचते ही अफगान सेना ने जाट सेना को घेर लिया और मारकाट मचा दी। अफगान सेना का शिकंजा इनता कसा हुआ था कि जवाहरसिंह का बचना मुश्किल हो गया, फिर भी अपने रण कौशल और दुस्साहस के द्वारा वह बच निकला और भाग कर वल्लभगढ पहुँच गया।[3]

जवाहर सिंह के वीरोचित कृत्यों की प्रशंसा में 'जाटों के जौहर' नामक इतिहास आचार्य गोपाल प्रसाद कौशिक ने बड़ा मार्मिक वर्णन किया है–

इसने चढता और चमकता, सूरजमल नृप सूरज देखा।
खल दुष्ट दर्प दलने वाला, रण बहुल पराक्रम देखा।।
यह जाट राज्य निर्माण किया, वह राजनीति कौशल देखा।
अति–शौर्य–धैर्य–उत्साह–ओज, परिपूजित ब्रजमण्डल देखा।।
इसके आँगन में ही सहसा, रण कौशल शक्ति बटोरी थी।
बरबस नस नस रण–रस भरती, महारानी मातु किशोरी थी।।
जिसकी ओजस्वी वाणी ने, जाकर दिल्ली झकझोरी थी।
राज्य–कला कुशला रानी, कर दृढ़ राजनीति की डोरी थी।।
है यही दुर्ग तो जन्म भूमि, जग जाहिर भूप जवाहर की।
अब भी सुनता तन्मय हो मन, धुन उस मदमाते नाहर की।।

राजा राँगड़ और राजपूत, आतंकित होकर झूमे रहे।
नबाब खाँन–अफगान मुगल, जिसके थे आगे नमे रहे।।
जगमग जलता अंगारा था, रिपु दल दहलाता जाता जल।।
भारत नभ का ध्रुव तारा था, अतिशय अमंद निज धाम अचल।।
जिसके प्रताप से आतंकित थी, राजनीति घर–बाहर की।
मद–मर्दन कर दिल्लीपति का, रणभूमि भुजा फर–फर फरकी।।
निज भुजवल से रिपुदल–दल कर, दुर्गम दिल्ली गढ़ किया विजय।
नर–नाहर भूप जवाहर के, जग–जाहिर जौहर का परिचय।
अनुयायी अगणित विकट सुभट, जिनके गतिमय अति चंचल हय।
जिनके प्रताप से भारत में, हिन्दु जनगण रहते निर्भय।।
आती न नींद दिल्लीपति को, चढ़ आये जाट यही संशय।
राजपूतों की रणभूमि मध्य, संग्राम बहुत घनोघर रचे।
तडिता–सी चलती तेग तड़प, सन्मुख न एक भी वीर बचे।।
लख युद्ध भूमि के जटिल व्यूह, राजपूतों को हैरानी थी।
पौरुष प्रताप, ब्रज सूरज की, जग फैली गर्व कहानी थी।।
छा गई कीर्ति दिगमण्डल में था, शक्तिकोष जिसका अक्षय।
ब्रजमण्डल के आखण्डल का, सूरजमल का पौरुष परिचय।
यह राजस्थानी सिंह द्वार सबके स्वागत हित सदाँ खुला।
हो मित्र परम या शत्रु चरम, ये नहीं किसी को सका भुला।।

दिल्ली युद्ध ने जाट वीरों को अपने समय में महान बना दिया क्योकि राजस्थान का कोई भी राजपूत राजा दिल्ली पर चढ़ाई नही कर सका और न अंग्रजों से लड़ाई लड़ सका। दिल्ली पर चढ़ाई करने का और अग्रेजों से लडाई लडने का श्रेय केवल भरतपुर के नेतृत्व में जाट वीरों, किसानो, श्रमिकों कोई ही है। यद्यपि इसमें सभी जाति एवं वर्गो के लोग भी उपस्थित रहे थे।

जवाहरसिंह जहाँ अति उदारमन था,वहाँ यदा–कदा साधारण भूल के लिए अति कठोर दण्ड देने में भी नहीं चूकता था। उदारता के साथ शत्रु तथा अपने विरोधी को क्षमा करने की क्षमता थी। नबाब नजीबुद्दौला तथा मराठों के साथ उसने उदारता दिखलाई और मल्हारराव की मृत्यु के बाद उसने मराठा सेना नायकों को मुक्त किया, जबकि गुसांई बन्धुओं को सन्देह पर ही पूरी तरह बर्बाद कर दिया था।

मीर गुलाम अली ने उसको अतिमहत्वाकांक्षी, निष्कपट, स्पष्ट वक्ता लिखा है।[5] राने मैडक ने उसको अपने पड़ोसियों के लिए स्वभावजन्य आतंक[6] और कवीश्वर उदैराम ने जालिम, जुल्मी तथा जुल्हाल लिखा है। उदैराम का कथन है कि वह धैर्यवान होता तो वह हिन्दुओं का कल्याण करने में सफल रहता, जुल्म (अत्याचार) के कारण ही उसका अंत हो गया था।[7] उसके स्वभाव में अक्खडता थी, क्रोध आवेश, आक्रोश, अधीरता, उच्छृंखलता, अडियलपन था और उसकी लडाकू प्रवृत्ति थी।[8] वह अतिव्ययी तथा महत्वाकांक्षी था और उसमें आत्मसंयम की कमी थी।

जवाहरसिंह तथा रतनसिंह दोनों भाईयों ने शाही दरबार से जात व सवार का मनसब, राव का विरुद्ध प्राप्त कर लिया था। जवाहरसिंह को शाही दरबार से नौबत भी प्रदान की गई थी। वास्तव में मनसब एक औपचारिक सम्मान था। इन दोनों में से किसी की भी शाही सेवा में तैनाती नहीं की गई थी मनसब के अनुरूप जागीर प्रदान करने का साक्ष्य अभी तक खोजनीय है।

जवाहरसिंह को अपने स्वभाव के कारण ही युवाकाल में राज–परिवार के घटकवाद का शिकार बनना पडा था।

स्वयं सूरजमल, राजवंश के अन्यान्य सदस्य कुटुम्बी जन, डूंग पंचायत के उनके सदस्य, प्रभावशाली सामंत उससे असंतुष्ट, भयभीत तथा खिन्न रहते थे। ज्येष्ठपुत्र होने पर भी सूरजमल ने उसको विधिवत अपना उत्तराधिकारी तथा युवराज घोषित नही किया था, फिर भी राज्य को पारिवारिक संघर्ष से बचाने की दूरदृष्टि से राज्य की स्थिरता के लिए ही सूरजमल ने मेवात, गुडगांवां, हरियाणा को सह–राज्य[9] के रूप में जवाहरसिंह के प्रबन्ध में सौंप दिया था।

महाराजा सूरजमल की इच्छा नाहरसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाने की थी। नाहरसिंह अपने पिता का आज्ञाकारी, गुरुजनों का सम्मान करने वाला, नम्र और सादा स्वभाव का था। किन्तु वह आवश्यकता के अनुसार निर्भयता और वीरता के गुणों से भरपूर न था। जवाहरसिंह को न ईश्वर से भय था और न मनुष्य से वह अपने इरादों को पूरा करने तथा बदला लेने में दोनो मनुष्य और ईश्वर का सामना करने के लिए तैयार रहता था वह रणकुशल प्रबन्ध करने में योग्य, फुर्तीला, चतुर तथा वीर होने के कारण जन्म से ही शासक होने के योग्य था। किंन्तु महाराजा सूरजमल को उसकी निरंतर लडाकू प्रवृत्ति होने से भय था। कि कहीं ये जाट–जाति को नष्ट न कर दे इसी डर से वह जवाहर सिंह को राज्य देना नही चाहते थे। महाराजा सूरजमल जितने मितव्ययी थे, जवाहर सिंह उतने ही अपव्ययी। यही कारण था कि उन्होनें अपनी एक अलग पार्टी बना ली। अलग दरबार और सेना रखने लगे, जिसका कि खर्च सूरजमल को स्वीकार किये हुए धन से कहीं अधिक था। महाराजा सूरजमल ने जवाहर सिंह को अल्हडपन–युक्त वीरता से खूब लाभ उठाया। कठिन से कठिन मोर्चो पर उन्हें भेजा गया कुछ दिन बाद डीग का इलाका जवाहर सिंह को सौंप दिया। किंन्तु उनका खर्च डीग के इलाके की आमदनी से कहीं अधिक बढ़ चुका था। साथ ही जवाहर सिंह को कुछ ऐसे साथी मिले जिन्होंने उनको अपने पिता के विरुद्ध भड़का दिया था।[10]

जैसा कि पूर्व के अध्याय में वर्णन किया जा चुका है, कि 25 दिसम्बर, 1763 ईं में नजीबुद्दौला से युद्ध करते समय सूरजमल वीरगति को प्राप्त हुआ। जवाहर सिंह सूरजमल का सब से बडा औरस पुत्र तथा उसकी प्रिय रानी किशोरी का दत्तक पुत्र था। अपने पिता के जीवनकाल में ही उसने अपनी योग्यता एवं सैनिक क्षमता सिद्ध कर दी थी। उसके अन्य भाई उसके मुकाबले में अयोग्य और कमजोर थे इतना सब होने पर भी जवाहर सिंह को अपने पिता का उत्तराधिकार आसानी से नही मिला। सूरजमल की मृत्यु के पश्चात रानी हँसिया का भाई बलराम जो कि महाराज सूरजमल की सेना का एक बडा सरदार और नाहर सिंह का मामा था,[11] वह चाहता था कि नाहर सिंह को भरतपुर का राजा बनाया जाए।

इस समय जवाहर सिंह फर्रुखनगर में था। अधिकांश उच्च पदाधिकारी व दरबारी जवाहर सिंह से असंतुष्ट थें, क्योंकि उसका स्वभाव क्रोधी और अधीरतापूर्ण था, साथ ही उसमें आत्मसंयम का भी अभाव था। जाति के प्रतिष्ठित व्यक्ति इस महत्त्वपूर्ण मामले का निर्णय करने ही वाले थे कि भाग्यवश उसी समय जवाहर सिंह का संदेशवाहक वहाँ आ पहुँचा। उसने सरदारों से कहा कि अपने स्वामी का साथ छोडकर चले आने वालों ने बहुत ही अनुचित कार्य किया था। अब उसका बदला लेने के बजाय वे यह सोच रहे थे कि उसका उत्तराधिकारी कौन हो। साथ ही जवाहर ने यह कहला भेजा कि उस समय वह स्वयं अपने जन्मसिद्ध अधिकार का दावा नही करेगा, किन्तु सब से पहले वह अकेला ही अपनी अल्प सैनिक शक्ति के साथ अपने पिता के हत्यारे पर आक्रमण करके मृत्यु का बदला लेगा। उसके बाद ही विचार करेगा कि पिता की गद्दी पर बैठने का वास्तविक में कौन उत्तराधिकारी है? जवाहर सिंह की इस एक ही धमकी से सभी दरबारी व नाहर सिंह जो स्वभावतः भीरु और साहसीन व्यक्ति था, भयभीत हो गया बलराम ने उसे समझाया और उत्साहित भी करना चाहा, किन्तु डीग में रुककर युद्धानुभवी जवाहर से संघर्ष करने का साहस उसमें नही था। उसने जान लिया कि पिता की गद्दी प्राप्त करने का अवसर निकल चुका है, अतः कभी उचित अवसर आने पर ही अपने उत्तराधिकारी को प्राप्त करने के लिए पुनः प्रयत्न किए जाएं। इसलिए वह उसी रात अपनी पत्नी सहित कुम्हेर भाग गया, वहाँ से अपने कुटुम्बियों व अपने पक्ष के कुछ सरदारों के साथ धौलपुर भाग गया। वहाँ पर वह ऐसे उपयुक्त समय की प्रतिक्षा करने लगा जब पुनः राज्य प्राप्ति का दावा कर सके।

एक ही समयानुकूल साहसपूर्ण प्रहार से जवाहर सिंह ने बलराम की सम्पूर्ण योजना समाप्त कर दी थी। बलराम के पास अब कोई ऐसा बहाना नही रह गया था वह जवाहर सिंह के उत्तराधिकार को चुनौती दे सकता। एकमात्र साधन था नाहर सिंह, किन्तु अब तक वह वहाँ से भाग चुका था। नाम तो उसका नाहर और सिंह दोनो ही था, लेकिन उसका दिल किसी मेमने जैसा था। इसी समय जवाहर सिंह एक तेज चलने वाले ऊँट पर सवार होकर स्वयं डीग आ पहुँचा। बुद्धिमान और नीतिनिपुण बलराम ने समझ लिया कि अब जवाहर के समक्ष आत्मसमर्पण करने के अलावा अन्य रास्ता नही है। उसने जवाहर सिंह के उत्तराधिकार की घोषणा करवा दी। इस प्रकार साहस और चातुर्थ से जवाहर सिंह ने उत्तराधिकार प्राप्त किया और 30 दिसम्बर, 1763 ई में डीग में राजगद्दी पर बैठा।[12]

महाराजा सूरजमल की जिस समय मृत्यु हुई थी, उस समय भरतपुर राज्य का विस्तार और वैभव इस प्रकार था – आगरा, धौलपुर, मैनपुरी, हाथरस, अलीगढ़, ऐटा, मेरठ, रोहतक, फर्रुखनगर, मेवात, रेवाड़ी, गुडगांव और मथुरा जाटों के अधिकार में थे। गंगाजी का दाहिना किनारा इस जाट–राज्य की कोई भी सरहद, चम्बल नदी दक्षिणी सीमा एवं जयपुर पश्चिमी सीमा और दिल्ली उत्तरी सीमा थे।

इसकी लम्बाई पूर्व से पश्चिम की ओर 200 मील (लगभग 322 किमी.) और उत्तर से दक्षिण की ओर 150 मील (लगभग 241 किमी.) के लगभग थी।

राज्य की आर्थिक स्थिति के बारे में फादर वैंदेल लिखता है कि–खजाने और माल के विषय में जो कि सूरजमल ने अपने उत्तराधिकारी के लिए छोड़ा भिन्न–भिन्न मत है। कुछ इसे नौ करोड बताते है और दूसरे कुछ कम। सूरजमल ने अपने उत्तराधिकारी के लिए 5 हजार घोड़े, 60 हाथी, 1500 सवार, 25 हजार से अधिक पैदल सैनिक, 300 तोपें और उतना ही बारूद–खाना तथा अन्य युद्ध का सामान छोडा। 'सियार' का लेखक लिखता है –''सूरजमल के तबेले में 12000 घोडे उतने ही चुनिंदा सवारों सहित थे जिनको कि उसने दूसरों के घुडसवारों पर निशाना लगाने का और फिर अपनी बंदूकें सुरक्षित होकर भरने के लिए चक्कर लगाने का अभ्यास कराया था। यह आदमी रोजाना के अभ्यास से इतने निपुण और भयानक निशानेबाज बन गये थे कि हिन्दुस्तान में कोई भी ऐसी सेना नही थी जो खुले मैदान में उनका सामना कर सकें और न ऐसे राजा के विरुद्ध लडाई मोल लेना ही फायदा के लिए सम्भव समझा जा सकता था''।

फिर भी जवाहर सिंह अपने पिता की हत्या का बदला लेने के लिए नजीबुद्दौला (नजफ खाँ) पर आक्रमण करना चाहता था।[13]

महाराजा जवाहरसिंह और नजीबुद्दौला

जिस समय जवाहर सिंह भरतपुर की गद्दी पर बैठा, वहाँ सभी राजसी ठाठ–वाट उपस्थित था। किन्तु वास्तव में उत्साह का वातावरण नही था। अनेक सरदारों के ह्रदय आशंका से भरे हुए थे, वह सोच रहे थे कि उनकी मान–मर्यादा सुरक्षित नही है। उन्हें विवश होकर जवाहर सिंह को राजा मानना पडा। वह तो नाहर सिंह की ताजपोशी के लिए उपस्थित थे, इसलिए उन्हें मन मारकर जवाहर सिंह की ताजपोशी में शामिल होना पड़ा था, अन्यथा उनमें से अधिकांश इस दरबार में उपस्थित भी नही होते। जवाहर सिंह के सिंहासनरुढ होने के उपलक्ष्य में आयोजित उत्सव के बाद अधिकांश सरदार अपनी–अपनी जागीरों को चले गये। उन्होंने नये राजा को सहयोग नही किया। अनेक प्रकार के बहाने बनाकर इधर–उधर हो गये। बलराम भरतपुर का गर्वनर भी था। उसने भरतपुर का किला बन्द कर लिया, जिसमें राजा का खजाना भरा हुआ था। ताजपोशी की रस्म समाप्त होने के उपरान्त जवाहर सिंह महलों में माताओं का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए गया जहाँ रानी हँसिया के अलावा सभी माताएँ उपस्थित थीं।

जवाहर सिंह के सिर पर शानदार पगडी बँधी हुई थी, उस पगडी को देखकर राजमाता ने रोते हुए कहा, एक कवि ने मार्मिक वर्णन किया है–

''ओ बेटा तेरे सिर पगडी बँधे लाज न आवत तोय।
जा पगडी की लाज देखि दिल्ली में गई खोय।।
दिल्ली में गई खोय पजरि रहे पीते।
तेरे पिताय मारि तुर्क फिरै रण जीते।।
पड़ी बाप की पगडी, दिल्ली रही मुगल की ठोकर खाय।
दिल्ली सर कर इन कथन हाथन तें, क्षत्रिय की लेइ लाज बचाय।''[14]

रानी किशोरी ने उपालम्भ दिया बेटा तेरे पिता की पगड़ी तो दिल्ली के युद्ध–क्षेत्र में मुगलों की ठोकर खा रही है, यह पगडी तेरे सिर पर कैसे आ गई। महारानी किशोरी की उलाहना क्षत्राणी उचित गरिमा और शौर्य से परिपूर्ण है। माता के वचन सुनकर जवाहर सिंह के नेत्र करुणा और क्रोध से लाल हो गए, भुजा और होंठ फडफडाने लगे, उसने रुँधे गले से कहा, ''माँ मुझे इसका ख्याल है, तेरे आशीर्वाद से सभी काम पूरे करुँगा।''

बलराम इस समय सबसे शक्तिशाली था। जवाहर सिंह से उसने साफ कह दिया कि जहाँ–जहाँ सूरजमल के खजाने छिपे पडे है, वह उन्हें नही बतलाएगा। नाहर सिंह धौलपुर मैं बैठकर उसे गद्दी से उतारने की मराठों से साजिश कर रहा था। बैर के राजा बहादुर सिंह ने जवाहर सिंह को राजा मानने से इंकार कर दिया और वह स्वयं स्वतंत्र शासक बनने के प्रयत्न करने लगा। राजा के कई उच्च पदाधिकारियों ने युवक राजा जवाहर सिंह को हिसाब देने और शेष

द्रव्य लौटाने से मना कर दिया। जवाहर सिंह के हाथ में अभी सत्ता आई थी इसलिए वह उन्हें मजबूर नही कर सकता था।

कुछ समय तक जवाहर सिंह शांत बना रहा। उसने अपने उद्दण्ड सरदारों की हरकतों को नजरअंदाज कर दिया। आम लोगों के हृदय में सूरजमल के खून का बदला लेने के ज्वालाएं उठ रही थी, और अधिकांश सरदार भी इस पक्ष में थे, किन्तु जवाहर सिंह को इसका श्रेय देना नही चाहते थे। जब जवाहर सिंह ने इस बात का प्रस्ताव किया तों किसी ने भी उसका अनुमोदन नही किया। जवाहर सिंह ने स्पष्ट शब्दों में उनको भला–बुरा कहा और धमकी दी कि यदि उसे रुपया मिल जाए तो वह अकेला ही दिल्ली पर हमला करेगा। इस समय दिल्ली का साविक बजीर गाजीउद्दीन, इमादुलमुल्क 1760 ईं से भरतपुर में कैद था। उसने भी जवाहर सिंह को दिल्ली के मौजूदा बजीर नजीबुद्दौला खां के विरुद्ध भडकाया। वह जवाहर सिंह को प्रसन्न करके दिल्ली की बजारत हथियाना चाहता था। जवाहर सिंह ने अपनी माता किशोरी से आर्थिक सहायता के लिए निवेदन किया जिसने अपने दत्तक पुत्र को दिल्ली पर आक्रमण करने की अनुमति दे दी और आवश्यक आर्थिक सहायता भी की। इस सहायता के सम्बन्ध में बलराम को कोई भेद मालूम न हो सका।[15]

माता किशोरी से अपार धन–सम्पत्ति प्राप्त करके जवाहर सिंह ने बडे पैमाने पर युद्ध की तैयारी आंरम्भ कर दी। सर्वप्रथम उसने अपनी सेना का चढ़ा हुआ वेतन देकर उनको संन्तुष्ट किया। महाराजा सूरजमल इस सेना को दो वर्ष का वेतन नही दे पाये थे। फर्रुखनगर में जो सेना उसके अधीन थी और जिसने विलोचियों को परास्त करने में विशेष वीरता दिखाई थी, उसे इनाम दिए गये। जवाहर सिंह ने अपने राजदूत रुपराम कटारिया को दक्षिण में मल्हारराव होल्कर के पास मेजा और पेशवा को भी सहायता के लिए लिखा। रुपराम ने 22 लाख रुपये में होल्कर से 20 हजार सैनिक लेना तय कर लिया। पेशवा ने मल्हारराव को संदेश भेजा कि युद्ध में जवाहर सिंह की सहायता की जावे और नजीब खां से पानीपत के अपमान का बदला लिया जावे। इसके अलावा उसने 15 हजार सिक्ख सेना भी सहायता के लिए बुलाई। यह तैयारियाँ एक एक लम्बे समय तक चलती रही, अतः यह नजीबुद्दौला से छिप नही सकीं। रुहेला के सरदार नजीब खां ने जवाहर सिंह को अनेक प्रकार से सुतुष्ट करना चाहा किन्तु उसकी क्रोद्याग्नि शाान्त नही हुई। अन्त में उसने कहला भेजा कि जो कुछ आपके पिता के भाग्य में लिखा था, वह हो गया। यदि मेरे साथ लड़कर आप उन्हें जीवित कर सकते हो तो लड़े। मैंने आपके राज्य का कोई हिस्सा नही दबाया है, फिर आप व्यर्थ ही मुझसे लड़ाई क्यों मोल लेते है? हार–जीत तो भगवान के हाथ में है। अपने महान नरेश के घातक को दण्ड देना समस्त जाट जाति के लिए आत्म–सम्मान का विषय बन चुका था। कुछ विरोधियों के अलावा सभी जवाहर सिंह के पक्ष में आ चुके थे। यदि जाट लोग खून का घूँट पीकर रह जाते और बदले की कोशिश न करते तो उनकी प्रतिष्ठा बिल्कुल मट्टी में मिल जाती।[16]

नजीब खां ने होल्कर को जवाहर सिंह से अलग करने की कोशिश की, उसने होल्कर से कहा कि हम दोनों में पुरानी मित्रता है। मैंने आपकी पानीपत में सहायता की थी। होल्कर ने नजीब को विश्वास दिलाया और कहलवाया कि वह युद्ध में एकमात्र समृद्धशाली जाट नरेश से रुपये ऐंठना

चाहता है आपको परेशान नही करना चाहता। जैसे ही बलराम हिन्डन से डीग को रवाना हुआ था। कि रुहेलों ने बल्लभगढ़ के आस–पास के परगने छीन लिए और वहाँ के तहसीलदार को बिना सामना किए पीछे हटा दिया जवाहर सिंह ने अब अप्रेल 1764 ईं मे उन परगनों को छीन लिया और वल्लभगढ के दुर्ग में भारी मात्रा में गोला बारूद और तोपे एकत्रित कर ली इस स्थान को ही आधार बना कर वह दिल्ली पर आक्रमण करना चाहता था। अक्टूबर 1764 ईं के अंत मे एक विशाल सेना ने दिल्ली के किले को घेर लिया इतनी बडी सेना अभी तक दिल्ली के किले पर हमला करने को नही आई। यह सेना सूरजमल के खून का बदला और पानीपत की मुस्लिम विजय को धूल धुसरित करने के लिए दिल्ली पर तूफान की तरह उमडती चली गई। जवाहर सिंह स्वयं 60 हजार सेना और सौ तोपें लेकर आया था और 25 हजार मराठे सैनिक मल्हारराव होल्कर के अधीन थे। एवं 15 हजार सिक्ख सेना भी जवाहर सिंह के कहने पर दिल्ली पहुँच चुकी थी। इतनी विशाल सेना 1760 ईं में अहमदशाह अब्दाली को परास्त करने के इरादे से भाऊ के नेतृत्व में दिल्ली पहुँच चुकी थी। इस अवसर पर राजमाता किशोरी[17] तथा फ्रांसीसी जनरल समरु[18] भी जवाहर के साथ थे। जवाहर सिंह ने इतनी तैयारी सिर्फ मामले को शीघ्र तय करने को की थी। उधर नजीब खां ने यह देखा कि इस भयंकर तूफान से बचना कठिन है तो उसने किले से अपने बाल बच्चे और धन दौलत को निकाल कर सक्कर ताल (जिला सहारनपुर) भेज दिया और दिल्ली के चारों ओर खाइयाँ खुदवा का मोर्चा ले लिया और उसने अपने रुहेले भाईयों को सहायता के लिए बुलाया तथा अहमदशाह अब्दाली को भी कई प्रार्थनापत्र भेजे गये कि उसे इस जाट आक्रमण से बचाया जावे।

दिल्ली को जाटों ने चारों तरफ से घेर लिया नगर के उत्तर में मराठा सेना तैनात की गई, उत्तर–पश्चिम में सिक्ख, यमुना के पूर्वी किनारे उसने अपने तोपखाने का कुछ हिस्सा लगा दिया और बाकी सेना को अजमेरी व दिल्ली दरवाजे के सामने लगाया। कई दिन तक रुहेले और मुगल किले से बाहर नही निकले। उत्साही जवाहर सिंह ने नजीब खां को चुनौती दी कि इस प्रकार किले में छिपे रहने से तुम्हारे प्राण नही बच सकते। बहादुरों की तरह बाहर आकर शक्ति परीक्षा करो। वह अपनी सेना सहित दिल्ली से 5–6 कोस (लगभग 15 किमी.)फरीदाबाद की तरफ पीछे हट गया और अफगान सेना को मैदान में आने का मौका दिया। नजीब खां क्रोधित होकर दलबल सहित 15 नवम्बर, 1764 ईं को किले से बाहर निकला और दोनों पक्षों में जमकर युद्ध हुआ।

दोंनों पक्षों के लगभग एक–एक हजार सैनिक मारे गये और यवन युद्ध भूमि छोडकर किले के भीतर भाग गये। जवाहर सिंह शाहदरा को लूटा, फिर फिरोजशाह के किले तक आगे बढकर रुहेलों की खाईयों के सामने आ गया और मल्हारराव अपनी सेना के साथ निकला, परन्तु जवाहर की सेना के बहुत पीछे शेरशाह के किले के पास रुका रहा। जवाहर सिंह ने बार बार आगे बढने को कहा, परन्तु उसने अनसुनी कर दी और वह रट लगाता रहा कि जब तक पुराने किले में से सब रुहेलों को न निकाल दिया जाए तब तक आगे बढने में खैर नही है। उस दिन दोनों ओर से गोरीबारी हुई, किन्तु भीषण युद्ध नही हुआ।

जवाहरसिंह को जब यह ज्ञात हो गया कि दिल्ली के दक्षिण में नजीब खाँ ने खाइयाँ खुदवा रखी हैं जिसके कारण नगर के निकट नहीं जाया जा सकता है, तब उसने अपनी युद्ध योजना बदल दी। अब उसे अपने मराठा मित्रों पर विश्वास नहीं रहा। 16 नवम्बर के सुबह उसने बलराम और अपने गुरु रामकृष्ण महन्त तथा जोधपुर के ब्राह्मण सवाई राम को आठ हजार सवारों सहित अमली–घाट के पास यमुना पार करने के लिए भेजा और यह आदेश दिया कि पश्चिमी तट पर रुहेलों के जो सवार पहरा दे रहे हैं, उन्हें खदेड कर भगा दिया जावे और नजीब के नावों के पुल के पूर्वी सिरों पर जो एक सौ रुहेले बन्दकूची गश्त लगा रहे हैं, उन्हें दवा दिया जावे और फिर पुल से धावा करके पीछे की ओर से नजीब की खाइयों में प्रवेश किया जाए। जवाहरसिंह ने सामने से हमला कर दिया, यदि आक्रमण एकदम होता तो यह योजना सफल हो सकती थी, किन्तु जाट सैनिक रास्ते में रुक कर अनाज की सम्पन्न मण्डी पटपडगंज को लूटने में लग गए और इस प्रकार उन्होने समय नष्ट कर दिया। शाहदरा के नवाब के 500 तुर्की सवारों और नासिर खाँ दुर्रानी के नेतृत्व में 600 सौ अफगान सवारों ने मिलकर उन पर हमला किया वह पूरे जोश और उत्साह के साथ लडे, किन्तु जाटों ने उनको काट कर गिरा दिया। नजीव खाँ ने किले की बुर्ज पर बैठकर दूरबीन से सारी स्थिति को भाँप लिया। उसने खाइयों के अफसरों को सचेत किया और चुने हुए एक हजार रुहेले सैनिक नावों द्वारा पूर्वी तट पर भेजे कि वे जाटों को आगे नहीं बढने दें। ये रुहेले खन्दकों में छिप गये और जैसे ही जाट सवार आगे गढे कि उन पर गोलियाँ चलाना शुरु कर दिया। दोनों पक्षों के सैनिक घोडों से उतरकर जमीन पर तलवारों से युद्ध करने लगे। जवाहरसिंह अपनी सेना की स्थिति देख रहा था। उसने शीघ्र ही उमरावगीर गुसांई के नेतृत्व में सात सौं नागा सवार सहायतार्थ भेजे। सूर्यास्त तक घमासान युद्ध होता रहा। नजीव खाँ के सैनिक हार मानकर अपने डेरों में पीछे हट गये। यदि नागा लोग आकर प्राण–पण से नहीं लडते तो सभी सैनिक मारे जाते। यदि जवाहरसिंह की यह योजना सफल हो जाती तो उसी दिन दिल्ली के किले पर उसका अधिकार हो जाता, किन्तु वास्तव में बलराम शत्रु का सहयोग कर रहा था, इसलिए उसने इस योजना को सफल नहीं होने दिया, क्योंकि वह नहीं चाहता था कि दिल्ली विजय का श्रेय जवाहरसिंह को मिलें। 18 नवम्बर को समस्त जाट सेना यमुना पार करके पूर्वी किनारे पर पहुँच गई। वहाँ उसने नदी के किनारे तोंपे जमा दीं और दिल्ली नगर पर गोले बरसाने शुरु किए, क्योंकि नगर की पूर्वी सीमा पर गोलों को रोकने के लिए कोई दीवार नहीं थी। इस सेना ने शाहदरा को लूटा जहाँ दिल्ली में बेचने के लिए काफी मात्रा में अन्न भरा पडा था। मकान जला दिये गये और फर्श खोदे गए सारा नगर नष्ट कर दिया गया इसके बाद दिल्ली शहर पर पूर्व की तरफ से गोले फेंकने शुरु किए। कुछ गोले शाही–महलों के अन्दर भी गिरे जिनसे बहुत से लोग मारे गये। दीवान–ए–खास का एक काँच का तिपाया टूट गया। नजीब की सेना ने रेती को छोडकर नगर के अन्दर शरण ली। नजीब खाँ बुलन्द बाग की हवेली में फर्श को खुदवाकर उसके नीचे कमरा बनवा कर रहने लगा। इस कमरे की छत पर तख्ता बिछवाकर काफी मिट्टी डलवायी गई जिससे कि गोले का प्रभाव न हो। एक गज ऊँची दीवार मिट्टी की बनाकर उसके पीछे रुहेले छुप गये और दुर्ग प्राचीर पर लगी तोपों से पुल की रक्षा करते रहे। शत्रु के गोलों से नगर के

अन्दर बहुत से आदमी मारे गयें। इस प्रकार यह गोली बारी 15 दिन तक चलती रही प्रतिदिन जवाहरसिंह प्रातःकाल अपनी तोपों को घसीटकर नदी के तट पर ले जाता था वहाँ दिन भर उन्हें चलाता था और सूर्यास्त के समय अपनी पंक्ति में ले जाता था इस गोली बारी से सारे शहर में हाहाकार मच गया लोगों का घरों मे से निकलना बन्द हो गया। वह भूखे मरने लगे नजीब की सेना का भी यही हाल हो गया लेकिन उसने आत्मसमर्पण नहीं किया वह अपने मित्र मल्हारराव होल्कर से मिलकर संधि की चर्चा चलाने लगा।[19]

नई युद्ध योजना के अनुसार जवाहरसिंह अपनी सेना के साथ दिल्ली के पूर्व में आ गया मराठा सेना इस तट पर जाटों के उत्तर में रही और सिक्ख सरदार पश्चिमी घाट पर राजधानी के उत्तर और पश्चिम की तरफ डट गये सिक्खों को यह काम दिया गया कि वह उत्तर–पश्चिम के इलाके में घुस कर दिल्ली में खाद्य सामग्री न आने दे इस प्रकार यवनों के लिए केवल दक्षिण के दरवाजे खुले रह गये थे, किन्तु वह जवाहरसिंह के राज्य के सामने थे और उधर का मार्ग जाटों के वल्लभगढ के किले से रुक गया था इस प्रकार दिल्ली नगर में कही से कोई खाद्य सामग्री नहीं पहुँच सकती थी प्रतिदिन सिक्ख सवार नगर के बाहर की बस्तियों को लूट लिया करते थे खाद्य सामग्री को छीन कर अपने प्रयोग में लाते रहते थे इन सवारो ने दिल्ली शहर के निकट पहुँच कर गडबडी पैदा की किन्तु उनके पास तोप खाना न था। इसलिए किले की तोपों की मार से वह भाग गये।

जाट और सिक्ख सेना ने 4 जनवरी 1765 ई. को सब्जी मण्डी व घोडो के बाजार में अफगानो से भयंकर युद्ध किया। इसमें दोनों पक्षो के बहुत से सैनिक मारे गये। रुहेले भागकर शहर में घुस गये परिणाम निर्णायक नहीं रहा अब जवहारसिंह ने चारों तरफ से दिल्ली का दृढ घेरा डालकर निश्चय कर लिया कि जब तक नजीव खा आत्मसमर्पण नहीं करेगा वह घेरा नहीं उठायेगा नजीव खा के सामने भी यही प्रश्न था कि या तो भूखे मरो या शत्रु के सामने आत्मसमर्पण कर दो। सम्पूर्ण नगर में बाजार बन्द थे लोग भूखे मर रहे थे वह शाही महल के चारों ओर शोर मचाते कि सन्धि करके उनके प्राणो की रक्षा करों मगर नजीव स्वयं दूसरी चाल चल रहा था। दूसरे दिन तथा नये शहर के हजारों व्यक्ति जाट कैम्प में घुस पडे और एक–एक मुटठी अनाज की भीख मांगने लगे ये नगर वासियों का खुला आत्म समर्पण था। अब सारा दिल्ली नगर खाली हो गया उसके रक्षक रक्षा पंक्तियों को छोडकर किले के अन्दर भाग गये।[20]

इस प्रकार फरवरी के प्रथम सप्ताह तक लडाई जारी रही इस घिरे हुए नगर में अन्न एवं खाद्य सामग्री की कमी पराकष्टा पर पहुच चुकी थी। जाट और मराठा सेनाऐं बाहर खूब आनन्द कर रही थी। और उनके रसालें के घोडे खूब मोटे हो गये थे। लोग नगर छोड कर जाट शिविर में भीख मागते फिरते थे या अन्यत्र चले गये थे। रुहेले सैनिको ने नजीब से एक बार धावा करने और हाथ में तलवार लेकर मर मिटने की इजाजत मागी वह अन्नाभाव से मरने की अपेक्षा युद्ध भूमि में मरना श्रेयस्कर समझते थे। किन्तु नजीव ने ऐसा नहीं किया क्योंकि जब जवाहरसिंह को पूर्ण विजय मिलने को थी। जो उनके नमक हराम दोस्त मल्हारराव होल्कर ने जवाहरसिंह के विरुद्ध नजीव खा का पक्ष ले लिया। उसे मल्हारराव द्वारा चुपके–चुपके आश्वासन मिल चुका था कि वह उसे कोई

हानि नहीं होने देगा। वह एक बहुत बडी धनराशि रुहेलों से खा चुका था इसलिए अब उसने प्रत्यक्ष रुप से जवाहरसिंह पर सन्धि का दवाब डालना प्रारम्भ कर दिया इस प्रकार से होल्कर ने जवाहरसिंह की आशाओं पर पानी फेर दिया। फादर वैंदेल लिखते है कि ''मल्हारराव ने बडी लापरवपाही और खुल्लम–खुल्ला नजीव खाँ की तरफदारी की ऐसे समय पर जबकि रुहेले बिना किसी शर्त के आत्मसमर्पण करने वाले थे, उसने तमाम मामले को बिगाड दिया महाराज जवाहरसिंह को विवश होकर सन्धि की स्वीकृति देनी पडी।''[21] गाजीउद्दीन इमाद–उल–मुल्क जो अपने शाही मालिकों के साथ सदैव दुरंगी चाल चलता था। नजीव खाँ से मिल गया उसने भी जवाहरसिंह को धोखा दिया। उस जवाहरसिंह को जो अपना सब कुछ दाँव पर लगा कर उसे भारत की बादशाहत का वजीर बनाने आया था वह नासमझ बालक वृद्ध मल्हारराव और चतुर नजीव खाँ की बातों में बहक गया था। जवाहरसिंह व उसके पिता ने इसे कई बार बचाया था। इस समय मल्हारराव तथा इमाद गुप्त रुप से नजीव खाँ से पत्र–व्यवहार कर रहे थे। इस पत्र–व्यवहार का जिक्र नजीव के कारिन्दे (लेखा–जोखा करने वाला) नरुददीन हुसैन ने नजीव की जीवनी में किया है। बलराम, मोहनराम इत्यादि गुप्त रुप से षडयंत्रकारियों से मिले हुऐ थे। इस पूरे षडयन्त्र का शनैः–शनैः जवाहरसिंह को पता चल गया। इसके बाद उसने अनुभव भी कर लिया कि मराठा, सिक्ख तथा स्वयं उसके सरदार केवल बातों का जमा खर्च कर रहे है, वह शत्रु को परास्त करने की इच्छा नहीं रखते। उसकी प्रिय प्रेयसी गन्ना बेगम से उसे यह जानकारी मिल चुकी थी कि कुछ नमकहरामी उसे शत्रु के जाल में भी फँसा सकते है।[22]

जवाहरसिंह और नजीब खाँ के मध्य सन्धि

जवाहरसिंह के दिल्ली अभियान की युद्ध–व्यूह रचना का विश्वासघाती, धोखेबाज मल्हारराव होल्कर ने सारे मंशूबो पर पानी फेर दिया। थोडे से लाभ के लालच में आकर होल्कर ने अपने मित्र जवाहरसिंह के साथ विश्वासघात कर दिया। फादर वैंदेल लिखता है कि ''मल्हारराव होल्कर ने अत्यधिक सुस्ती और खुले रुप से नजीब का पक्ष लेकर सारी योजना को खराब कर दिया।'' उसने नजीव खाँ से रुपये ऐंठ लिए थे और जवाहरसिंह को धोखा दिया। मल्हारराव होल्कर के चरित्र में मानवता की अत्यधिक कमी थी वह कमी तो सभी मराठा सरदारों के चरित्र में थी किन्तु होल्कर इस विषय में इन सबसे आगे था। रुपयों के लालच में वह मान–मर्यादा और स्वाभिमान का बिलकुल ध्यान नहीं करता था। पानीपत के तृतीय युद्ध में इसी नजीव ने मल्हारराव के भाईयो को चुन–चुनकर कटवाया था। इसी नजीव ने उसकी बहन–बेटियों को अहमदशाह अब्दाली के शिविर में भेड–बकरियों की तरह प्रवेश कराया था। वहीं आज उसी नजीव खाँ से रुपये लेकर उसका मित्र बन गया था। इसने जवाहरसिंह के सामने उस समय सन्धि–प्रस्ताव रखा जब रुहेले बिना शर्त आत्म समर्पण करने वाले थे। अन्त में उसने इस सन्धि को स्वीकार करने के लिए जवाहरसिंह को मजबूर कर दिया।

अब नजीव खाँ ने मल्हारराव होल्कर से मिलकर जवाहरसिंह के साथ सन्धि करने की बातचीत शुरु की। इन वार्ताओं में नजीव की तरफ से सुजान मिश्र, राजा चेतराम, तेजराम कोठारी और नवाब जाब्ता खान, तथा जवाहरसिह की ओर से रुपराम कटारिया और गंगाधर तात्या शामिल थे। नजीबुददौला ने अपने दूतों द्वारा सन्धि–पत्र जवाहरसिंह के पास भेजा।[23] जवाहरसिंह ने उत्तर दिया कि ''निर्णय युद्ध में ही होगा, मैं नजीबुददौला का सिर चाहता हूँ।'' इसके पश्चात 9 फरवरी 1765 ई. को नजीबुददौला अपने साथी मल्हारराव होल्कर के साथ जाकर शाहदरा के शिविर में जवाहरसिंह से मिला।

मल्हारराव होल्कर ने जवाहरसिंह को इस शर्त पर राजी कर लिया कि शहजादी का डोला और युद्ध का सारा खर्च नजीबुददौला के ऊपर है, आप स्वीकार कर लीजिए। सन्धि स्वीकार कर ली गई। इसके अनुसार नजीबुददौला ने सम्राट की ओर से जवाहरसिंह को 60 लाख रुपये और शाहआलम द्वितीय सम्राट की शहजादी का डोला दे दिया।[24]

12 फरवरी को दिल्ली के 5 मील दक्षिण में ओखला के लिए जवाहरसिंह रवाना हो गया। मल्हारराव ने मित्र के साथ जो विश्वासघात किया था, उसका इनाम उसे मिल गया। 13 फरवरी को वह नजीव खां के दरबार में हाजिर हुआ, जहाँ उसे एक हाथी, दो घोडे, जवाहरात से भरी 9 तश्तरियाँ भेंट की गई। उसके सेवकों को 120 खिलअत प्रदान की गईं। 14 फरवरी, 1765 ईं को नबाव जाविद खाँ ने जवाहर सिंह से भेंट की और शाही युवराज की तरफ से एक हाथी और खिलअत भेंट की।[25]

यह दुर्भाग्य था कि जवाहर सिंह दिल्ली के सिंहासन पर बैठकर सम्राट घोषित होने ही वाला था किन्तु विवश होकर उसे यह सन्धि करनी पडी क्योंकि सिक्ख सेना के दिल्ली से चले जाने तथा मल्हारराव के नजीब की ओर हो जाने से जवाहर सिंह की सैन्यशक्ति काफी कम हो गई। वह यह भी जानता था। कि मेरी अकेली जाट सेना को शाही एवं मराठा सेना को जीतने में

काफी कठिनाईयाँ आयेंगी। अतः अप्रसन्न होते हुए भी उसने सन्धि की यह शर्त मान ली। यद्यपि दिल्ली के सिंहासन पर जाटों का अधिकार न हो पाया किन्तु उन्होनें दिल्ली नगर एवं लाल किले को अवश्य ही जीत लिया था। इससें भारत में जाटों की शक्ति का सितारा सबसे ऊँचा हो गया।

महाराजा जवाहर सिंह इस सन्धि से लेशमात्र भी प्रसन्न न था। यह तो उसके विश्वासघाती मित्र होल्कर ने जवरन उसके सिर पर थोपी थी। सन्धि होते ही वह दिल्ली छोड़ गया। शिष्टता के नाते जवाहर सिंह को नजीव खाँ के यहाँ वापसी में मुलाकात अदा करने जाना चाहिए था किन्तु स्वाभिमानी जवाहर सिंह इसकी परवाह न करके डीग को लौट गया। उसे इस युद्ध में एक करोड़ 60 लाख रुपये खर्च करने का नुकसान हुआ, इसके अलावा 12 लाख का मराठों को वचन दे चुका था। इस युद्ध में जवाहर सिंह को कोई आर्थिक लाभ नही हुआ, उसे विशेष लाभ यह हुआ कि नजीव खाँ सदैव उससे डरता रहा और जवाहरसिंह के जीते जी उसने जाट–राज्य में पैर न मारा। इस अभियान से प्रभावित होकर बहुत से सैनिक अधिकारी उसके विश्वास में आ गये और उसके भाई–बन्धु भी उसे अधिक इज्जत की नजर से देखने लगे।

ठा. गंगीसिह के अनुसार गुलजार चमन के लेखक हरचरन कहता है कि जवाहरसिंह के दिल्ली पहुँचने के समय से ही नजीव ने सन्धि के प्रस्ताव रखे थे किन्तु पिता की हत्या का बदला लेने के लिए उसने सभी प्रस्तावों को ठुकरा दिया। नजीव खाँ ने जवाहर सिंह के शिविर में पहुँचकर क्षमा माँगी थी।[26]

यहाँ इस बात की गंभीरता पर भी विचार करने की आवश्यकता है कि जब दिल्ली विजय के निकट पहुँचने एवं उस पर अधिकार करने मे सफल हो चुके जवाहरसिंह को मराठों, सिक्खों एवं भरतपुर के कुछ सरदारों ने जिनमें बलराम सिंह प्रमुख है, धोखा देकर उसे गौरव से वंचित कर दिया कि जवाहरसिंह दिल्ली की गद्दी पर न बैठ पाये। यह दुर्भाग्य जाट जाति को आज तक अखरता है, कि जाटों के सौभाग्य सूर्य को चमकता हुआ कोई भी नही देखना चाहता था। फिर भी दिल्ली की लड़ाई की लूट में जाटों को बहुत से जवाहरात और कीमती सामान हाथ लगे। 'अष्टधातु' नाम का दरवाजा जिसे अकबर के मुगल सैनिक चित्तौड के किले से लाए थें, उन्हें लाल किले से उतरवाकर जवाहरसिंह ने भरतपुर पहुँचाया, जो आज भी भरतपुर के किले में चढे हुए देखे जा सकते हैं। दिल्ली के लाल किले से लाया हुआ संगमरमर का सिंहासन डीग के किले मे मौजूद है। भरतपुर के देहाती क्षेत्र में आज भी ऐसी अनेक चीजें पाई जाती है। जिन्हें वे देहली की लूट से लाया हुआ बतलाते है।

जाटों मे 'दिल्लीवारे की लूट' नाम की कहावत, भी प्रचलित है। दिल्ली से ड़ीग आते समय जवाहरसिंह ने रास्ते में नव मुस्लिम जाटों को शुद्ध करके हिन्दू बनाया। वे जाट आज तक हिन्दू है।[27] जवाहरसिंह ने उस शहजादी को अपने सेनापति फ्रांसीसी कप्तान समरु को दे दिया जो उसकी बेगम बनी, जिसने दिल्ली मुगल राज्य के बडे–बडे राजनीतिक कार्य सिद्ध किए।[28] दिल्ली के इस युद्ध में जवाहरसिंह के सेनापति बलराम मुगल वंश की कई बेगमों को अपने साथ ड़ीग ले आया था। ब्रज में एक कहावत प्रसिद्ध है कि–

पाले पड़ी बलराम के ठाड़े मटर चबाय।[29]

महाराजा जवाहरसिंह की मृत्यु

वीर और साहसी जवाहर सिंह जो अपने समय में उत्तरी भारत का एक शक्तिशाली राजा था, जिसके सैन्य बल से प्रभावित हो अंग्रेजो ने उसके साथ मित्रता के लिए हाथ बढ़ाया था। भरतपुर के ऐसे दैदीप्यमान सितारे का करुणाजनक अंत हुआ।

जन साधारण मे प्रचलित किवदंतियों के आधार पर ग्राउज ने अपनी पुस्तक ''ए डिस्ट्रीक मैमोयर्स ऑफ मथुरा'' में लिखा है कि 'जयपुर के राजा के इशारे पर किसी व्यक्ति ने जवाहरसिंह का आगरा में कत्ल कर दिया। कानूनगो के मतानुसार जयपुर के साथ हुए युद्ध के आठ महीने बाद ही उसका यों कत्ल किए जाने पर इस प्रकार का सन्देह होना स्वाभाविक है। यह सत्य है कि जयपुर का राजपरिवार इससे सदैव भयभीत रहता था, उन्हें जवाहरसिंह के मारे जाने पर अत्यधिक प्रसन्नता भी हुई होगी, किन्तु इस बात का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नही मिलता है कि उन्होनें ही ऐसा कराया हो। चहार 'गुलजार–ए–शुजाई' के लेखक के अनुसार ऐसा कहा जाता है कि जवाहरसिंह ने एक सैनिक को अपना सहयोगी एवं परम मित्र बना लिया था। उसे उच्च पद भी दिया गया। इस सैनिक से कोई अपराध या अनुचित कार्य हो गया था, इस कारण राजा ने उसको अपमानित करके उसके साथियों के समक्ष उसे नीचा दिखाया। अतः इस व्यक्ति ने अपने सम्मान के प्रति सजग होकर जवाहरसिंह का किसी भी प्रकार से कत्ल करने का निश्चय किया। एक दिन जाट राजा अपने कुछ साथियों के साथ शिकार के लिए गया, तब वह व्यक्ति भी उसी समय घोडे पर चढ़कर ढ़ाल और तलवार ले वहाँ जा पुहँचा तथा वहाँ कुछ अन्य व्यक्तियों के साथ जवाहरसिंह असावधान खडा था, तब इस व्यक्ति ने वहाँ जाकर जवाहरसिंह को अपनी तलवार से मार गिराया और चिल्लाया ''मेरी बदनामी और मेरा जो अपमान तुमने किया था, उसकी यह सजा है।''

इसी प्रकार 'सियार–उल–मुतखरिन' में गुलाम हुसैन लिखता है कि 'जवाहरसिंह' ने हैदर नाम के एक चोवदार को अपने सरदारों से भी ऊँचा अधिकार दे दिया था, जिससे उन लोगों को अत्यन्त ईर्ष्या हुई। उन्ही सरदारों ने किसी व्यक्ति को भड़काकर जवाहरसिंह का कत्ल करा दिया। लेकिन उक्त दोनों ही लेखकों के इस कथनों की पुष्टि अन्य किसी समकालीन प्रमाणिक ऐतिहासिक ग्रन्थ से नही होती।

रैनमादे उस समय जवाहरसिंह की सेवा में था, तथा इस घटना को उसने स्वयं देखा था, अतः वह चश्मदीद साक्षी था। उसने अपने संस्मरण में लिखा है कि ''नगर के बाहर जवाहरसिंह ने एक सुन्दर बाग लगवाया था। उसी में एक दिन वह हाथियों की लड़ाई देखने गया उस समय एक ऐसे व्यक्ति ने तलवार का वार किया, जिसे अभी तक कोई व्यक्ति पहचानने में समर्थ नहीं हुआ। उस आदमी ने तलवार के एक ही बार से राजा का सिर काट डाला। राजा के सब आदमी तत्क्षण ही हत्यारे पर टूट पडे और उसके टुकडे–टुकडे कर दिये, जिससे उसको पहचानना भी सम्भव नहीं रहा।''

राजा शिताबराय को भी बंगाल में यह सूचना मिली थी कि हाथियों की लडाई देखते समय जवाहरसिंह की हत्या कर दी गई है। मजमुल अखबार में हरसुखराय ने भी इसी बात की पुष्टि की है कि जब जवाहरसिंह हाथियों की लडाई देख रहा था, तब एक दुष्ट ने उसकी हत्या कर दी, उस हत्यारे का नाम मालूम नहीं हो सका। यों स्पष्टतया इस सम्बन्ध में रैनमादे का कथन ही सही और विश्वसनीय मालूम होता है।[30]

इस प्रकार 7 अगस्त, 1768 ई. जवाहरसिंह की हत्या की गई। जाट हिस्ट्री, जाट वीरों का इतिहास पुस्तक के लेखक दिलीपसिंह अहलावत के अनुसार जवाहरसिंह की हत्या[31] जून, 1768ई. (साबन सुदी 15, सम्वत् 1825) में आगरा किले के द्वार पर किसी घातक द्वारा धोखे से की गई। ''ब्रजेन्द्र–वंश भास्कर'' में उस घातक का नाम 'सुजात मेव' लिखा है।

इस प्रकार जवाहरसिंह की मृत्यु के साथ ही नवोदित जाट राज्य का शौर्य, साहस और सौभाग्य का भी अंत हो गया। पूर्ण प्रखरता से तप रहा जाट राज्य का सौभाग्य सूर्य अब बडी तेजी से अस्ताचल की ओर अग्रसर हुआ और जाट–जीवन–सन्ध्या दुर्भाग्य और विरोधी रुपी बादलों से अंधकारपूर्ण ही रही।

ठा. गंगीसिंह के अनुसार इस सम्बन्ध में एक आम कहानी भरतपुर में कही जाती है। वह इस प्रकार है। सुजात नाम का एक मेव महाराजा जवाहरसिंह का कृपा पात्र था। उसने राजा का रत्न जडित हुक्का चुरा लिया। पूछने पर उसने उत्तर दिया कि उसे उसका कुछ पता नहीं है। राजा ने उसे शराब पिलाकर संज्ञाहीन कर दिया। ऐसी दशा में उसके हाथ से उसके हस्ताक्षर बाली अंगूँठी निकाल ली गई। इसी मेव की ओर से उसकी स्त्री को पत्र लिखा गया कि वह उस हुक्के को शीघ्र पत्र वाहक के हाथ भेज दे क्योंकि वह उसे महाराजा को भेंट करेगा।

इस व्यक्ति का मकान लाल किले के समीप था। जैसे ही वह पत्र मेव की स्त्री को दिया गया उसने मोहर की जाँच करके हुक्का भिजवा दिया। राजा ने उस हुक्के को सभी दरबारी सरदारों के सामने रखवा दिया। जब वह व्यक्ति होश में आया तो उससे फिर पूछा गया कि उसने हुक्का के बारे में कुछ सुना या देखा है, तो उसने पुनः वही उत्तर दिया कि उसने हुक्का के बारे में न कुछ सुना है, न कुछ देखा है।

उसे विशेष आश्चर्य तब हुआ जब राजा ने वह हुक्का और उसकी स्त्री का पत्र दरबारियों के सामने रखा, उसे बहुत लज्जित होना पडा। मेव के सलाहकारों ने उसे समझाया कि अब उसके दिन समीप आ गए हैं और तेरा किसी भी दिन कत्ल कराया जा सकता है। उन्होने उसे सलाह दी थी कि यदि राजा को आज ही समाप्त नहीं कराया गया तो फिर उसे ऐसा अवसर नहीं मिलेगा। उनके कहने के अनुसार वह सीढियों में छिप गया और जैसे ही राजा ऊपर से उतर कर नीचे आ रहा था कि पीछे से उसने राजा की पीठ में छुरा घोंप दिया, जिसके कुछ देर बाद ही राजा का प्राणान्त हो गया।[32]

महाराजा जवाहरसिंह का मूल्यांकन

जवाहरसिंह अपने पिता महाराजा सूरजमल की ही भाँति एक वीर और निर्भीक साहसी सेनापति और कठोर शासक था। युद्धप्रिय जवाहरसिंह कठिन से कठिन परिस्थितियों में दुरुह उलझनों से भी नहीं घबराता था। अधिकतर उसने युद्ध लडे और उल्लेखनीय विजय प्राप्त की। उसके शासनकाल की घटनाओं पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि वह सदा युद्ध क्षेत्र में रहा। उसने शत्रुओं के साथ लगातार युद्ध किया, और अपने विरोधी सरदारों का दमन किया। आय–व्यय का हिसाब न देने वालों को दण्ड देकर वितीय व्यवस्था में भी सुधार किया। जवाहरसिंह राजा के प्रताप में विश्वास करता था और उसे पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि मानता था। वह यह मान चुका था कि प्रजा के सभी मनुष्यों से अधिक बुद्धि राजा में ही होती है, इसलिए उसकी इच्छा ही कानून है। वह इस सिद्धान्त को भी मानता था कि ''राजा का कोई सम्बन्धी नहीं होता और राज्य में सभी निवासी उसके आज्ञापालक और सेवक होते है।''

जवाहरसिंह यह भी कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता था कि कोई व्यक्ति उसकी शासन व्यवस्था में हस्तक्षेप करे। वह यह भी सहन नहीं कर सकता था कि उसकी प्रजा में कोई ऐसा व्यक्ति हो जो उसकी आज्ञा की अवहेलना करने का साहस रखता हो। वह अपने सैनिक पदाधिकारियों को भी अशक्त बनाए रखना चाहता था। वह उनको ऐसा सेवक बना कर रखता था जिससे अपनी इच्छानुसार उनकी नियुक्ति कर सके और पदच्युत कर सके।[33] जवाहरसिंह ने राज्य की शान्ति और व्यवस्था के लिए सैनिक शक्ति के महत्व को समझा और अपनी सेना को यूरोपीय ढंग से संगठित और प्रशिक्षित किया। यूरोपीय सेना नायकों व सैनिक दलों को अपनी सेवा में रखा। उसकी सेना पूर्णरुप से अनुशासित थी। उसके शासनकाल में उसकी सेना में कोई विद्रोह या उपद्रव नहीं हुआ।[34] वह सैनिकों को समय पर वेतन दे दिया करता था। सैनिकों के उत्साहवर्धन के लिए समय–समय पर उनको पुरस्कार भी देता था। उसने राज्य के सभी विरोधी तत्वों को समाप्त कर दिया था, तथा अपने पीछे एक सुव्यवस्थित राज्य छोडा था। यही कारण है कि उसके अयोग्य और अत्यधिक विलासी उत्तराधिकारी रतनसिंह की आज्ञा का पालन उसकी सेना ईमानदारी और स्वामीभक्ति के साथ करती रही।

महाराजा जवाहरसिंह में अगर कोई अपने पिता का गुण नही था तो केवल यही कि वह मुसलमानों को उनकी तरह न देखता था। वह मकबरों और मस्जिदों का कट्टर शत्रु था। कहते है कि बादशाह जहाँगीर के आगरा में काले पत्थर के तख्त पर भी बैठ गया था। उसने आगरा की सबसे बडी मस्जिद जामा मस्जिद को भी बाजार बना दिया था। व्यापारीयों को वहाँ अनाज इकट्ठा करके बेचने का हुक्म था। वहाँ काफी खरीद फरोख्त होती थी। उसने कडे दण्डो से सर्वसाधारण में मुसलमानी धर्म प्रचार करना बन्द करवा दिया। अजां देने की प्रथा बिल्कुल रोक दी गई। केवल अजां देने पर एक मनुष्य की जीभ निकलवा दी थी। आगरा में उसने कसाईयों की दुकानें बन्द करवा दी थीं तथा पशु वध पूर्णतया निषेध कर दिया था। इस्लाम धर्म के लोगों के साथ वह

कठोरता का व्यवहार करता था, क्योंकि औरंगजेब, अहमदशाह अब्दाली सहित विदेशी वर्बर मुस्लिम आक्रान्ताओं द्वारा ब्रज प्रदेश में की गई निर्मम हत्या, अत्याचार–व्यभिचार, धर्म परिवर्तन, मन्दिरों के विध्वन्स को वह भुला नही पाता था। प्रतिशोध की भावना उसके हृदय में धधकती रहती थी।

जवाहरसिंह गुणीजनों का आदर करता था और उन्हें पुरस्कार भी देता था। उन दिनों गुणी, कलाकार तथा शिल्पियों के लिए भरतपुर ही सर्वश्रेष्ठ स्थान था। उसने अपने पिता की स्मृति में गोवर्धन में कुसुम सरोवर के तट पर राधाकुण्ड के समीप एक अत्यधिक सुन्दर विशाल छतरी, सरोवर तथा महल का निर्माण कराया जो ऐतिहासिक ब्रज प्रदेश में जाट–शैली की स्थापत्य कला का अनुपम उदाहरण है। उसने अनेक बाग बगीचों का निर्माण कराकर उनमें फव्वारों की भव्य एवं दर्शनीय पंक्तियाँ बनवाई। डीग के बागों को दिल्ली और जयपुर से कहीं अधिक भव्य एवं आकर्षक बना दिया।[35] जवाहरसिंह शान–शौकत और शाही रंगरेलियों में मस्त रहने वाला था। डीग का बाजार उसी सजधज के साथ खुलता था जैसा दिल्ली का बाजार। साफ–सफाई, चमक–धमक में डीग किसी प्रकार दिल्ली से कम नही था। भारत के धनी लोग, व्यापारी यहाँ अपनी प्राण प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए आ बसे थे। डीग उन दिनों भारत की श्रेष्ठ व्यापारिक मण्डी एवं सबसे सुरक्षित स्थान था। उनका व्यापार भारत के सुदूर व्यापारिक नगरों से होता रहता था। जवाहरसिंह फिजूलखर्ची बहुत करता था उसकी दृष्टि में पैसे का कोई महत्व नहीं था। मेवात में आज भी कहावत है–

कौड़ी–कौड़ी जोर कै परी दरब पै आँट।[36]
जोरी सूरजमल्ल ने दई जवाहर बाँट।।

वह शाही अमीरों की तरह शान से रहता था। जवाहरसिंह का पैर घोड़े की रकाब में और शासन पीठ पर रहता था। वह कभी 6 माह शान्ति से न रहा। युद्ध भूमि में उसे जितना आनन्द आता था, राज्य सिंहासन पर नहीं, वह बड़ा दिलेर था, प्रत्येक युद्ध में वह आगे रहता था खून की नदियाँ बहती देखकर उसकी आत्मा को विशेष शान्ति मिलती थी। ओले के समान बरसती गोली और बिजली के समान लपलपाती तलवारों में वह निडर होकर आगे बढ़ जाता था।

उसे न मनुष्य का डर था न ईश्वर का वह ईश्वर से भी बदला लेने को तैयार रहता था भय नाम की वस्तु उसके हृदय में थी ही नहीं। आत्म संयम और दूरदर्शिता की उसमे सर्वथा कमी थी, किन्तु जोश और उत्साह अन्धाधुन्ध था। यदि जाट प्राचीन यादवों के वंशंज थे तो उनके बीच भारतेन्दु महाराजा सवाई जवाहरसिंह कंस के रुप में अवतरित हुआ था। जिस प्रकार कंस ने भाड़े के सैनिकों के बल पर यादवों के राष्ट्र संघ को परास्त करके अपने भाई बन्धु और मित्रों को उत्पीडित करके एकछत्र शासन स्थापित कर लिया था, उसी प्रकार जवाहर सिंह अपने ही भाई–बन्धुओं को कुचल कर निरंकुश शासक बन गया था।[37]

जवाहरसिंह की इतनी अच्छाईयों के रहते हुए भी उसके स्वभाव और चरित्र में कई ऐसे दोष थे, जिन्होंने उसके गुणों पर काली छाया डाल दी। वह अपने पिता के विपरीत अत्यधिक अपव्ययी, शान शौकत दिखाने को व्यग्र, विलासी और सौंदर्य प्रेमी था। वह रुपये का कोई मूल्य नही समझता था। युवक राजा पर मुगलों की शान शौकत, रंगरेलियों, रहन–सहन, खान–पान का

पूर्ण प्रभाव था। पहनावे एवं रहन–सहन में वह मुगल शहजादों का अनुसरण करता था। कानूनगो के अनुसार देश में सभी नये–नये लिवासों, तौर–तरीकों, आचार–विचार की पूर्ण छाया कुम्हेर और भरतपुर में देखने को मिलती थी।

इन केन्द्रों में नए समाज की स्थापना के साथ जाटों में रीति–रिवाजों, रहन–सहन, खान–पान, भाषा आदि अन्य सभी क्षेत्रों में एकदम परिवर्तन आने लगा था। कुछ लोग उसे अत्यधिक विलासी और कामुक बताते हैं, कहते हैं कि इस दोष ने ही उसके अन्त को निमंत्रण दे दिया था। वह स्वयं नाहरसिंह की अत्यधिक सुन्दर स्त्री पर आसक्त हो गया था, अतः जब नाहरसिंह की मृत्यु हो गई तब उसकी विधवा को अपने रनिवास में रखने के उद्देश्य से ही उसने जयपुर के राजा माधोसिंह से उसकी माँग की थी। माधोसिंह उसकी यह माँग पूरी नही कर सका एवं दोंनो में मन मुटाव हो गया। इसी प्रकार ईमाद–उल–मुल्क की स्त्री से भी प्रेम करता था। गन्ना बेगम की प्रेम कहानी तो जग जाहिर थी। लेकिन उसमें सबसे बडी कमी यह थी कि उसमें उपयुक्त कूटनीति और आवश्यक दूरदर्शिता का पूर्ण अभाव था। वह कभी–कभी अत्यधिक उदार हो जाता था तो कभी थोड़ी–सी गलती के लिए भी भयंकर दंड देता था। जवाहरसिंह ने अपने भाई रतनसिंह के पुत्र के जन्मोत्सव पर बैर के बहादुरसिंह और फर्रुखनगर के नबाव मुसाबी खाँ जैसे खतरनाक राजनैतिक कैदियों को भी मुक्त कर दिया। कानूनगो के अनुसार जहाँ उसके मित्रगण उसे एक योग्य राजा, साहसी, तड़क–भड़क का प्रेमी और उदार व्यक्ति के रूप में देखते थे, उसके शत्रु उसे जिद्दी, खूंखार, तानाशाह, भूखा भेड़िया तथा अविश्वसनीय, छली–कपटी व्यक्ति कहते थे।[38]

जवाहरसिंह वस्तुओं का बहुत बडा पारखी था। एक बार पर्शिया का एक सौदागर इत्र लेकर दिल्ली जा रहा था। जाट राजा की उन्नत दशा के समाचार सुनकर कुम्हेर के स्थान पर भरतपुर सूरजमल के यहाँ जा पहुँचा। सूरजमल ने उसे यह कहकर लौटा दिया कि हम तो छोटे जमींदार है, यह तो राजा–महाराजाओं की वस्तु है। इधर इसका खरीददार आपको नही मिलेगा। जब वह लौट रहा था, किसी ने उससे कहा कि आप हताश न हों, ड़ीग चले जाएँ, राजकुमार आपके इत्र को खरीद लेगा। सौदागर ड़ीग जा पहुँचा और जवाहरसिंह के सामने उसने इत्र के नमूने पेश किए। राजकुमार ने इत्र की प्रशंसा की और कीमत पूछी। सौदागर ने एक पखाल का मूल्य 12000 रुपये बताया तो उसे उसी समय अदा कर दिया गया। उसी समय जवाहरसिंह ने अस्तबल के दरोगा बलबानसिंह को बुला कर आज्ञा दी कि इस इत्र का छिड़काव खास अस्तबल में करा दिया जाय। सौदागर इस आज्ञा को सुनकर सुन्न हो गया। उसने हाथ जोड़कर कहा[39] – ''हुजूर इस नायाब इत्र की आपकी नजरों में क्या इतनी ही कद्र है।'' राजकुमार ने कहा, बेशक आपका इत्र नायाब है, किन्तु इसमें घोड़े के पसीने की बदबू है। सौदागर ने रुपया वापस राजकुमार के चरणों रख कर कहा ''हुजूर मैं बारह वर्ष से इत्र की सौदागरी भारत मैं कर रहा हूँ, प्रतिवर्ष पर्शिया से माल लेकर भारत के शाही घरानो में बेचता हूँ, किन्तु आज तक आपके सिवाय इस कमी को किसी ने नहीं पकड़ा है? हुजूर तीन माह से घोडों की पीठ पर लदा हुआ इत्र पखालों में इधर लाया जाता है, इसलिए घोडे के पसीने की बदबू आना स्वभाविक है। विशेष आग्रह के बाद सौदागर

रुपया लेकर चला गया और भविष्य में पखाल के अन्दर चाँदी की सुराहियों में इत्र लाने का वायदा कर गया।

जवाहर सिंह वीर शिरोमणि, हिन्दू संस्कृति का रक्षक, महान देशभक्त एवं कुशल प्रशासक था। जो उस युग के शासकों में गुण होने चाहिए, वह सभी उसमें विद्यमान थे। वह निर्मम युग था, कोई किसी पर दया नही करता था, वैसे जाट शक्ति को अग्रसर करना उसकी श्रेष्ठ उपलब्धियों में से एक है। उसने जीवन में अनेक धोखे खाये लेकिन कभी भी उसने किसी को धोखा नही दिया। छल–प्रपंच एवं फरेवी काल में यह एकमात्र गुण ही उसके चरित्र के उज्ज्वल पक्ष को उजागर करता है।

उत्तर भारत की शक्ति कई बार उसकी मुट्ठी में कैद रही लेकिन उसने कभी भी प्रजाजन को नही सताया। शक्तिशालियों का सदैव उसने मान–मर्दन किया लेकिन रैयत के प्रति वह हमेशा दयालु बना रहा।[40] वस्तुतः ईसा की 18 वीं सदी के मध्य में उत्तर भारतीय राजनैतिक आकाश में जवाहरसिंह धूमकेतु की तरह एकाएक चमका और उसी तरह सहसा लुप्त हो गया। पुनः उग्र ग्रह के यों प्रकट होने और बाद में वैसे ही अदृश्य हो जाने के कारण अनपेक्षित प्रभाव और परिणाम हुए, जिन्हें तत्कालीन इतिहास के पन्नों में देखा और समझा जा सकता है।

संदर्भ

1. रामवीर सिंह वर्मा, महाराजा सवाई जवाहरसिंह और उनका युग, पृ. 76।
2. इमाद, पृ. 56।
3. कालिकारंजन कानूनगो, हिस्ट्री ऑफ जाट्स, पृ. 160।
4. रामवीर सिंह वर्मा, महाराजा सवाई जवाहरसिंह और उनका युग, पृ. 15।
5. इमाद, पृ. 56।
6. रैने मैडक, पृ. 72।
7. सुजान संवत समें, प्रथम विलास, छंद 57–59।
8. जॉन कोहन, पृ. 22ब।
9. वैंदेल, पृ. 88।
10. ठा. देशराज, जाट इतिहास (राजस्थान के जाट–राज्य) पृ. 328।
11. वही, 330।
12. रामवीर सिंह वर्मा, महाराजा सवाई जवाहरसिंह और उनका युग, पृ. 105–106। कई इतिहासकार जवाहरसिंह का राजतिलक (सिंहासन पर बैठना) 2 जनवरी, 1764 ई. हुआ लिखते हैं।
13. ठा. देशराज, जाट इतिहास (राजस्थान के जाट–राज्य) पृ. 329।
14. रामवीर सिंह वर्मा, महाराजा जवाहरसिंह और उनका युग, पृ. 23।
15. वही, पृ. 108।
16. वही, पृ. 108।
17. योगेन्द्रपाल शास्त्री, जाटों का उत्कर्ष, पृ. 441।
18. चौवे राधारमण, भरतपुर राज्य, पृ. 22।
19. रामवीर सिंह वर्मा, महाराजा जवाहरसिंह और उनका युग, पृ. 109–112।
20. वही, पृ. 113।
21. फ्रेंच, एम.एस., 59।
22. रामवीर सिंह वर्मा, महाराजा जवाहरसिंह और उनका युग, पृ. 113–114।
23. हिंगणे, 2 पृ. 55।
24. मनोहरसिंह राणावत, जवाहरसिंह जाट, पृ. 43।
25. रामवीर सिंह वर्मा, महाराजा जवाहरसिंह और उनका युग, पृ. 120।
26. वही, 121।
27. ठा. देशराज ; जाट इतिहास, पृ. 647।
28. रामसरुप जून ; जाट इतिहास, पृ. 120।
29. ठा. देशराज ; जाट इतिहास (उत्पत्ति और गौरव), पृ. 171।
30. रामवीर सिंह वर्मा, महाराजा जवाहरसिंह और उनका युग, पृ. 159–160।
31. दिलीप सिंह अहलावत, जाट वीरों का इतिहास, पृ.
32. रामवीर सिंह वर्मा, महाराजा जवाहरसिंह और उनका युग, पृ. 161।
33. वही, पृ. 162।
34. वैंदेल, पृ. 106 ; कानूनगो, जाटस, पृ. 117।
35. ग्राउज, पृ. 161, 285।
36. रामवीर सिंह वर्मा, महाराजा जवाहरसिंह और उनका युग, पृ. 163।
37. कालिकारंजन कानूनगो, जाट इतिहास, पृ. 223।
38. कानूनगो, जाटस, पृ. 118।
39. रामवीर सिंह वर्मा, महाराजा जवाहरसिंह और उनका युग, पृ. 167।
40. वही, पृ. 166।

पंचम अध्याय

1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी में बहादुरशाह प्रथम से लेकर बहादुरशाह द्वितीय तक जितने सम्राट हुए, वे नाममात्र के ही सम्राट थे। इनमें न तो योग्यता थी और न दृढ़ इच्छाशक्ति। औरंगजेब के उत्तराधिकारीयों के निकम्मे रहने का उत्तरदायित्व बहुत कुछ उसी पर ही है। औरंगजेब ने बड़ी लम्बी आयु पाई थी, जिसके कारण उसका द्वितीय पुत्र 62 वर्ष की आयु मे ही गद्दी पर बैठ पाया था। इसी प्रकार उसका पोता 51 वर्ष की आयु में ही गद्दी पर बैठ सका था। इस आयु में इन दोनों में न तो शक्ति रह गई थी और न महत्वाकांक्षा। इसके अलावा एक कारण और है कि औरंगजेब इतना अधिक शंकालू प्रवृत्ति का था कि उसने अपने दो पुत्रों को जेल में डाल दिया था। वहाँ पर भी उनके चारों ओर उनके षडयंत्र और छल–कपट को जानने के लिए उसने गुप्तचर लगा दिए थे, जो उनकी गतिविधि से उसे अवगत कराते रहते थे। इन दोनों कारणों से औरंगजेब के पुत्रों में न तो किसी महत्वपूर्ण काम करने की योग्यता आ पाई, न उनकी साहसिक कार्य करने की हिम्मत बडी और न ही वे अपने उत्तरदायित्व को समझ सके। औरंगजेब के उत्तराधिकारीयों ने शाहजादों को और भी निकम्मा बना दिया। ये लोग इन्हें दरबार में ही रखते थे और इन्हें शासन–व्यवस्था का क्रियात्मक ज्ञान प्राप्त करने का कूटनीति के प्रयोग का अथवा सूदूर प्रान्तों मे जाकर युद्ध करने का कोई अवसर ही नही देते थे। इन कारणों से मुगल साम्राज्य की दशा बडी शीघ्रता से उत्तरोत्तर बिगड़ती चली गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि शाहजादे अपने सरदारों की कठपुतली–मात्र रह गये। औरंगजेब के उत्तराधिकारी बहादुरशाह प्रथम को तो लोग 'मस्तराजा' ही कहा करते थे। उसका उत्तराधिकारी जहाँदरशाह दुर्व्यसनी और मूर्ख था। फर्रुखसियार के समान तो मुगल–वंश में कोई ड़रपोक हुआ ही नहीं था और मुहम्मदशाह' रंगीले' नाम से प्रसिद्ध हो गया था। अहमदशाह और उसके उत्तराधिकारी तो अपने स्वार्थी और निकम्मे मन्त्रियों के हाथ की कठपुतली–मात्र ही थे।

ये शाहजादे इतने निकम्मे थे कि अपना ही प्रबन्ध नहीं कर सकते थे, तो फिर भला साम्राज्य का प्रबन्ध क्या करते। परिणाम यह हुआ कि शासकों की शारीरिक, चारित्रिक और मानसिक शक्ति का बिल्कुल क्षय हो गया था। सर जदुनाथ सरकार ने ठीक ही लिखा है कि इस प्रकार के पतन के कारण इन मुगल सम्राटों के परिवार में मुश्किल से कोई ऐसा रह गया था जो अपने पद के गौरव को एक या दो पीढ़ी से अधिक रख सका था। मासिरुलउमरा में लिखा है कि ''यदि मुगल–वंश के किसी सरदार की सफलताओं का वर्णन तीन पृष्ठों में आता था तो उसके लड़के का वर्णन एक ही पृष्ठ में आता था और उनके पोते का वर्णन तो कुछ ही पंक्तियों में समाप्त हो जाता था या ऐसा होता ही न था कि उसका लेखा रखा जाय।[1] औरंगजेब के बाद अगर किसी मुगल बादशाह ने शासन किया तो, वह था मोहम्मदशाह, किन्तु मोहम्मदशाह का ओछापन और अकर्मण्यता, सरदारों की आत्मसंतुष्टि और ईर्ष्या, प्रशासनिक और आर्थिक संकट तथा सैनिक नपुंसकता ने मोहम्मदशाह को'' शाकिर का शेर'' बना दिया। जिसका अर्थ है कि यदि घर का

मालिक बच्चों जैसा बरताव करे तो वह बर्बाद हो जाता है, जितना मोहम्मद शाह पर सटीक बैठता है, उतना ही उसके तुरंत बाद के उत्तराधिकारियों पर भी।[2] सदा की भाँति निष्क्रिय और उदासीन शहंशाह को भयानक अनुभवों या 1739 ई. के नादिरशाह के आक्रमण ने कोई बुद्धि नहीं दी। वह इस बात को समझने में असफल रहा कि शासन करने के लिए हरम की सुंदरियों की बाँहों या खेलकूद और आमोद–प्रमोद में डूबे रहने के अलावा किसी और चीज की ज्यादा जरुरत होती है, और यह कि केवल तलवार से लैस हाथ ही लोगो में भय की भावना और सत्ता पर नियंत्रण रखते हैं। शासक द्वारा इस अपेक्षा का उसके सरदारों ने तीव्र गति से लाभ उठाया।

कुछ अपवादों को छोडकर हर सरकार के फौजदार और हर प्रान्त के सूबेदार ने खालसा और जागीर भूमि का राजस्व चुकाने से मना कर दिया। इसके बजाय वे दरबार को कभी–कभी उपहार और तोहफा भेज दिया करते थे। यही नही, निजाम–उल–मुल्क, सफदरजंग और अलीवर्दी खाँ जैसे कुछ शाही सूबेदारों ने अपने–अपने प्रान्तों में अर्द्धस्वाधीन शासन की स्थापना कर रखी थी और इस तरह निष्ठा के लबादे में शहंशाह की सत्ता का उल्लंघन करने के लिए वे औंरो को भी उकसाया करते थे, इतना अधिक कि प्रत्येक क्षेत्र के घमंडी और अहंकारी लोगों ने अपना सिर उठा लिया और जमींदार राजा बन गया तथा हर राजा, महाराजा।[3]

आगरा का सूवा तो निस्संदेह उसी सल्तनत के भीतर रहा। खालसा परगने तो नादिरशाह के हमले के बाद भी राजस्व भेजते रहते थे उनमें से कुछ आगरा के पास स्थित थे जो बदतर होती अराजकता में जाट सरदार द्वारा हथिया लिए गए थे। परंतु यदि सामान्य चलन को ध्यान में रखें तो यह प्रतीत होगा कि उपरोक्त कुछ परगनों को छोडकर 1739 ई. के बाद जाट नियंत्रण में आए शेष क्षेत्रों ने अवश्य राजस्व देना बंद कर दिया होगा। निहितार्थ से इसका यह मतलब हुआ कि जाट विस्तार के परिणामस्वरुप शाही खजाने को उतनी वास्तविक क्षति नहीं हुई होगी जितनी कि आंकडे हमें विश्वास दिलाना चाहते हैं। तथापि, जाट विस्तार को एक अलग–थलग घटना के रुप में देखना न्याय–संगत नहीं होगा। उस पर निरपेक्ष भाव से समूची सल्तनत के आम संदर्भ में विचार किया जाना चाहिए। जाटों के अतिक्रमणों की तमाम प्रतिक्रियाओं को मान लिया जाए तो भी ये संगत प्रश्न बने ही रहते है कि क्या 1739 ई. से प्रारंभ हुए काल, जब जाटों ने अधिकतर विस्तार किया, में शहंशाह की जाट क्षेत्रों पर कोई प्रभावी पकड थी, और यदि बदनसिंह ने अपने हाथ अलग रखे तो क्या वह अन्य दूसरी विस्तार में जुडी ताकतों को कुचल सकता था? और यदि नही तो जाट–आक्रमण ने बनावटी नुकसान की अपेक्षा उसे कितनी वास्तविक क्षति पहुँचाई?[4]

1756 ई. तक धीरे–धीरे सूरजमल ने आगरा प्रांत के बडे–बडे भागों और दिल्ली के कुछ हिस्सों पर अपने नियंत्रण का विस्तार किया। उसके अधीन क्षेत्र एक करोड रुपये का था जो कुल राजस्व का लगभग आठवॉ हिस्सा होता था, परंतु एक लंबे समय में इसका अधिकांश भाग शाही खजाने को कभी नही दिया गया।[5] यह स्पष्ट है कि ऐसे समय में जब कि सल्तनत बुरी तरह सिकुड गई थी, दो राजधानियों (दिल्ली और आगरा) के बीच जाटों ने बलात् कब्जों ने उसे बहुत बडी राज्यक्षेत्रीय और आर्थिक क्षति पहुॅचाई। सम्मान के बतौर उसे जो हानि हुई निस्संदेह वह भी

बहुत बडी थी। साथ ही जाटों की निडरता ने औरों को भी हमला करने के लिए प्रोत्साहित किया होगा। इस प्रकार सल्तनत की व्याधि को बढाने में जाटों का भी अंशदान था।[6]

जिस आसानी के साथ सूरजमल ने क्षेत्र का विस्तार किया उससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि शहंशाह की सत्ता छिन्न–भिन्न होने की एक प्रतिक्रिया स्वरुप उसका पडोसी क्षेत्र, व्यावहारिक रुप से 'अस्वाभाभिक भूमि' या 'लावारिस भूमि' बन गया था और जिसके पास भी आवश्यक ताकत थी वह उस पर अधिकार कर सकता था और इस संदर्भ में यह सब आंशिक रुप से उसकी नीतियों और कार्यो के कारण हुआ। यह उतना प्रासंगिक नहीं है जितनी कि मुगल सरकार की उजागर नपुंसकता और कमजोरी अनिवार्य तथा हमले को न्योता देती है। इससे तो कुछ लोग ही इनकार करेंगे कि जाट ऐसा न करते तो भी ऐसी परिस्थितियों में कंगाल और ढहती सल्तनत आगरा को अपने कब्जे में रखे रहने में सफल नहीं हो पाती, विशेषकर जयसिंह और साथ ही मराठों की महत्वाकांक्षाओं को देखते हुए। मालवा, गुजरात और उडीसा को छीनने तथा बंगाल, बिहार और राजस्थान तथा आगरा के कुछ हिस्सों को रौंदने के बाद मराठे अब आगरा के क्षेत्रों को हडपने के लिए लालायित दिखाई दे रहे थे।

ऐसी स्थिति में समय का इशारा समझते हुए बदनसिंह ने विस्तार के लिए मिले अवसरों का स्वयं लाभ उठाया। बदनसिंह अपने विख्यात चाचा चूडामन से सर्वथा भिन्न था। वह चुप रहने वाला तथा विनम्र स्वभाव का व्यक्ति था, तथा लूट–पाट के कार्यों में उसकी कोई रुचि नहीं थी। उसने एक वैध शासक के रुप में अपने शासन का श्री गणेश किया, वह ईमानदारी से शान्तिकालीन कलाओं को प्रोत्साहन देना चाहता था। उसकी आस्था अपने राज्य को सन्तुलित विस्तार देने एवं मजबूत बनाने में थी, न कि अनियमित एवं अविश्वसनीय विजयों में। उसने अपने ऊपर जो दायित्व लिया था, वह कोई सुगम काम नही था, उसका अर्थ था एक लडाकू सरदार के प्रभाव–क्षेत्र का ऐसे सुव्यवस्थित राज्य में परिवर्तन जिसमें एक नियमित शासन हो। (जिस व्यक्ति को मुगलवजीर 'सैयद भाई तथा सम्राट फर्रुखसियर राजकीय आदर प्रदान करता है, उसको इतिहास डाकू कहते नहीं चूकता। चूडामन के साथ यह अन्याय है वह डाकू नहीं विद्रोही था। लोकप्रिय क्रांति का सूत्रधार था) तथापि इस काम में उसे वर्षों के धैर्यपूर्ण परिश्रम और कुशल प्रशासन के उपरान्त उल्लेखनीय सफलता प्राप्त हुई हमने उसके कुटनीतिक कार्यकलापों अथवा शानदार शस्त्रास्त्र के प्रयोग के बारे में कुछ नहीं सुना, परन्तु यह स्पष्ट है कि सिंहासनरुढ होने के कुछ ही वर्षो में वह इतना शक्तिशाली हो गया था कि आमेर के राजा के ऊपर उसकी निर्भरता समाप्त हो गई थी। उसने उस समय की गडबडी का लाभ उठाकर बयाना के आस–पास के कुछ स्थानों को अपने अधिकार में ले लिया, तथा वैर में उसने एक किला बनवाया जिसे अपने छोटे पुत्र प्रतापसिंह को दे दिया। उसकी सबसे बडी उपलब्धि यह थी कि उसने समूचे आगरा और मथुरा जिलों में अपनी परिवार की सत्ता को स्थापित किया। इस लक्ष्य की प्राप्ति में वह आंशिक रुप से इसलिए सफल हुआ क्योंकि उसने मुस्लिम कुशासन के विरुद्ध हिन्दुओं के रक्षक होने का दावा किया था। मुगल शासन की दृष्टि में बदनसिंह अभी तक एक अकुलीन विद्रोही था, जिसे कठोरतम दण्ड मिलना चाहिए था और मिलता भी, यदि दिल्ली के भ्रष्ट एवं जीर्ण दरबार में ऐसा करने की क्षमता होती।

यदि नादिरशाह ने हिन्दुस्तान में कुछ समय और रहने का निश्चय किया होता अथवा उसने अपनी अजमेर की इच्छित तीर्थयात्रा को क्रियान्वित किया होता, तो उस स्थिति में जाटों का सरदार परसियन हथियारों के बोझ का अनुभव करने वालों में सबसे पहला रहा होता। उसके चले जाने के बाद मुगल दरबार की कमजोर निगाह उत्तर–पश्चिम पर जमी रही। इस बीच ठाकुर बदनसिंह ने मुगल सरकार की स्थिति का लाभ उठाकर अपने राज्य का विस्तार कर लिया। लोगों ने उसका इसलिए स्वागत किया, क्योंकि वह शासन करना चाहता था अपने पूर्वाधिकारियों की भॉति, लूट–मार नहीं। उसका एक इच्छित लक्ष्य अपने लिए 'राजा' की उपाधि प्राप्त करना था और इसके लिए वह शाही–सिंहासन के समक्ष झुकने को भी तैयार था, अगर चाहता तो वह शाही–सरकार की अवज्ञा भी कर सकता था, परन्तु सम्भवतः जयपुर के शासक की ईर्ष्या के कारण वह इसमें सफल नहीं हो सका।[7]

बदनसिंह ने अपने साम्राज्य का विस्तार कर इस प्रकार का आचरण किया जो उस समय सर्वत्र व्याप्त भावना के अनुरूप था। वैंदेल का यह लिखना सही हैं कि उन दोंनो (सूरजमल और प्रतापसिंह) में से कोई इससें अलग व्यवहार नही कर सकते थें यह उसके उस कथन के विपरीत हैं जिसे वह सम्पूर्ण देश का सिद्धान्त कहता है।[8]

विडंबना यह थी कि अपने हितों के लिए आगरा के सूबेदार जयसिहं और शाही वजीर ने स्वयं उसके अवज्ञापूर्ण या विद्रोही उद्देश्यों के लिए बढावा दिया बदनसिहं ने चापलूसी कर या भारी सौगातें देकर वजीर कमरूद्दीन का समर्थन प्राप्त कर लिया औंर उसने भी अली मोहम्मद रूहेला के हितों कि तरह जाटों का पक्ष लिया जब भी दरबार में कोई शिकायत ले जाई जाती तो (जाटों का महान वकील) (वजीर) उन्हें यह कहकर चुप करा देता कि बदनसिहं ने सल्तनत के लिए कितना कुछ किया हैं औंर जोर देकर यह समझाता कि सल्तनत की प्रतिष्ठा के लिए जाटों जैंसे शक्तिशाली जमीदारों का होना आवश्यक हैं जो जरूरत के समय (भविष्य में भी) काम आ सकते हैं। वजीर और सूबेदार के इस तरह के व्यवहार यह दर्शाते हैं कि नवजात जाट शक्ति की जडों को जमाने में मुगल सरकार का प्रत्यक्षतः स्वयं कितना बडा हाथ था। संयोग से यह तथ्य कि कमरुद्दीन और जयसिंह दरबार में प्रतिस्पर्धी गुटों का प्रतिनिधित्व करते थे। फिर भी बदनसिंह और सूरजमल ने दोनों का एक साथ समर्थन पाने में सफलता प्राप्त की इससे मुगल सरकार के प्रति जाट नीति की प्रारंभिक कार्य–शैली की जानकारी मिलती हैं। प्रतिस्पर्धी गुटों को खुश कर उन्होंने संभावित विरोध को पहले ही दरकिनार कर दिया। यद्यपि जैसे–जैसे उनकी जडे जमती गई, उनमें किसी भी खतरे का सामना करने का आत्मविश्वास बढता गया।[9]

राष्ट्रीय सोच के परिपेक्ष में सूरजमल की नीति एक कुशल राजनीतिज्ञ की भॉति मालूम होती है। जब अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण के दौरान हिन्दुस्तान की शक्तियों में एकमात्र सूरजमल ही ऐसा व्यक्ति था, जिसने मित्र विहीन होते हुए भी राजनीतिक सूझ–बूझ, साहस एवं नीति कुशलता का परिचय दिया। उस समय सूरजमल साम्राज्य के बजीर और शक्तिशाली मराठों की शत्रुता से जूझ रहा था और राजपूताना के शासक विशेष रुप से माधोसिंह, अब्दाली का स्वागत

करने की तैयारीयाँ कर रहे थे। वास्तव में हिन्दुस्तान पर अब्दाली के अभियान का मार्गदर्शक नजीब खाँ ही था।

कन्धार से अब्दाली और दक्षिण से रघुनाथ राव के नेतृत्व में मराठा सेनायें एक साथ रवाना हुई थीं। दोनों को एक साथ दिल्ली पहुँचाना चाहिए था। रघुनाथ राव अब्दाली से टक्कर लेने से हिचकता था और यह आशा लगाये बैठा था कि अब्दाली जाटों और मुगलों को कुचल डालेगा, तब हम आसानी से दिल्ली की गद्दी प्राप्त कर लेंगे। यही कारण था कि वह दिल्ली से दूर ही रहा। जब दूरस्थ राज्य जोधपुर, जयपुर आदि के शासकों ने भयभीत होकर समर्पण कर दिया, तो विशाल अफगान सेना (60–70 हजार) के मुकाबले 15 हजार जाट सैनिकों के साथ महाराजा सूरजमल राजधानी दिल्ली के ठीक पडौस में होने के नाते क्या रुख अपना सकता था? वह बडी चतुराई, सूझ–बूझ तथा साहस से शत्रु के सामने झुका नहीं[10] महाराजा सूरजमल अन्य लोगों की भॉति कायरतापूर्ण समर्पण के पक्ष में नहीं था। इसलिए उसने अपने साहसी पुत्र जवाहरसिंह को वल्लभगढ में तैनात कर स्वयं ने मथुरा के निकट मुरसान में शिविर लगाकर अब्दाली की गतिविधियों पर नजर रखने का निश्चय किया। 31 जनवरी, 1757 ई. को अब्दाली ने अपने दूत सूरजमल के पास इस सन्देश के साथ भेजे कि वह शाह के समक्ष उपस्थित होकर भेंट पेश करे और उसके झण्डे के नीचे सेवा करे। उसे यह भी कहा गया कि वह नागरमल सहित दिल्ली के सम्पन्न शरणार्थियों को तुरंत लौटा दे। इस पर सूरजमल ने कूटनीतिक भाषा में उत्तर दिया –''जब अग्रणी जमींदार शाही दरबार में उपस्थित हो चुके है, मैं भी शाही दरबार में आऊँगा। मैं राजा नागरमल और दूसरे लोगों को कैसे भेज सकता हूँ जिन्होंने मेरे पास शरण पाई है।''[11] फ्रेंकलिन लिखता है कि दिल्ली में प्रवेश करते ही अब्दाली ने सभी राज्यों को पत्र भेजे कि वे आकर शाह का नजराना भेंट करे। जाटों के अलावा सभी ने आज्ञापालन किया, अतः जाटों के विरुद्ध उसने हथियार उठाने का निश्चय किया।[12]

महाराजा सूरजमल द्वारा बाद में किए गए अब्दाली के सफल प्रतिरोध से यह स्पष्ट होता है कि यदि रघुनाथ शीघ्रतापूर्वक आगे बढता और ईमानदारी के साथ जाटों के सहयोग से विदेशी आक्रान्ता का मुकाबला करता, तो देश को भयंकर विनाश एवं दुर्दशा से बचाया जा सकता था। किन्तु रघुनाथराव और होल्कर ने जान–बूझकर आगे बढने में देरी की, क्योंकि अब्दाली से युद्ध करने की उनकी इच्छा नहीं थी। उनका विचार था कि जब अब्दाली जाट वगैरह को कुचलकर वापस चला जायेगा, तब दिल्ली जाकर वे आसानी से अपने राजनैतिक विरोधियों को परास्त करके साम्राज्य की व्यवस्था अपने हाथ में ले सकेंगे।[13]

तथापि, मुगल सल्तनत के लिए हानिकारक, सूरजमल ने लूटमार के छापों और दमनात्मक प्रशासन से जाट क्षेत्रों को कुछ शांति और सुरक्षा प्रदान की, क्योंकि आगे चलकर अस्थिरमति और शक्तिहीन मुगल सम्राट इस प्रकार की प्रत्याभूति प्रदान करने के योग्य नहीं रह गये थे। उसने यह सफलता ऐसे समय प्राप्त की जब सल्तनत के अधिकांश भागों को लूटकर मराठे बारंबार उसे रौंद रहे थे। इस तरह अपने लोगों को संभावित विनाश से बचाने में सूरजमल उचित समय पर कदम उठाता दिखाई देता है। निहितार्थ से यह प्रकट होता है कि स्वयं के संरक्षण की प्रवृति ने भी

उसकी विशिष्ट महत्वाकांक्षा का मार्गदर्शन किया जिसे कि स्वयं शाही सरकार द्वारा भी कोई कम बढावा नहीं मिला। यदि गंभीर इतिहास में विरोधाभासों की कोई प्रासंगिकता है तो वह वर्तमान संदर्भ में व्यक्त होती है। यह हम मान ले भरतपुर शासकों की बजाय यदि सदा लूटने–खसोटने वाले और दुर्दम्य मराठा, जिन्हें आगरा अपने अधीन न होने का मलाल था,[14] यहाँ स्वयं को जमा लेते और अपने खतरों को शाही राजधानी के इतने पास ले आते तो हम दिल्ली हुकूमत और स्थानीय जनता की समूची तुलनात्मक किस्मत की कल्पना कर सकते है। सूरजमल के अधीन जाट नीति का एक नया पक्ष यह था कि उसने अपने पूर्ववर्तियों (बदनसिंह के अलावा) के समान कभी सिद्धान्त रुप में मुगल सार्वभौमिकता को अस्वीकार नहीं किया और शहंशाह और उसके वजीर के पक्ष में सदैव रहते हुए उसके सैनिक अभियानों में भाग लिया। यह उस समय प्रचलित चातुर्यपूर्ण कार्यरीति के साथ–साथ उसकी अपनी इष्टसिद्धि और विश्वास को भी प्रदर्शित करता है। हम जानते है कि उस समय के सभी महत्वाकांक्षी व्यक्तियों, जिनमें निजाम, सादत खाँ, सरबुलंद खाँ, अलीबर्दी खाँ, नजीबुद्दौला और इमादुलमुल्क जैसे सल्तनत के स्तंम्भ शामिल थे, ने या तो अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित किया या शाही जमीन हडप ली, फिर भी वे स्वयं को शहंशाह का निष्ठावान सेवक कहते नही थकते थे। इसी प्रकार यद्यपि सूरजमल ने भी काफी बडे क्षेत्र हथिया रखे थे फिर भी वह अपने को शहंशाह का पुराना और निष्ठावान सेवक दर्शाता था। उसके समकालीन लोगों की ऐसी ऊँची घोषणाओं में ईमानदारी की कमी है। इनको पढकर एक अवसादपूर्ण पीडा होती है। इसमें एकमात्र प्रायश्चित पूर्ण पक्ष यह था कि सूरजमल ने शहंशाह के तमाम अभियानों में उसकी निष्ठापूर्वक सेवा करने की तत्परता दर्शाई सिवाय उनमें जिनसे उसकी स्थानीय स्थिति को क्षति हो सकती थी। इसके अलावा इमाद और मराठों के विपरीत वह शाही प्रतिष्ठा को नुकसान पहुँचाने से भी बाज आता रहा और नजीब के समान उसने किसी विदेशी शत्रु से भी तालमेल नहीं किया। यह तो स्पष्ट है कि उसने यह सब अपने क्षेत्रीय लाभों की औपचारिक प्राप्ति के लिए किया। लेकिन उसके अन्दर तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति में एक संतुलनकारी तत्व के रुप में सल्तनत को बचाए रखने का भी उद्देश्य था जिससे इनकार नहीं किया जा सकता।[15]

पानीपत की तीसरी लडाई के बाद, देश में कुछ समय के लिए अपेक्षाकृत रुप से शांति का वातावरण बना रहा, यह शान्ति उसी प्रकार की थी जिसकी इच्छा लोग थकने के उपरान्त करते है, उत्तर–भारत कम–से–कम कुछ समय के लिए अफगानों और मराठाओं के बीच की रण–स्थली अब नही रह गया था। द्रुतगति से उदित होने वाला सिख राज्य अब्दाली आक्रमण के विरुद्ध तरंग–रोध की भूमिका अदा कर रहा था और दक्षिण में हैदरअली और निजाम मराठाओं को फंसाये हुए थे। साम्राज्य में इस समय यदि अराजकता नहीं थी तो वह स्थिति अवश्य थी जो एक सम्प्रभु के निधन और दूसरे के सिंहासनारोहण के बीच पाई जाती है। दिल्ली में नजीबुद्दौला एक रिक्त सिंहासन और विधवा राजधानी की चौकीदारी कर रहा था। सम्राट शाहआलम द्वितीय अपने ही राज्य में निर्वासित का जीवन व्यतीत कर रहा था, वह शुजाउद्दौला का आश्रित था, अपने जीवनयापन के लिए वह उससे पेंशन पा रहा था। अवध के शासक की निगाह बिहार के सूबे पर थी और वह बंगाल के नवाब मीरकासिम के साथ जो अंग्रेजी शासन के जुए को उतार फेंकने की तैयारी कर रहा था,

षडयंत्र रचने में व्यस्त था। विजयी मुस्लिम गठबन्धन शुजाउद्दौला और अफगान सरदारों की कभी शांत न होने वाली शत्रुता के कारण टूटने लगा था। पानीपत में केवल मराठाओं के उच्छृंखल स्वप्न को तोडा था, परंतु उससे इस्लाम को स्थायी शान्ति की प्राप्ति नही हुई थी। जैसे ही मराठाओं का पराभव हुआ, जाट सत्ता का प्रवेश प्रारम्भ हो गया, उसने विजेता को चुनौती दी और वह थकान से चकनाचूर होकर संघर्ष से अलग हो गया तथा सिन्ध के पार चला गया था। दृढ जाट साहस ने नीचे लेटे हुए हिदू मस्तिष्क में, विश्वास का संचार किया और इस्लाम को पुनः प्रतिरक्षात्मक स्थिति पर आने के लिए बाध्य होना पडा। अपनी तमाम महत्वाकांक्षाओं के बावजूद सूरजमल ने कभी भी मुगल सत्ता की समाप्ति नहीं चाही।

संदर्भ

1. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, मध्यकालीन भारत का इतिहास, (1000–1707), पृ. 680–681।
2. शाकिर, 89।
3. इलियट, VIII, 60, मैं रुस्तम अली।
4. डॉ गिरीश चन्द्र द्विवेदी, जाट और मुगल साम्राज्य, पृ. 130–131।
5. सरकार कृत फाल, II, 33।
6. मेम्वोआर दे यात, I।
7. कालिका रंजन कानूनगो, जाट इतिहास, अध्याय –3, पृ. 36–37।
8. मेम्वोआर दे यात, 29।
9. डॉ गिरीश चन्द्र द्विवेदी, जाट और मुगल साम्राज्य, पृ. 132–133।
10. पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र 101।
11. दिल्ली क्रानिकल्स, पृ. 81।
12. शाहआलम, पृ. 6।
13. दलीत सिंह अहलावत, जाट वीरों का इतिहास, पृ. 678।
14. रघुनाथराव का पत्र, एस. पी. डी, II, 84 ।
15. गिरीश चन्द्र द्विवेदी, जाट और मुगल साम्राज्य, पृ. 133–134।

षष्ठ अध्याय

18 वीं शताब्दी में विशेषकर सदी के उत्तरार्द्ध में जाट–मुगल सम्बन्धो ने तत्कालीन भारत की राजनीति को बहुत अधिक प्रभावित किया। जाट–मुगल सम्बन्धों का प्रभाव तत्कालीन राजनीति पर स्पष्ट दिखाई देता है। मुगल सम्राट मोहम्मदशाह ने तो जाटों के प्रति सामान्यतया नरम रुख रखा, किन्तु उसके उत्तराधिकारी अहमदशाह ने जाट सूरजमल और उसके समर्थकों के साथ प्रारंभ में कडा रुख अपनाया। उसके बजीर और मीर बख्शी ने जाटों को युद्ध क्षेत्र में उतरने को बाध्य कर दिया। 1750 ई. में शाही बजीर सफदरजंग और सूरजमल के मध्य मित्रता हो गई, जिससे कुछ समय के लिए सम्बन्ध (जाट–मुगल) सामान्य बने रहे। सूरजमल ने प्रथम अफगान अभियान और द्वितीय अफगान अभियान में अपने मित्र की सहायता कर शाही–सरकार से सम्बन्धों को बनाए रखा। इसी प्रकार जावेद की हत्या में भी सूरजमल ने सफदरजंग का साथ दिया तथा शाही गृह–युद्ध में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सूरजमल हर कदम पर शाही–सरकार का सहयोगी रहा, किन्तु नजीबुद्दौला से सूरजमल के सम्बन्ध संघर्षपूर्ण रहे, इन्हीं संघर्षपूर्ण सम्बन्धों का परिणाम यह निकला कि सूरजमल की हत्या कर दी गई। मुगलों से अपने पिता की हत्या का प्रतिशोध जवाहर सिंह ने लिया। इस प्रकार इन जाट–मुगल सम्बन्धों का तत्कालीन राजनीति पर गहरा प्रभाव पडा। राजकुमार सूरजमल का सफदरजंग से मैत्री–गठबंधन अमिश्रित वरदान नही था। एक तरफ यदि उसकी समृद्धि और प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई तो दूसरी तरफ इसने उसे दरबार की पेचीदी राजनीति में उलझा दिया।

गृहयुद्ध में विशेषकर उसके अन्तिम चरणों में अशुभ घटनाक्रमों के बीच छिपे हुए थे। उसकी औपचारिक समाप्ति को मुस्किल से अभी दो सप्ताह बीते थे कि खांडोजी होल्कर अपने पिता के आदेश पर कि उसे सूरजमल के विरुद्ध अभियान में बख्शी के साथ शामिल होना है,[1] दिल्ली आ गया और जाटों के खिलाफ कार्यवाही अगले सप्ताह फिर से प्रारंभ हो गई।

यह स्पष्ट है कि बख्शी सूरजमल और उसके समर्थकों से सफदरजंग को उनके द्वारा दी गई सहायता के कारण क्रुद्ध था। तथापि, केवल यही कारण उन पर आक्रमण को पूरी तरह स्पष्ट नही करता। इसमें कुछ और भी बातें थीं, जिन पर ध्यान नही दिया गया। हम देख चुके है कि किस तरह बजीर (इंतिजाम) ने सूरजमल से मिलकर अंतिम क्षणों में सुलह कराने के श्रेय से उसे वंचित कर दिया था। निर्णायक सैन्य विजय और राजनयिक सफलता, इन दोनों की प्राप्ति उसे नही हो सकी थी। इसके अतिरिक्त अपने घोर शत्रु, बजीर के साथ सूरजमल की निकटता जो गृहयुद्ध के अंतिम चरणों के समय साफ हो गई थी, को भी वह सहन नही कर सकता था। बजीर और बख्शी, दोनों यह जानते थे कि उस समय सूरजमल ही एकमात्र ऐसा व्यक्ति था, जो बख्शी की बढ़त को रोक सकता था।[2] अतः बजीर ने (सफदरजंग के साथ–साथ) उससे भी मैत्री सम्बन्ध स्थापित करके उसका समर्थन किया, जबकि वास्तविक रूप में बख्शी उसे बर्बाद करना चाहता था। बजीर बहुत चतुराई से जाट राजकुमार को नाराज करना बचा गया।[3] उसके (जाट के) शत्रु के पुत्र,

फतेह सिंह द्वारा घसीरा को पुनः प्राप्त करने की प्रार्थना को सुनने से उसने जिस तरह मना किया, उससे यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है। बजीर इमाद की महत्वाकांक्षाओं को प्रतिबंधित करने के उद्देश्य से हमेशा सूरजमल की ताकत को अक्षुण्ण रखना चाहता था, अतः उसने जाट युद्ध का विरोध किया। इमाद यह भी समझ गया, लेकिन उसने इसका अनुमान दूसरी तरह से लगाया, शक्तिशाली मराठा तो पहले से ही उसके पक्ष में थे और अब यदि संभव हुआ तो मुगल तख्त तक पहुँचने के लिए[4] केवल सूरजमल को ही जड से उखाड फेंकना था।

इसके लिए उसने एक योजना बनाई। इमाद ने सूरजमल के कट्टर दुश्मन मोहकम सिंह के दाबों पर तत्परता से विचार करना शुरु किया। मोहकम सिंह अपनी जागीर पुनः प्राप्त करने के लिए इमाद की सहायता चाहता था। अतः वह 24 दिसम्बर,1753 ई को इमाद से उसके निवास स्थान पर मिला। इमाद भी चाहता था। कि सूरजमल के विरुद्ध मोहकम सिंह से अधिक उपयुक्त और कोई नही हो सकता अतः इमाद ने उसे सहायता का आश्वासन दिया। इमाद ने मुगल सम्राट से भी आग्रह किया। कि वह उसके साथ चले, दिल्ली के दक्षिण में स्थित जाटों का दमन करे और लगान वसूल करे या मोहकम सिंह जो दो करोड रुपये देने को तैयार था, लेकर उसकी पैतृक जमींदारी वापिस करे। सम्राट ने पहले तो यह इच्छा व्यक्त की कि मोहकम सिंह

'नलबंदी' के अलावा सात आना प्रति रुपये की दर के साथ पाँच करोड रुपये तुरंत अदा करे। लेकिन बाद में वह दो करोड रुपयों पर मान गया।[5] इस योजना को लागू करना उतना ही कठिन था, जितना कि उसकी रुपरेखा तैयार करना सरल था। फिर भी इससे इमाद और मराठों को सूरजमल के खिलाफ अपने आश्रित की सेवाओं का इस्तेमाल करना संभव हो गया।

यदि इमाद के मन में केवल सल्तनत की सेवा करने का ही पवित्र इरादा होता तो जाट अपहारकों की सम्पत्ति छीनकर राज्य के कर्जों को चुकाना और उनसे बकाया राशि वसूल करना, एक प्रशसंनीय प्रस्ताव था। यह तथ्य कि उसने स्वयं 'खलीसा' और सर्फ–ए–खास' की आय का गवन किया था, और यही नही, सिपाहियों के वेतन बाँटने के लिए सम्राट द्वारा दी गई राशि को भी उसने हड़प लिया और इस पर भी उन्हें सम्राट और बजीर के खिलाफ हर दिन उपद्रव करने के लिए भड़काता रहता था। यहाँ यह स्पष्ट करना है कि जाटों द्वारा किए गये अधिग्रहणों के दुष्प्रभावों पर जोर देते समय इमाद केवल सूरजमल से अपनी निजी दुश्मनी के कारण उससे निपटने के लिए कानूनी आधारों को उठा रहा था। हमारे पास ऐसा कोई प्रमाण नही है कि इमाद ने दूसरे किसी आक्रमणकारी से भूमि को पुनः प्राप्त करने के लिए ऐसा उत्साह दिखाया हो। ऐसा मालूम होता है कि बादशाह इस चाल की वास्तविकता समझ गया और बाहरी तौर पर उसने जो भी मुद्रा अपनाई हो, भीतरी तौर पर बजीर की सलाह से, वह जाट युद्ध के समय इमाद से दूर रहा।[6] तथापि अपने मराठा सहयोगियों के आगमन और सहमति के बिना, अपनी तमाम शिकायतों के बाबजूद इमाद अपने पंगू संसाधनों के साथ अकेले जाटों की ताकत को ललकारने का साहस नही कर सका था। किसी भी ऊँची बोली बोलने वाले के पक्ष में अपनी तलवार उठाने को सदा तैयार मराठों के पास इमाद का साथ देने के लिए एक और प्रलोभन था। उन्होनें उसे अपना मनपसंद आदमी पाया था। तथापि सूरजमल के खिलाफ उनके अपने मनसूबे थे। सम्पन्न इलाकों को लूटना और दूसरों से धन

वसूलना उनकी नीति की चिरस्थायी विशेषता थी। अतः जैसा कि एक समकालीन ने कहा है, इन 'पेशेवरों लुटेरों ' के लिए जाट राज्य की निरंतर बढती धन–दौलत और आम खुशहाली ने सहज ही एक बहुत बड़ा आकर्षण बना दिया।[7] कभी न तृप्त होने वाले उनके लोभ के साथ सूरजमल की उत्तेजना भी शामिल हो गई। हम जानते है कि उनके बढ़ाव का विरोध करने की कोशिश में जाटों की सेनाऐं अनेक बार शाही सेनाओं के साथ शामिल हुई थीं। केवल कुछ माह पूर्व ही सूरजमल ने उन्हें उत्तर से निकाल बाहर करने के लिए युद्ध में अपने हिस्से का खर्च बहन करने का प्रस्ताव कर राजपूतों के साथ मिलकर उनके खिलाफ एक सयुंक्त मोर्चा बनाने का प्रयत्न किया था। नवंबर 1753 ई में पुनः उसने दौरे पर आए जयपुर नरेश के साथ उनके खिलाफ एक समझौता कर लिया था, स्पष्टतः जाटों की इस मराठा–विरोधी नीति ने उन्हें बेहद नाराज कर दिया था, यद्यपि यह मराठों की ही कारगुजारियों का स्वभाविक परिणाम था। जाट दूत (रुप राम कटारी) के सामने मल्हारराव होल्कर की यह व्यंग्योक्ति कि (जाटों के विरुद्ध) वह कुछ तो अपनी इच्छा से और बादशाह (निहितार्थ में इमाद) के कहने पर आया है, इस बात की पूर्णतः पुष्टि करती है।[8]

सूरजमल ने पहले ही काफी ताकत हासिल कर ली है और यदि उसे अभी नही कुचला गया तो वह बाद में खतरनाक साबित हो सकता है, मालूम होता है कि मराठों ने ऐसा ही तर्क दिया हो।

सके अलावा मोहकमसिंह के दृढ़ाग्रहों ने भी मराठों को इसी लक्ष्य की ओर मोडा। शायद ही कोई ऐसा क्षमतावान व्यक्ति बचा होगा जिसका दरवाजा उसने न खटखटाया होगा। वह लगभग 1735 ई मराठों के सम्पर्क में था। उसने मल्हारराव होल्कर की नौकरी के साथ उनकी अनुकंपा भी हासिल की।[9] 1753 ई में एक मराठा सरदार ने पेशवा से अनुरोध किया था कि वह उसे और उसके भाई जुलकरन को एक सांत्वनापूर्ण पत्र भेजे कि जब मराठे जाट देश में आए तो वे उनसे मिलें और तब उनकी समस्याएँ हल हो जाएँगी।[10] इसके साथ ही जैसा मल्हारराव होल्कर ने बताया है, मराठा आक्रमण का एक और सहायक कारण सूरजमल द्वारा घसीरा के राव बहादुर सिंह बड़गूजर की हत्या से उत्पन्न उनका क्रोध भी था। [11]

इस प्रकार स्पष्ट हो गया कि इमाद होता या न होता, मराठा स्वयं आगे–पीछे अपनी फौजें जाटों पर हमले के लिए ले आते। सौभाग्य से अपने स्वामी, बख्शी, में उन्होनें एक ऐसा व्यक्ति पाया था जो खुद भी उन्हीं लोगों पर अपना कहर बरसा करने के लिए कटिबद्ध था।

इस प्रकार एक 'मुकम्मिल समझौते' के बाद ही इमाद और मराठों ने जाटों के खिलाफ कार्यवाही हाथ में ली थी। प्रारंभ में उद्धृत खांडोजी के वक्तव्य से भी इसकी पुष्टि होती है।

उनके अभियान की नीति के सूक्ष्म अवलोकन से यह मालूम होता है कि इमाद और उसके सहयोगियों ने दो दिशाओं से सूरजमल को गिरफ्त में लेने की कोशिशें की। इमाद और खांडोजी ने उत्तर के कमजोर मोर्चे की ओर से हमला किया जबकि मुख्य मराठा फौज ने पश्चिम से आक्रमण किया।

सबसे पहले जयपुर जाने के पीछे रघुनाथराव का उद्देश्य न केवल राजपूतों से बकाया राशि उगाहना था, वरन माधौसिंह को सूरजमल से अलग भी करना था। उसके आगमन तक इमाद और

खांडोजी को सूरजमल के उत्तरी इलाकों पर आक्रमण करना था, जो अपने पीछे मराठा टुकडियों के होने के कारण उनकी प्रतिरक्षा के लिए पर्याप्त फौजें नही भेज सकता था। जाट शक्ति के समूल नाश की इससे बेहतर योजना नहीं बनाई जा सकती थी।

नबम्वर 1753 ईं के अन्तिम सप्ताह में सूरजमल ने अपने दूत रुपराम कटारी को जयपुर स्थित मराठ़ा शिविर में भेजा। इसका उद्देश्य मराठों के असली इरादे और ताकत का पता लगाना था और संभव हो सके तो एक सम्मानजनक समझौते के लिए बातचीत करना भी। मल्हारराव ने 2 करोड रुपयों की मांग की, लेकिन रुपराम कटारी 4 लाख से ज्यदा देने को तैयार नही था। होल्कर ने उसे ठुकरा दिया और जब उसने जाटों का सर्वनाश कर देने की अपनी धमकी दुहराई तो रुपराम ने उसे तुरंत जबाब दिया, ''तुम चार लाख आदमियों की सहायता लेकर भी जाट किलों पर आक्रमण नही कर सकते। जब वार्ताएं अभी चल ही रही थीं तो रुपराम ने सूरजमल को संदेश पहुँचाया कि मराठे तो युद्ध के लिए उतारू हैं' अतः वह अपने आपको अच्छी तरह से तैयार कर लें। तदनुसार राजा बदन सिंह ने डीग में अपने दरबारियों को सलाह–मशविरे के लिए बुलवाया। उन सभी ने अपमान जनक समर्पण की अपेक्षा सम्मानजनक युद्ध को पसंद किया और ज्यदा जोश–खरोश के साथ युद्ध की तैयारी शुरु कर दी गईं। अपने वीर सहयोगियों की सहायता के साथ सूरजमल ने डीग, भरतपुर,कुम्हेर और बैर के मुख्य किलों को कड़ी प्रतिरक्षा की व्यवस्था की क्योंकि अंततः वहीं जाटों के भाग्य का फैसला होना था।[12]

26 नवम्बर, 1753 ई. को इमाद ने अपने मुख्य एजेंट अकीबत महमूद को 500 बदख्शियों और 20,000 मराठा सैनिकों के साथ फरीदाबाद को, जो उसकी जागीर था, लेकिन कुछ समय से बलराम ने उस पर कब्जा कर रखा था, पुनः जीतने के लिए भेजा। राजस्व और नजराना मांगा जाने पर बलराम युद्ध करने को तैयार हो गया। इस पर इमाद ने 700 अतिरिक्त सैनिक और उन्नत किस्म की 30 तोंपे और राकेट भेजे। कुछ प्रतिरोध के बाद बलराम ने समर्पण का निश्चय किया। अतः वह अकीबत से मिला और बकाया राशि चुकाने का बादा किया। अकीबत ने सूरजमल के पास भी अपने आदमी भेजे और कहलवाया कि बकाया राशि को चुकता करे, किन्तु सूरजमल ने इस बात की उपेक्षा कर दी। इसी समय पलवल के किसान भी राजस्व को चुकाने में आना–कानी करने लगे। किसानो ने यह प्रदर्शित कर दिया कि बलराम उनसे पुनः लगान माँग ले। पलवल के कानूनगो संतोष राय (बलराम द्वारा बर्खास्त किये जाने से दुश्मन बन गया) ने अकीबत से कहा कि जब तक बलराम को मारा नहीं जायेगा तब तक जिले पर पुनःकब्जा करना सम्भव नहीं होगा। उसके द्वारा भेजे गये एक थानेदार को स्थानीय किसानों ने, जो बलराम को सहयोग दे रहे थे, निकाल बाहर किया। अतः 29 नवम्बर, 1753 ई. को अकीबत वल्लभगढ के एक मैदान में लौट आया और बलराम को बुलावा भेजा। बलराम अपने दो पुत्रो अपने दीवान तथा 250 घुडसवारो और पैदल सिपाहियों के साथ आ गया।

बलराम की हत्या के तरीके के मामले में इतिहासकारो में मतभेद है। दरबारी इतिहासकार कहता है कि अकीबत ने यह कहकर कि इमाद ने उसके साथ सुलह कर ली है, (यद्यपि यह गलत था) और उगाही में देरी के कारण इमाद उसे फटकार रहा है, इस बात पर जोर दिया कि बलराम

वायदे के मुताबिक नजराना अदा करे। बलराम ने जवाब दिया कि वह अपनी जेब में पैसा लेकर नही आया है, जिसे उसने लगान एकत्र करने के बाद ही देने का वायदा किया था।

और यदि वह (अकीबत) उस भूभाग को छीनना चाहता है तो इसके लिए उसे लड़ाई लड़नी पड़ेगी। इस जबाव से अकीवत नाराज हो उठा और उसके बाद आवेश में आकर दोनों बहस करने लगे। जब बलराम ने अपनी तलवार पर अपना हाथ रखा तो आफताब खाँ के नेतृत्व में बदख्शी उस पर टूट पडे और उसके पुत्रों, दीवान और अन्य लोगों के साथ उसे मार डाला। इस प्रक्रिया में उनके दो साथी भी मार डाले गए। उधर 'सुजान चरित्र' में कहा गया है कि अकीबत ने अपने दूत को बलराम के पास भेजा, जिसने उसकी आशकांएँ मिटाने के लिए बडी से बडी पवित्र कसमें खाईं। जब जाट आया तो अकीबत ने उससे बहुत 'मीठे शब्दों' में बात की, पर पास में छिपे हत्यारे उस पर टूट पडे और बलराम तथा उसके पुत्रों का सिर काट दिया। जो भी सच रहा हो, ये दोनों स्त्रोत इस बात पर सहमत है कि बलराम की हत्या पूर्व–नियोजित थी। इस कृत्य के बाद बल्लभगढ़ का तोपखाना आधी रात तक गोलीबारी करता रहा, इसके बाद बलराम के परिवार के शेष जीवित सदस्य सूरजमल के पास भाग गए। अकीबत ने तोपखाने,खजाने और अन्य वस्तुओं के साथ किले पर कब्जा कर लिया। बल्लभगढ़ का नाम बदलकर निजामगढ़ कर दिया गया और बालू के सिर को फरीदाबाद के पास एक खंभे से लटका दिया गया, ताकि उससे दूसरे विद्रोहियों को सीख मिल सके। बलराम और उसके किले के पतन के समाचार ने बजीर को दुखी कर दिया।[13]

बलराम की मृत्यु का समाचार मिलने पर सूरजमल ने अपने पुत्र जवाहर सिंह को ,दुश्मन की गतिविधियों पर निगरानी रखने के लिए वरसाना की ओर रवाना होने का आदेश दिया।[14] इसी बीच, अपनी सफलता से उत्साहित होंकर अकीबत ने अपने हमले को और सख्त कर दिया।

इसके बाद 8 जनवरी, 1754 ई. को अकीबत के साथ इमाद बल्लभगढ़ से पलवल चला गया, इधर मोहकम सिंह को उसने खांडोजी के पास होड़ल भेजा। इमाद ने सूरजमल के कट्टर दुश्मन फतेह सिंह को शानदार खिलअत भेंट की और उसे अपने पिता की जागीर पर नियुक्त कर दिया, साथ ही आदेश दिया कि आस–पास के जाटों को लूट मारे और उन्हें गिरफ्तार करें।[15] माह के लगभग मध्य में इमाद ने अकीबत, मोहकम सिंह और फतेहसिंह को 5–6 हजार सिपाहियों के साथ मेवात में नारनौल और रेवाड़ी की ओर भेजा। तथा सैफुल्ला खाँ, जाहिद बेग और अन्य लोगों को बडी तादाद में फौज के साथ कोल, सिंकदराबाद और जलेसर की तरफ भेजा। इस तरह नदी के दोनों ओर जाटों का एक बडा क्षेत्र उसके हाथ में पड गया। फिर 3 फरवरी को यह पता चला कि जाट अधिकारियों को खदेडने के बाद मराठा फौजें मथुरा और आगरा के आस पास के ग्रामीण इलाकों को दवाने में लगी है। खांडोजी को वहाँ का हाकिम बना दिया गया। आतंक के कारण इन क्षेत्रों में बहुत बडी संख्या में लोगों ने भागकर जाट राजा के पास शरण चाही।[16]

इन पराजयों के मध्य 16 जनवरी, 1754 ई. को रघुनाथराव होल्कर के नेतृत्व में एक विशाल मराठा सेना जाट देश के मध्य आ धमकी। हरगोविंद नाटानी और इमाद भी उससे आ मिले। राजा बदन सिंह, उसके मंत्री गजसिंह और जवाहर सिंह के निजी मार्गदर्शन में राजधानी डीग की प्रतिरक्षा के लिए व्यापक प्रबंध किए गए। सूरजमल ने स्वयं कुम्हेर में ठहरने का निश्चय

किया, जो उस समय एक साधारण दुर्ग था। विरोधियों की विशाल संयुक्त शक्ति को देखते हुए वह कुम्हेर में कोई खतरा नही उठाना चाहता था। हालांकि इस बात पर विश्वास न हो किन्तु जाटों ने कुम्हेर की किलेबंदी कुछ इस तरह की वह पहले से ज्यदा बडा हो गया।[17] उस किले में इतनी अधिक मात्रा में रसद इकट्ठा की गई थी कि भारत में कोई किला उसकी बराबरी नहीं कर सकता था।

सूरजमल ने अपनी पसन्द के स्थान पर ही दुश्मन को हमला करने के लिए प्रेरित किया और अन्ततः दोनों पक्ष के मध्य घमासान युद्ध हुआ, जिसमें दोनों पक्षों के लोग बडी सुख्या में मारे गये। इसके बाद सूरजमल अपनी युद्धनीति के अनुसार कुम्हेर लौट गया जो मराठों द्वारा डीग और अन्य स्थानों के साथ घेरेबंदी का मुख्य निशाना बन गया। इस तरह जो घेरेबंदी हुई वह चार माह तक जारी रही। परंतु इन किलों की दुर्भेधता ही मराठों के लिए घातक सिद्ध हुई। उपयुक्त तोपों के अभाव में उनके अच्छे से अच्छे हमले भी निष्प्रभावी रहे। तथापि, अपनी भारी संख्या के कारण वे ग्रामीण इलाकों की बराबरी करने में सफल रहे।

24 फरवरी से 25 मार्च के मध्य होल्कर के बुलावे पर इमाद–उल–मुल्क मथुरा से कुम्हेर आया। अकीबत भी उसके साथ रहा। उसने भी किले पर हमले किए प्रतिदिन छापे मारे, पर विफल रहा।[18]

होल्कर ने इमाद के माध्यम से दिल्ली और आगरा स्थित शस्त्रागारों से बडी तोपें मंगवाने की कोशिश की, किन्तु सफल न हो सका। इमाद और उसके साथियों द्वारा सूरजमल के खिलाफ जो कार्यवाही की जा रही थी, बजीर उसके खिलाफ था। अतः उसने मुगल सम्राट को न केवल तोपें भेजने से इनकार करने के लिए वरन जाट राजकुमार को इस आशय के गोपनीय पत्र लिखने के लिए मना लिया कि मीर बख्शी उसके (सूरजमल) विरुद्ध जो युद्ध लडा रहा है उसमें शहंशाह की सहमति नही है। स्पष्ट है कि इनमें से ऐसे कुछ पत्र इमाद और होल्कर ने बीच में ही हस्तगत कर लिए। अब इमाद ने अकीबत को तोपें देने के लिए सम्राट पर दवाब बनाने के लिए भेजा, परंतु इसका कोई परिणाम नहीं निकला। इधर मराठे भी पूर्णतः शाही शस्त्रगार पर आश्रित नहीं थे।

उसी समय मराठों पर विपत्ति का पहाड टूट पडा। एक दिन खांडोजी अपनी पालकी पर सवार होकर अपनी अग्रिम चौकी का निरीक्षण कर रहा था, तभी गोलीबारी शुरु हो गई। और संयोग से एक जंबुर्क गोली से वह मारा गया। खांडोजी की मृत्यु से मल्हारराव होलकर व्यथा से भर गया। सूरजमल भी इस घटना से द्रवित हो गया और उसने शोक संतृप्त होल्कर को शोक वस्त्र भेजे और मराठों की कटटर शत्रुता को भूलकर गहन हार्दिक संवेदनाएँ भेजी। तथापि, इस व्यवहार के बावजूद अपने एक मात्र पुत्र की मृत्यु ने होल्कर को क्रोध से पागल कर दिया और उसने खांडोजी के हत्यारों को 'नेस्तनाबूत' करने की कसम खाई। इसके बाद घेरेबंदी पहले से अधिक कड़ी कर दी गई।

मराठा स्त्रोत 'भाऊ खबर' के आधार पर यह कहा जाता है कि सूरजमल का विनाश अब कुछ ही दिनों की बात प्रतीत होने लगा था कि रानी हँसिया ने अपने निराश पति को उत्साहित किया, और जयप्पा शिंदे की आतुरतापूर्वक माँगी गई अनुकंपा ने सूरजमल को अपने निकट सर्वनाश

से बचाया।[19] यह संभव है कि जाट–शिंदे के सम्पर्क में आए होगें जिसकी, होल्करों से शत्रुता सर्वविदित थी। सूरजमल एक साहसी व्यक्ति था उसने बेहद संकटापन्न स्थितियों में भी अपनी स्वभाविक शांति एवं संतुलन को बनाए रखा। वर्तमान विषय में कुम्हेर, उसके शब्दों का ही प्रयोग किया जाए तो, लगभग अपराजेय था और उसमें एक वर्ष से अधिक चलने वाली रसद उपलब्ध थी। यह सब उसकी तथाकथित बढ़ती निराशा को झुठ़लाता है। 1 अप्रैल,1754 ई. की रात को सूरजमल ने कुम्हेर दुर्ग के बाहर जयपुर के सेनापति नाटानी से मुलाकात की। इसके बाद जाट सेनाऐं बाहर निकल आईं और मैदान में शत्रु की चौकियों पर टूट पडीं। यह लड़ाई बराबर की रही दोनों पक्षों को क्षति पहुँची। 30 अप्रैल को फिर से एक जाट टुकडी ने शिवदेव पर अचानक हमला किया और 41 मराठा सैनिकों को मारकर 29,500 रुपये छीन लिए। उसके पूर्व (मार्च के अंत में) बहादुर सिंह के नेतृत्व में वैर से जाट सैनिक एक मराठा टुकडी पर टूट पडे और होल्कर परिवार की कुछ प्रतिष्ठित महिलाओं के पास से काफी धन छीन ले गए। इस निड़रता से मल्हारराव होल्कर ने वास्तव में अपमानित अनुभव किया। तथापि सूरजमल ने उन महिलाओं को सम्मानपूर्वक वापस भेजने की सौजन्यता प्रदर्शित का।[20] ये कुछ घटनाएँ जाट वीर की काल्पनिक निराशा और उसके आसन्न सर्वनाश को झुठलाने के लिए पर्याप्त है।

अंत में इमाद द्वारा तोपों को पाने की लगातार कोशिशों ने सूरजमल को जल्दी युद्ध समाप्त करने के लिए आतुर कर दिया होगा। अतः सूरजमल ने सम्राट और बजीर को पत्र लिखकर निवेदन किया कि यदि इमाद और मराठे अपने मंसूबों में कामयाब हो गए तो इससे इमाद का सिर फिर जाएगा और वह खुद सिंहासन की ओर नजर रखने लगेगा और सल्तनत के साथ–साथ वजारत का भी नाश कर डालेगा। सूरजमल ने उन दोनों को परामर्श दिया कि वे दिल्ली से बाहर निकलकर राजपूतों तथा सफदरजंग के साथ एक संयुक्त मोर्चा बनाकर, साझा दमनकारियों मराठों को उत्तर भारत से खदेड़ दें। एक मराठा खतरे से छुटकारा पा लेने के बाद वह स्वयं भी इस प्रस्तावित मोर्चे में शामिल हो जाएगा।[21] यह प्रस्ताव, निःसंदेह, अपनी तात्कालिक समस्याओं से छुटकारा पाने की उसकी चतुराई को प्रदर्शित करता है। परंतु इसके साथ ही वह उसके दो वर्ष पूर्व अपनाए गए रुख से भी मेल खाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने अपने पुराने मित्र सफदरजंग को भी पत्र लिखा। शायद यही कारण था कि नबाब को निरुत्साहित करने के प्रत्यक्ष प्रयत्न में रघुनाथराव ने उसे सूरजमल पर अपनी विजय की झूठी सूचना भेजी।[22]

आखिरकार इमाद और मराठे भी इस युद्ध में स्वयं को अपमानित और लज्जित महसूस कर रहे थे, क्योंकि, उन्होनें इस युद्ध में अपनी ऐडी–चोटी तक का जोर लगा लिया लेकिन लड़ाई को अपने पक्ष में नही कर पाये। अंततः 18 मई 1754 ई को या उससे कुछ पहले शांति स्थापित हो गई। बख्शी के साथ वार्ताओं में हरनाथसिंह जाट ने भाग लिया।

यह निश्चित हुआ कि सूरजमल मराठों को 30 लाख रुपये देगा। यह राशि उस दो करोड़ से अलग थी–जिसे इमाद ने जाट पर बतौर बकाया कर के रुप में लादी थी और जिसे शंहशाह को देना था, पर अब उसके बदले यह राशि उसे इमाद और मराठों को देनी थी। रुपराम ने तीस लाख एक रुपया 3 वर्ष में किश्तों में चुकाने का इकरारनामा मराठों के लिए कर दिया।[23]

अपने शांत अपराजेय साहस, कुशल प्रतिरक्षात्मक रण्रनीति और दूरदर्शितापूर्ण कूटनीति से सूरजमल 80,000 लोगों के गठबंधन के मंसूबों को विफल करने में सफल हुआ। इससे सम्पूर्ण भारत में उसे अत्यधिक प्रसिद्धि मिली।[24] प्रतिशोधपूर्ण इमाद और लुटेरे मराठों ने उसके अस्तित्व को मिटाने में कोई कसर नही छोडी थी, पर वे अपने प्रकट उद्देश्य में असफल रहे। उनके द्वारा दर्शाई गई लूट–खशोट वाली शत्रुता जाटों के हृदय में गहरे पैठ गई और उससे आने वाले दिनों में और पानीपत के युद्ध के समय उनके प्रति जाट–नीति भी सहज प्रभावित हुई।

दरबारी रणनीति में जाट युद्ध एक महत्वपूर्ण मसला बना रहा। इमाद से आतंकित शंहशाह और बजीर भी सूरजमल की तरह ही सोचते रहे। बजीर ने सफदरजंग,सूरजमल और माधोसिंह के पास मराठों के विरुद्ध सहायता के लिए गोपनीय पत्र लिखे। उसने व्यवस्था की कि बादशाह दिल्ली से बाहर कोल तक जाए और सफदरजंग के साथ मिलकर आगरा की ओर बढ़े। सूरजमल और राजपूत राजाओं को भी उनसे आ मिलना था और तब मराठा विरोधी अभियान की शुरुआत होनी थी। परंतु इस योजना को बनाना उसके क्रियान्वयन से भिन्न था। बेहद जर्जर साजोसामान के साथ सम्राट दिल्ली के बाहर निकला और सिकन्दराबाद तक पहुँचा। दूसरी तरफ 18 मई को इमाद ने कुम्हेर छोड दिया और मथुरा में पड़ाव डाला।

फिर 23 तारीख को रघुनाथराव ने उसका अनुसरण किया और 25 तक मथुरा में रहा। उसी रात होल्कर के अधीन उसके हरावल दस्ते सिंकदराबाद की ओर बढ़े और बाद में वहाँ घटी घटनाओं ने प्रस्तावित मोर्चे के गठन की सारी आशाएँ ध्वस्त कर दी। सिंकदराबाद में कायर बादशाह और बजीर के साथ जो कुछ भी हुआ उसके लिए सूरजमल या कोई समर्थ राजा उत्तरदायी नही था।[25] एक सप्ताह बाद दिल्ली में इमाद ने वजारत पर कब्जा कर लिया और मुगल बादशाह अहमदशाह के स्थान पर अपने कठपुतली, आलमगीर द्वितीय[26] को सिंहासन पर बैठा दिया।

सूरजमल को मराठा संकट से मुश्किल से राहत की साँस मिली थी कि अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण कर दिया। आक्रमणकारियों ने आलमगीर द्वितीय को अपदस्त कर दिया, इमाद को गिरफ्तार कर लिया तथा दिल्ली की आबादी को लूटा, यातनाएँ दी और अत्याचार किए। इमाद से वजारत छीन कर इंतिजाम को दे दी, लेकिन शर्त रखी कि इसके बदले में इंतिजाम शाह को दो करोड रुपये देगा। आक्रमणकारियों के कहर से बचने के लिए राजधानी की लगभग आधी जनता जाट प्रदेशों मे शरण के लिए जा पहुँची। सूरजमल ने शराणार्थियों से पैसा ऐंठकर उनकी सुरक्षा की, किन्तु उसे अहमदशाह अब्दाली का भय भी था। ऐसी स्थिति मे बडी सावधानी, दूरदर्शिता और साहस के साथ शाह से निपटने की आवश्यकता थी। लेकिन इससे पूर्व 19 दिसम्बर, 1756 ई. को इमाद ने सूरजमल, मराठों और शुजा को पत्र लिखकर सहायता माँगी थी। इमाद की प्रार्थनाओं में विवशता साफ नजर आ रही थी, किन्तु सूरजमल के मन में सन्देह था कि इस बार अफगानीयों का संकट टल जाएगा तो इमाद अपने मराठा–मित्रों की सहायता से मेरे विरुद्ध षडयंत्र रचेगा।[27]

अतः सूरजमल ने बुद्धिमानी का परिचय देते हुए ऐसे साँप को दूध पिलाने से मना कर दिया। इसके बजाय उसने इस स्थिति में उस आक्रमणकारी से मुक्ति पाने के लिए विचार किया। जनवरी 1757 ई. के आखिर में अहमदशाह अब्दाली के प्रति समर्पण का भाव प्रदर्शित करते हुए अपने साझा दुश्मन 'मराठा–इमाद' को कुचलने का प्रस्ताव लेकर अपने एक राजदूत को अब्दाली के पास भेजा तथा इसके बदले में शाह को 60 लाख रुपया देने का वचन दिया।[28]

अहमदशाह अब्दाली ने इमाद से वजारत छीनकर इंतिजाम को सौंपी तो मराठों को सन्देह हुआ कि इस मे सूरजमल का हाथ है। एक रिपोर्ट में लिखा है कि इमाद का तख्ता पलटने की जड़ में इंतिजाम और सूरजमल थे। खान–ए–खाना बजीर बन गया। वर्तमान बजीर को कैद कर लिया गया और इस तरह सूरजमल का प्रभाव बढ गया। यह भी विश्वास किया जाता था कि अब्दाली की वापिसी की कीमत के तौर पर इंतिजाम ,सूरजमल और शुजा स्वयं और राजधानी के स्त्रोतों से डेढ़ करोड रुपया इकट्ठा करने पर सहमत हो गए थे। इसके बाद वे उनके साझा अत्याचारी मराठों को दंड देगें। सच्चाई जो भी रही हो, मराठों को सूरजमल की शरारतों के बारे में पक्का विश्वास हो गया था और वे इस अवसर पर उसके इस तरह के व्यवहार पर नाराज भी थे। उनकी मंडली में यह चर्चा जोरों पर थी कि अब्दाली को खदेडने के बाद वे सूरजमल से अपने मामले का निपटारा करेगें।[29]

उधर अब्दाली ने जाट राजा की गैर हाजिरी में उसके निवेदन से संतुष्ट होने से मना कर दिया। फरवरी 1757 ईं के प्रारंभ में उसने सूरजमल को पत्र लिखकर आदेश दिया कि वह अपने कब्जे की जमीन छोड दे, धन अदा करे और स्वयं उसके दरबार में उपस्थित हो। इमाद की तकदीर से अब्दाली की धोखेबाजी साफ नजर आ रही थी। अतः चतुर जाट न तो हमलावर के सामने पेश हुआ, न उसे धन और न अपनी भूमि देकर कायरतापूर्ण सुरक्षा चाही। फिर भी अहमदशाह से लड़ाई मोल लेना सूरजमल के लिए मूर्खतापूर्ण होता। मुगल शंहशाह और उसके दरबारी अहमदशाह के आगे नतमस्तक हो गये थे और धोखेबाज नजीब उससे जा मिला था, जिसके फलस्वरुप अब्दाली की सेना एक लाख हो गई थी।[30] ऐसी परिस्थितियों में सूरजमल ने अपने वकील को शर्तों पर चर्चा और रिश्वत देने अब्दाली के पास भेजा, लेकिन हकीकत में वह आक्रमणकारी के विरुद्ध एक मजबूत साथी की संभावना तलाशने के लिए और इसमें असफल होने पर इसी बीच अपनी प्रतिरक्षा को संगठित करने के लिए समय पाना चाहता था। राजपूत और अन्य प्रमुख मुस्लिम नबाब या तो हिचकिचा रहे थे या असहाय थे। केवल मराठा ही बचे थे जिनकी ओर अपने संकट के समय सूरजमल सहायता के लिए देख सकता था। उन पर अब्दाली को खदेडने की जिम्मेदारी थी। तदनुसार नबम्वर, 1757 ईं में पेशवा ने एक सेना का नेतृत्व करते हुए रघुनाथराव और मल्हारराव को दिल्ली भेजा।[31]

अब्दाली से युद्ध के लिए दृढ़निश्चयी सूरजमल ने अपने साथियों के साथ मराठों से भी मिलने का प्रस्ताव रखा, बशर्ते मराठ़ा सेना वहाँ पहुँच जाए। पर रघुनाथराव पीछे ही रहा। इन परिस्थितियों में सूरजमल ने अपने उत्तरी इलाकों की रक्षा करने के प्रयास में अपने पुत्र को भेजा और दूसरी तरफ वह खुद अपने राज्य के मध्य स्थल, जो आक्रमणकारी के कोप का सर्वाधिक

संभावित लक्ष्य बन सकता था, की प्रतिरक्षा में जुट गया।[32] इसी बीच अब्दाली ने सूरजमल पर बालगोविद साहूकार और खान–ए–समन को लौटाने के लिए जोर दिया, क्योंकि इन दोनों ने उसके यहाँ शरण ले रखी थी। किंतु सूरजमल ने साहसपूर्वक यह कहकर मना कर दिया कि मैं राजा नागरमल और अन्य लोगों को, जो मेरी शरण लिए हुए है, कैसे भेज सकता हूँ ?

यह बात अहमदशाह के लिए बर्दाश्त से बाहर थी। एक ओर जहाँ कोई देशी शहजादा उसके आदेशों की अवज्ञा का साहस नही जुटा सका, वहाँ एक घंमडी जाट ने उसकी सत्ता को ही ललकार दिया।[33] अब्दाली ने अब स्वयं जाट राजा के विरुद्ध आक्रमण का निश्चय किया और उसने एक छापामार दस्ते को फरीदाबाद भेजा। जवाहरसिंह, जो इस समय बल्लभगढ़ में था, 5 से 6 हजार सैनिकों के साथ दुश्मन पर टूट पडा और लगभग 60 लोगों को मारकर 150 घोडों पर कब्जा कर उन्हें पूरी तरह रौंद डाला। इससे दुर्रानी क्रोधित हो गया और उसने अब्दुस्समद खाँ को जाटों को कुचलने का आदेश दिया। अब्दुस्समद के प्रहार से जवाहर बाल–बाल बचा और भाग कर बल्लभगढ़ जा पहुँचा। इसके पश्चात 22 फरवरी को अहमदशाह ने दिल्ली छोडी और धीरे–धीरे आगे बढ़ता हुआ 26 फरवरी को फरीदाबाद पहुँचा। अहमदशाह ने पहले तो यह कहकर बल्लभगढ़ की उपेक्षा कर दी कि उसके लक्ष्य तो ड़ीग और कुम्हेर हैं। परंतु इमाद के आग्रह और वहाँ जवाहर सिंह की मौजूदगी ने उसे अपनी योजना बदलने के लिए बाध्य किया। उसने स्वयं बल्लभगढ़ पर हमला किया।

अब्दाली ने 3 मार्च को बल्लभगढ़ पर आक्रमण कर उसे तहस–नहस कर डाला, लेकिन जवाहरसिंह किजिलबाशों के वेश में बच निकला। फरीदाबाद के आस पास के क्षेत्र वीरान हो गये और शेष बचे हुए लोग सुरक्षा के लिए अन्यत्र भाग गए।[34] इसके बाद अब्दाली दक्षिण की तरफ आगे बढा। ग्रामीण इलाकों को लूटता, उजाडता, लोगों का कत्लेआम करता हुआ अहमदशाह अब्दाली धीरे–धीरे आ रहा था। शेरगढ़, हसनपुर, नदीना और अन्य स्थानों पर रुकता हुआ, वह 15 मार्च 1757 ई को मथुरा पहुँचा और पास स्थित महावन में ठहरा। 16 मार्च को अब्दाली ने एक दस्ते को गोकुल को लूटने भेजा। लेकिन गोकुल में चार हजार लडाकू नागा संन्यासी अपने मंदिरों की रक्षा करने के लिए कमर–कस कर तैयार थे।

अतः गोकुल के नागा सन्यासियों और अफगानों के मध्य एक भारी लडाई हुई, जिसमें लगभग 2000 नागा मारे गए, परंतु मरने से पूर्व उन्होनें इतने ही अब्दाली के सैनिक मार डाले। किंतु कोई भी पक्ष हार मानने को तैयार नही था। बंगाल के सूबेदार का एक प्रतिनिधि जुगल किशोर उस समय अब्दाली के शिविर में मौजूद था। उसने सन्यासियों से लडाई की निरर्थकता बताई, क्योंकि उनके पास धन नही मिल सकता था। अतः अब्दाली ने अपने सैनिको को वापस बुला लिया। इस प्रकार गोकुल व्यापक अफगान कहर का अपवाद बन गया। संयोग से यह घटना स्पष्ट करती है कि अब्दाली की अर्थ लिप्सा उसके धार्मिक उन्माद पर भारी पड गई। लगभग 20 मार्च को अब्दाली ने जहाँन और नजीब को आदेश दिया कि अपने नरसंहार को बंद कर अकबरावाद (आगरा) जाओ और आगरा को लूटो। अतः 15000 सैनिकों के साथ जहाँन खां 21 मार्च को आगरा पहुँचा। उसने आगरा में प्रवेश कर लूट पाट शुरु कर दी और नीला गुबंद तक कत्लेआम करता

चला गया, लेकिन दुर्ग को कब्जे में न कर सका। 23 मार्च को जहाँन खां को उसके स्वामी ने महावन बुला लिया और लूट का कुछ माल लेकर 24 मार्च को अहमदशाह अब्दाली से जा मिला।[35] अहमदशाह अब्दाली ने अपने इरादों को गुप्त रखा और तीन दिन बाद अचानक उसने डीग और कुम्हेर पर कब्जे की कसम को पूरा करने का बिना कोई प्रयत्न किए अपने वतन लौट गया।

अतः स्पष्ट है कि अफगान अभियान 'जाट काफिरों' के विरुद्ध अब्दाली का 'जेहाद' का एक रुप भी था। अफगानों ने बच्चों सहित भारी संख्या में नागरिकों की हत्या की थी, जिसमें नर–संहार की गंध आती है। इसके अलावा, उन्होनें उनके रहने के स्थानों तथा पूजा स्थलों को पूर्णतया नष्ट कर दिया था।

संयोग से यह अफगानी लुटेरेपन कों मराठों से अलग करती है। अब्दाली ने राजनीतिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए धर्म का उपयोग किया, तथा विदेशी होने के नाते उसने जनता पर निर्मम अत्याचार किए। कुछ सीमा तक इसका रहस्य, एक दिल्ली के शाह वलीउल्लाह के नेतृत्व में शक्तिशाली जाट–मराठा–सिक्ख विरोधी आन्दोलन की कार्रवाई में ढूँढा जा सकता है। उसका अन्तिम लक्ष्य इस्लाम को उसकी पुरानी परम्पराओं में पुनर्जीवित करना और उसके माध्यम से हिन्दुस्तान को प्रभारकारी मुस्लिम वर्चस्व के अधीन रखना था। यह नजीब के माध्यम से होना और जेहाद की भावना से ओतप्रोत इस्लामी सिपाहियों द्वारा प्राप्त किया जाना था। इस मार्ग में विस्तारवादी जाट सबसे ज्यादा नुकीले काँटे समझे जाते थे।[36] क्योंकि राजधानी की चारदीवारी के भीतर ही, मुगल सत्ता को पहले उखाडने वाले यही लोग थे। शाहवलीउल्लाह कहा करता था कि इनको पराभूत कर लेने से धार्मिक और भौतिक दोनों फायदे सुनिश्चित रहेगें। उसने नजीब को समझाया कि जब तक इन तीनों निर्दयी समूहो का समूल नाश नही किया जाता तब तक सम्राट सरदार और जनता कोई भी शान्ति से नही रह पायेगा।

अपने समय में शाह साहिब जैसा प्रभावशाली व्यक्ति जब जाटों के समूल नाश की उसको सलाह देता है तो इसका प्रभाव तत्कालीन प्रमुख व्यक्तियों, नजीब पर अवश्य पडा होगा, क्योंकि वह स्वयं भी जाटों से सम्बन्धित विषयों अन्य मामलों पर उसका मार्गदर्शन और प्रेरणा लिया करता था आर यही नजीब भारत के संबंध में अब्दाली का मार्गदर्शक था और इस तरह उसे ही इस सारी मूर्खता की जड माना जाता है।[37]

अहमदशाह अब्दाली द्वारा जाट राज्य के हिस्सों के विनाश से भी उसके संसाधनों पर विपरीत प्रभाव पडना अवश्यंभावी था। किंतु उसकी सैन्य शक्ति और समृद्ध कोषाकार प्रायः अप्रभावित ही रहे। अपनी असंख्य सेना के बावजूद अब्दाली भी सूरजमल या उसके मुख्य किलों को नष्ट करने में उसी प्रकार असफल रहा, जिस प्रकार तीन वर्ष पूर्व मराठे असफल रहे थे।
इसके अलावा नजराने के रुप में वह 'एक कौडी' भी प्राप्त नहीं कर सका। इस प्रकार शूरवीर और चतुर जाट सूरजमल ने अकेले ही एक तूफान, जो भयंकर था, को भी झेल लिया जबकि मुगल सम्राट और उसके दरबारी इससे ग्रस्त होकर पडे थे। यही नही, वह उत्तर भारत में एक शक्तिशाली और 'समृद्धतम' राजा के रुप में में उभरा।[38]

पानीपत के भाग्य निर्णायक युद्ध के पूर्व के चार वर्षों की यह खासियत थी कि उनमें परस्पर विरोधी–शक्तियों के आपसी दॉव–पेंच, सिद्धान्तहीन कूटनीति, अस्थिर नीतियों और निम्नकोटि के षडयंत्रों में वृद्धि हो गई थी। शायद ही कोई व्यापक दृष्टिकोण को संजोना चाहता था। तत्कालीन राजनीतिज्ञ निजी स्वार्थ और अपने संकीर्ण हितों के लिए उपयुक्त नीतियाँ बना और त्याग रहे थे। उन्हें न तो साम्राज्य की चिंता थी और न सम्राट की। वैसे भी सम्राट तो स्वयं अपने शरीर का भी स्वामी नहीं रहा था। अव्यवस्था और अराजकता तेजी से बढ रही थी। ऐसे समय में दिल्ली के साम्राज्य पर अधिकार के लिए अफगान जो इस बखेडे में शामिल होने वाले नए लोग थे और मराठा प्रतिस्पर्धा में भिडकर एक–दूसरे के गले काट रहे थे। प्रकारांतर में सम्पूर्ण हिन्दुस्तान को खतरे के कगार पर पहुँचा दिया था। जाट राज्य के लिए तो यह खतरा सन्निकट था। वह खतरनाक क्षेत्र के सबसे पास था और अत्यधिक सम्पन्न होने की दुर्भाग्यपूर्ण ख्याति उसे प्राप्त थी।[39] दोनों प्रतिस्पर्धी जाट राजा की तरफदारी की कीमत को अच्छी तरह से जानते थे। लेकिन बिडंवना यह थी कि पहले की भाँति दोनों ही उसकी सम्पत्ति हड़पना चाहते थे। इसके अलावा आगरा सूबे पर उसके कब्जे से मराठा नाराज थे,[40] जबकि अब्दाली समर्थक देशी लोग उसकी प्रजा का समूल नाश चाहते थे। इसके साथ तत्कालीन और बाद के सम्राटों ने भी उसके प्रति अपने क्रोध को छिपाकर नहीं रखा था। उसका कट्टर शत्रु नजीब अब दिल्ली सरकार का वास्तविक स्वामी बन गया था। अपनी तरफ से रुहेला सरदार अपने संसाधनों और ताकत से उससे निपटने लायक शक्तिशाली नहीं था। पर उसे ताकतवर दुर्रानी का अटूट समर्थन प्राप्त था, तैयार जाट को कुचलने में उसकी हाल की असफलता के कारण उत्पन्न उसके कोप को सहज ही समझा जा सकता है। इस तरह स्पष्ट है कि अफगान–मराठों के युगल खतरे का जितना सामना उसे करना था, उतना किसी अन्य प्रमुख राजा, यहाँ तक कि शुजा को भी, नही करना था। कम से कम और किसी को इतनी समूची शक्ति से किए गए हमलों का सामना नहीं करना था। तथापि, उस समय जैसी स्थितियाँ थी, उसमें सूरजमल को किसी बाहरी सहायता की बहुत कम संभावना थी– यह ऐसी स्थिति थी, जिसके लिए आंशिक रुप से उसकी अपनी उदासीन नीतियाँ और साथ ही उसके विस्तारवादी इरादे भी जिम्मेदार थे, जिसने उत्तर में राजपूत और समीपस्थ दोआब में बंगशों, मराठों और रुहेलों की महत्वाकांक्षाओं को काट दिया था।

तथापि इन पेचीदी परिस्थितियों में सूरजमल के सर्वोत्तम गुण उभरकर सामने आए। उससे निपटने के लिए उसने 'अद्भुत क्षमता' और धैर्य और कूटनीतिक चतुराई का परिचय दिया। स्थिति की आवश्यकताओं के संदर्भ में उसने अपनी नीतियों का पुनर्व्यवस्थित किया और अफगान–मराठा खींच–तान के बीच वह अपनी चालों में सावधानी और संयमित राजनीतिक उत्साह बरतने की नीति की ओर मुडा। पंरतु उसने इन अवसरों को यों ही नही जाने दिया। जैसाकि हम देखेगें परिणाम पहले से अधिक संतोषजनक और प्रसन्नदायक मिला। अंत में इस बखेडे में जहाँ प्रत्येक भारतीय राजा न्यूनाधिक मात्रा में वर्बाद हो गया, वही सूरजमल संम्पूर्ण हिन्दुस्तान में सर्वाधिक शक्तिशाली ताकत के रुप में विकसित हुआ।[41]

सितम्बर 1757 ई में इमाद और मराठों ने बादशाह की सह पर जाटों के सहयोग से अपने साझा शत्रु नजीब को दिल्ली से खदेड दिया,[42] किंतु इमाद की चिंता निर्विवाद सत्ता के लिए थी और वह अपने विरोधियों को गिन–गिन कर बाहर कर रहा था। उस समय का प्रत्यक्ष उत्तराधिकारी मिर्जा अब्दुल्ला अपनी जागीरों को फिर से प्राप्त करने मे लगा था। इमाद ने उसको गिरफ्तार करने की योजना बनाई और मई, 1758 ई मे उस पर आक्रमण कर दिया किंतु मिर्जा अब्दुल्ला भाग गया। और अपनी जागीर में जा पहुँचा।[43] जहाँ सूरजमल ने उस शहजादे का स्वागत किया। शहजादे को सहयोग देने से इमाद भी दबाब में आ गया और उसे लगा कि सूरजमल से मित्रता कर ली जाए। अतः इमाद ने सूरजमल को मनाना शुरु किया, जो कभी उसका धुर विरोधी था। अतः वजीर (इमाद) ने पुराने मध्यस्थ नागरमल को बुलवाया और उससे कहा कि सूरजमल को मनाए कि मिर्जा अब्दुल्ला (अलीगौहर) का साथ न दे।

शहंशाह आलमगीर द्वितीय से औपचारिक अनुमति लेकर बजीर ने अपना राजदूत अपने पुराने शत्रु (सूरजमल) के पास आवश्यक भेंट देकर भेजा। अंततः दोनों ने अपने पुराने मतभेदों का निपटारा कर लिया।

हालांकि इमाद ने मराठों का साथ नही छोडा था, फिर भी वह जाट शक्ति पर कितना निर्भर था। तथापि, दत्ताजी शिंदे के आक्रामक तेवरों ने उसे जाट राजा के और अधिक निकट कर दिया। जनवरी 1760 ई यह स्थिति अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई। जब मराठा गठबंधन से मोह भंग होने के बाद इमाद अब्दाली के भय से सुरक्षा हेतु जाट राजा के पास पहुँचा। जैसाकि बैंदेल ने लिखा है, इमाद अब उसी सूरजमल के किलों के सामने गिडगिडा रहा था, जिन्हें नष्ट करने के लिए 'कुछ ही समय पूर्व उसने समूचे हिन्दुस्तान को हथियार बंद किया था।'

सूरजमल ने उसकी प्रतिष्ठा के अनुरुप उसका आदर किया। सूरजमल ने अपनी उदार प्रवृत्ति के कारण बजीर को संरक्षण प्रदान किया, जिससे उसकी छवि और उज्जवल हुई।[44] किंतु सूरजमल के इस कार्य से उसके विरोधी एकजुट हो गए। इमाद और सूरजमल के इस गठबंधन से शाहआलम अपने राजनीतिक भविष्य के प्रति चिंतित हो उठा। इस मित्रता से शाहआलम को चिंतित होना स्वभाविक था, क्योंकि इमाद उसका प्रबल दुश्मन था और सूरजमल उसका सहयोग कर रहा था। शत्रु का मित्र भी शत्रु होता है अतः शाहआलम को संदेह था कि कहीं इमाद सूरजमल की सहायता से सिंहासन पर किसी और को न बैठा दे (स्पष्टतया उसने 30 नबम्वर,1759 को इमाद द्वारा शाहजहाँ द्वितीय को राजा के पद पर प्रतिष्ठापित किए जाने के बारे में नहीं सुना था) अतः उसने अहमदशाह अब्दाली से दिल्ली का ताज देने की प्रार्थना की।[45]

जनवरी, 1760 ई में अहमदशाह अब्दाली ने मराठों के विरुद्ध अभियान छेडा और दत्ताजी बरारी घाट में अब्दाली से लडता हुआ मारा गया।[46] इसके बाद अफगानों और हतोत्साहित मराठों के बीच वस्तुतः छिपने और पकडने का दौर शुरु हुआ जो अंततः सिकंदराबाद में होल्कर के लोगों की घोर पराजय के बाद समाप्त हुआ। जान बचाकर भागे हुए मराठों ने जाट राज्य में शरण ली। सूरजमल ने भी अपनी होल्कर से पुरानी शत्रुता को भुलाकर मित्रता का हाथ बढाया। मराठा सरदार

ने जाट राजा को खिलअत भेंट की जबकि सूरजमल ने भूतपूर्व शत्रु और उसके लोगों को पूर्ण सुरक्षा प्रदान की।[47]

उधर अहमदशाह अब्दाली ने अपना पूरा ध्यान सूरजमल की तरफ लगाया क्योंकि सूरजमल ने मराठों का साथ दिया। अब्दाली 14 जनवरी को खिजराबाद आ पहुँचा और उसने सूरजमल तथा अन्य हिन्दू तथा मुस्लिम सरदारों को नजराना अदा करने, उसके दरबार में हाजिर होने और मराठों के खिलाफ उसका साथ देने का आदेश देते हुए पत्र लिखे। परंतु जिन्हें यह पत्र लिखा गया था उनका न तो विश्वासघाती अब्दाली और न निर्दयी लुटेरे मराठों पर विश्वास था। किंतु सूरजमल ने उसकी आज्ञा की अवहेलना कर दी, जिससे अब्दाली आग–बबूला हो गया और सूरजमल को सबक सिखाने निकल पडा। अब्दाली 6 फरवरी को डीग जा पहुँचा और डीग के दुर्ग को घेर लिया और नजीब ने भी उसका साथ दिया। सूरजमल समझ गया कि अफगान गठबन्धन का मुकाबला कठिन है अतः उसने अब्दाली से समझौता वार्ताएँ शुरु कर दी।[48]

संभावित अफगान–मराठा संघर्ष की छाया जैसे–जैसे लंबी होने लगी, तत्कालीन राजनीतिक माहौल गहरी और पेचेदी कुटनीति से भर उठा। विरोधियों ने अपने–अपने सहयोगियों को पक्ष में करने के लिए साम–दाम, दण्ड–भेद नीतियों को अपनाया। उत्तरी हिन्दुस्तान की शक्तियों में जाटों का महत्वपूर्ण स्थान था। अफगान और मराठा दोनों ने गठबन्धन के लिए साथियों को ढूढने के प्रयास तेज कर दिए लेकिन सूरजमल पहले ही अफगान–मराठा प्रतिस्पर्धा में शामिल हो चुका था। सुक्करताल की घेरेबन्दी (नवम्बर, 1759) के समय से ही सूरजमल की सेना मराठों के साथ थी। इसके अलावा सूरजमल ने अनेक भागे हुए मराठा सैनिकों (सिकंदराबाद में अफगानों से युद्ध में भागे) को शरण दी। अतः सूरजमल के एक प्रतिपक्षी के खिलाफ दूसरे के प्रति झुकाव के बारे में कोई संदेह नही किया जा सकता था। यदि सूरजमल मराठों को समर्थन नहीं करता तो उसकी तटस्थता से दोनों ही पक्ष ललचाई दृष्टि से देखते रहते थे।[49] अब्दाली ने 1757 ई. में भारी निरंकुशता दिखाते हुए उस पर आक्रमण किया था अतः सूरजमल के साथ अफगान गठबंधन के अवसर बहुत कम थे।[50]

फिर भी अब्दाली ने अपने राजदूत को आदेश दिया कि सूरजमल को समझौते के लिए तैयार करे अगर सूरजमल समझौता को तैयार नही होता तो अफगान–मराठा संघर्ष में तटस्थ रहे। किंतु अब्दाली अपनी इस योजना को क्रियान्वित करने में सफल न हो सका।[51]

यहाँ वर्तमान परिस्थिति में सूरजमल के मस्तिष्क की सूझ–बूझ को देखना महत्वपूर्ण होगा, क्योंकि उसे लुटेरे अफगानों और लालची मराठों, दोनों से भारी क्षति उठानी पडी। अब दोनों उसकी मित्रता या तटस्थता प्राप्त करना चाहते थे। सूरजमल आसानी से समझ गया कि मराठों का सौम्य व्यवहार उनकी अपनी जरुरतों का परिणाम था और एक बार काम समाप्त हो जाने पर, विजेता अपने पुराने ढर्रे पर लौटने पर जरा भी नहीं हिचकिचाएँगे। राजा केशवराव ने सही आकलन किया है कि सूरजमल और अन्य लोग एक ओर मराठों से भयभीत थे तो दूसरी ओर अहमदशाह से।[52]

अतः निश्चय ही दोनों के बीच चुनाव कठिन था। फिर भी इन परिस्थितियों में चुनाव तो करना ही था, एक बुराई को चुनना था, अतः सूरजमल ने बडी बुराई अब्दाली को त्याग छोटी बुराई

मराठों का दामन थाम लिया। हमें एक खरीते से यह पता चलता है कि सूरजमल इस शर्त पर मराठों की ओर से कही भी युद्ध करने के लिए 10,000 सैनिकों को तैनात करने पर तैयार हो गया कि मराठा उसके क्षेत्र में 'उपद्रव' नहीं करेगें तथा चौथ वसूली के सम्बन्ध में उसे तकाजों से तंग नही करेंगे। इन शर्तो को स्वीकार करने का मतलब था कि मराठों को अपनी पुश्तैनी आदत को त्यागना था। फिर भी, सूरजमल का समर्थन बनाए रखने के लिए मराठे इतने उत्सुक थे कि उन्होंने ये शर्ते मान ली। यहाँ यह बात स्पष्ट होती है कि जब भाऊ ने 8 जून, 1760 ई. को जाट–प्रदेश में प्रवेश किया तो उसने अपने सिपाहियों को कडे–से–कडे दंड से भयातुर करते हुए जाटों को सताने या उनके क्षेत्र में लूटपाट करने पर रोक लगा दी।[53]

मराठा सेनापति ने शुरु से ही मैत्रीबद्ध पक्षों को अपनी ओर करने का प्रयास शुरु कर दिया था। उसने अनेक हिन्दू–मुसलमान राजाओं से अब्दाली के विरुद्ध सहायता माँगी, परंतु इसमें उसे कोई सफलता नही मिली। भाऊ ने सूरजमल से पत्र लिखकर निवेदन किया कि वह अपनी सेनाओं के साथ शीघ्र ही उससे आकर मिले, लेकिन सूरजमल ने विश्वासघात का संदेह किया अतः जब तक होल्कर और शिंदे ने उसकी सुरक्षा के लिए स्वयं शपथपूर्वक और निष्ठापूर्वक आश्वासन नहीं दिए तब तक वह मराठा शिविर में जाने से हिकिचाता रहा। 30 जून, 1760 ई. होल्कर ने जाट और इमाद को भाऊ से मिलवाया। भाऊ ने स्वयं दो मील आगे बढकर अपने एकमात्र और महत्वपूर्ण साथी सूरजमल का सम्मानपूर्वक स्वागत किया। भाऊ ने जाट राजा से अपनी मित्रता के पवित्र प्रमाण के रुप में अपने हाथों में यमुना का पवित्र जल लेकर प्रतिज्ञा दोहराई। सूरजमल की मध्यस्थता से वजीर ने भाऊ के साथ एक बैठक करके विचार–विमर्श किया।[54] सूरजमल ने एक समझदारी से युक्त सलाह दी, होल्कर ने, जो एक सर्वाधिक अनुभवी सेनापति था, इस समझदारी से भरी सलाह का समर्थन किया। लेकिन युवा भाऊ ने उत्तर भारत और उसके लोगों से पूर्णतः अनभिज्ञ होने के बावजूद युद्ध की नई शैली, अर्थात पैदल सिपाहियों द्वारा जमकर शत्रु से लडने की नीति को पसंद किया। अतः इसने इस परामर्श की उपेक्षा कर दी। उसके व्यवहार से सूरजमल और होल्कर दोनों खिन्न हो गए। यद्यपि युद्ध की योजना पर मतभेदों के कारण खुली दरार तो नहीं पडी लेकिन सूरजमल और भाऊ के बीच सबंधों मे वह गरमाहट नहीं रही और मराठा पक्ष के प्रति सूरजमल ने अपने मन में जो थोडा–बहुत उत्साह विकसित किया था, वह बिल्कुल शुरु में ही प्रभावित हो गया।[55] तथापि, दोनों के बीच एकता का प्रदर्शन यथावत् बना रहा। अब भाऊ ने राजधानी पर कब्जे का निश्चय किया और 16 जुलाई को वह मथुरा पहुँचा। उसने दिल्ली को जीतने और उसका निपटारा करने में जाट राजा से सहायता माँगी। मथुरा से उसने सूरजमल और वजीर के मार्गदर्शन में होल्कर और शिंदे के अधीन एक ताकतवर फौज दिल्ली रवाना की और 22 जुलाई, 1760 ई. को राजधानी पर कब्जा कर लिया इस प्रकार दिल्ली वजीर के हाथों में चली गई। इसके बाद किले की घेराबंदी की गई। अफगान वजीर के एक रिश्तेदार याकूब अली खाँ ने उसका बचाव किया, परंतु वह पर्याप्त नहीं था। सुरक्षित बाहर निकल जाने का वचन पाकर उसने किला खाली कर दिया और 1 अगस्त, 1760 ई. को उसे सौंप दिया। हतोत्साहित सेनापति याकूब अली खाँ ने शान्ति–समझौता करने का निश्चय किया और वजीर तथा सूरजमल से प्रतिज्ञा करके बाहर

निकला। किले के भीतर सूरजमल का कब्जा हो गया। भाऊ के दिमाग में बहुत दूर की कल्पनाएँ थी। उसने जाट बंदोबस्त को निरस्त करके वहाँ अपने आदमी तैनात कर दिए।

वजीर ने, जिसका सूरजमल ने समर्थन किया, मराठा सेनापति के सामने यह अभिवेदन किया कि चूँकि वह स्वयं किले की रक्षा करने में समर्थ है, अतः भाऊ अपने सैनिक वहाँ से हटा ले। परंतु भाऊ राजधानी पर अपने निजी नियंत्रण के लिए उत्सुक था, अतः उसने यह सुझाव अस्वीकार कर दिया।[57] शुजा को अपने पक्ष में करने के लिए भाऊ ने, जो उसके संपर्क में था, उसे वजारत देने का वचन दिया। दूसरी तरफ उसने वजीर पद पर उस समय आसीन व्यक्ति इमाद, को भी दिल्ली में पुनः स्थापित करने का आश्वासन दिया, नही ंतो वजीर मराठों के साथ नहीं मिलता और दिल्ली तक मराठों के साथ कूच नहीं करता। तथापि, भाऊ ने शुजा को दिए गए अपने गुप्त वचन अपने साथियों से छिपाये रखे।[58] यह तो केवल 1 जुलाई, 1760 ई. को ही सूरजमल और इमाद को वास्तविकता का भान हुआ। उस दिन शुजा ने जो यमुना पार अपना शिविर डाले पडा था, देवीदास के माध्यम से भाऊ को एक पत्र लिखा। इसमें मराठा प्रस्तावों का उल्लेख करते हुए यह कहा कि यदि अन्य बातों के अलावा उसे (शुजा को) वजीर मान जाता है तो मराठे दक्षिण लौटने पर राजी हो जाते है। और वह अब्दाली को वापस लौटाने के लिए समझाएगा।

किंतु यह राजगुप्त न रह सका। सत्ता के भूखे इमाद और उसके संरक्षक को इस संभावित 'पदच्युति' से नाराज कर दिया और वे दोनों उसी दिन तुगलकावाद स्थित अपने शिविर में लौट गए। 2 या 3 अगस्त को सूरजमल ने भी मराठों को छोड दिया[59] और वह सीधे बल्लभगढ़ के लिए प्रस्थान कर गया।

सूरजमल की भाऊ के शिविर से वापसी की वजह कुछ अध्येयताओं ने सूरजमल के प्रति भाऊ का उद्धत व्यवहार बताया है। जबकि कुछ मराठा इतिहासकार सूरजमल के स्वार्थीपन को जिम्मेदार मानते है। कारण जो भी रहें हों, किंतु जब भाऊ को सूरजमल के चले जाने का पता चला तो वह क्रोध से आग बबूला हो गया, और उसने कसम खाई कि एक बार वह इस अफगान संकट से मुक्त हो जाए तो हिन्दुस्तान से जाटों का नामोनिशान मिटा देगा। लेकिन ऐसा नही होना था। शांति–वार्ताओं की निरर्थकता शीघ्र ही सामने आ गई और मराठों को युद्ध बिल्कुल निश्चित दिखाई देने लगा। ऐसी स्थिति में भाऊ ने निर्णय लिया कि सूरजमल से समझौता किया जाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भाऊ ने सूरजमल के पास सितम्बर 1760 ईं में अपने सचिव चिट निस, शिंदे के सचिव रामाजी अनंत और होल्कर के सचिव गंगोबा तात्या को भेजा[60] तथा अपनी मंशा बताई कि सूरजमल हमारा पुनः साथ दे, और यदि जाट हमारा साथ न दे तो कम से कम अब्दाली से न मिले तथा मराठों की रसद–पूर्ति के मार्ग में रुकावट न डाले। किंतु भाऊ के राज खुलकर सामने आ चुके थे इसलिए वह क्षमायाचक–सा प्रतीत हुआ और सूरजमल को एक हाथी और खिलअत भेजकर अपनी अंकिचन स्थिति दर्शाई।

कहावत है कि दूध का जला छाछ फूँककर पीता है। किंतु भाऊ के व्यवहार ने, जिसमें पश्चाताप की भावना थी, सूरजमल के क्रोध और क्षोभ को शांत किया मालूम होता है। लेकिन

सूरजमल भाऊ के साथ पुनः मिलने को तैयार नही हुआ। इस तथ्य का कोई प्रमाण नही है जो यह सिद्ध कर दे कि सूरजमल और भाऊ के नीति–विषयक मतभेद दूर हो गए थे।

किंतु यह प्रतीत होता है कि मराठा प्रतिनिधियों ने उसके अनुग्रह की याचना की, जिसके लिए वह सम्मानजनक ढंग से तैयार हो गया। यह महत्वपूर्ण है कि 18 सितम्बर, 1760 ई. को हम भाऊ को शत्रु की रसद छीनने की कोशिश में जाट सेना की सहायता का गोविंद बल्लाल विश्वास दिलाते हैं। दूसरी तरफ सूरजमल ने मराठा रसद पूर्ति को आगरा–मथुरा मार्ग पर बिना रुकावट के जाने दिया। यह भाऊ के शिविर से अक्टूबर में लिखे एक खरीते से स्ष्ट होता है। इस खरीते के प्राप्तकर्त्ता को विश्वास दिलाया गया था कि 'जाट हमारा' है।[61] इसके बाद 4 नबम्वर को भाऊ ने स्वयं इस बात पर जोर दिया कि सूरजमल मित्र है और वह किसी भी स्थिति में रसद–पूर्ति नही रोकेगा।[62]

स्पष्ट है कि जाट–मराठा दरार का अब्दाली ने अवश्य ही आनन्द लिया होगा, किंतु अब मराठों की सूरजमल से नई पेशकश से वह चिंतित हो उठा। इसके पूर्व उसने बल्लभगढ़ में जाट राजा को शुजा की मार्फत एक पत्र और खिलअत भेजी थी। सितम्बर, 1760 ई. के अंतिम सप्ताह में उसने शुजा के द्वारा फिर से समझौता–वार्ताएँ शुरु कीं।

अब्दाली अपने आपको इस बात का भरोसा दिलाना चाहता था कि सूरजमल मराठों से पुनः न मिले। अब्दाली ने उसे फिर से खिलअत भेजी दोनों तरफ से शपथ हुई। कूटनीतिक चतुराई दर्शाते हुए सूरजमल ने आश्वासन दिया कि वह मराठों से नही मिलेगा। हालांकि उसने पहले ही स्वयं ऐसा निर्णय कर लिया था, उसकी सहानुभूति अपने देशवासियों के साथ थी। किंतु निश्चित नही कि सूरजमल ने मराठों का साथ दिया या नहीं।[63] शोरम के चौधरी शिवपाल जाट के नेतृत्व में सर्वखाप पंचायत की सहायक सेना ने इस्सापुर के पास यमुना पार की और कुंजपुरा पहुँचकर भाऊ की सहायता की। भाऊ ने इस सहायता के लिए कृतज्ञता व्यक्त की जबकि चौधरी ने यमुना का पवित्र जल हाथ में लेकर उसके साथ रहने की शपथ ली। एक अनुश्रुति है कि दोआब के जाटों ने रात के अंधकार में अब्दाली के गस्ती दस्तों से बचते हुए मराठा़ सेना को रसद–सामग्री पहुँचाई। यमुना के दोनों ओर के जाट आज भी पानीपत के दिनों में अपने पूर्वजों द्वारा मराठों की सहायता करने पर गर्व अनुभव करते हैं।[64]

जैसा कि ज्ञात है कि पानीपत की तीसरी लडाई 14 जनवरी, 1761 ई. को हुई, जिसमें मराठे पूरी तरह खदेड दिए गए थे। शत्रु के संहार से बचने के लिए कोई 50,000 से 1,00,000 बचे लोग सुरक्षा के लिए जाट राज्य की ओर भागे। भूख–प्यास, निरंतर भाग–दौड और आतंक से त्रस्त अभागे भगोडे, जब तक जाट राज्य में नहीं पहुँचे, तब एक स्थानीय जनता द्वारा भी सताए जा रहे। वहाँ पहुँचकर उन्हें सबसे उदार और आतिथ्यपूर्ण व्यवहार प्राप्त हुआ। मराठों की गलतियों को भुलाकर महान जाट शासक ने उन्हें प्रत्येक आराम पहुँचाया। उसने उनके लिए भोजन, कपडे,कंबल,निवास का प्रबंध किया और चिकित्सा सुविधाएँ प्रदान कराईं। रानी किशोरी भी अपने पति के साथ शामिल हुई और ब्राह्मणों तथा महिलाओं के प्रति वह विशेष उदार थी। एक सप्ताह तक भगोडों को भरतपुर में निःशुल्क भोजन कराया गया, इसके बाद उन्हें ग्वालियर तक सुरक्षित

पहुँचाया गया। प्रत्येक सामान्य आदमी को कम से कम एक सेर आटा और एक रुपया दिया गया। इस तरह जाट राजा ने इस मानवीय सेवा के कार्य में कुल मिलाकर 10 लाख रुपये खर्च किए। भगोडों में भाऊ की पत्नी पार्वती बाई और घायल शमशेर बहादुर भी था।

जब वह डीग पहुँची तो उस भग्नहृदय महिला को जाट राजा ने सांत्वना बँधाई और दक्षिण में उसके सुरक्षित लौटने की व्यवस्था कर दी। परंतु सर्वोत्तम चिकित्सा सुविधा के बावजूद वह पेशवा के सौतेले भाई शमशेर बहादुर का जीवन नही बचा सका। महान जाट ने उसकी कब्र पर एक मस्जिद और एक घर बनवाया।[65] जानकोजी शिंदे जैसे लापता लोगों की खोज में भी उसने मराठों की मदद की। उसके उदार व्यवहार पर सभी ने उसकी भूरि–भूरि प्रशंसा की। मराठे आज तक उस अवसर पर अपने पूर्वेजों के प्रति दर्शाई जाट उदारता के प्रति गहनतम कृतज्ञता का अनुभव करते है। एक प्रत्यक्षदर्शी (वैंदेल) टिप्पणी करता है कि यदि सूरजमल चाहता तो पानीपत की दुःखद कहानी कहने के लिए एक भी मराठा जीवित दक्षिण नही पहुँचता। उसकी महानता में यह तथ्य भी वृद्धि करता है कि उसने यह पूरी तरह से जानते हुए भी कि ऐसा कर वह पानीपत के विजेताओं को उत्तेजित होने का एक और कारण दे रहा है, उसने पराजितों की सहायता की।[66]

अपनी प्रचंड विजय के बाद अब्दाली ने दिल्ली पर कब्जा कर लिया। दीवान–ए–खास में उसने अपना दरबार लगाया उसने सूाजमल से समझौता–वार्ताएँ शुरु की। सूरजमल की ओर से शाही दीवान राजा नागरमल, राजा दिलेर सिंह, बजीर का पेशकार और मजलिस राय दिल्ली आए। इस बीच वेतन–वंचित अपने सैनिकों की माँग के कारण अब्दाली ने नजीब से कहा कि वह मराठा–खतरे से उसे बाहर निकालने की कीमत अदा करे। तथापि कुटिल रुहेला ने अपनी बजाय सूरजमल द्वारा अदायगी करने की कोशिश में राजा दूतों को 21 फरवरी 1761 की शाम को अब्दाली के सामने पेश किया।

उसने सूरजमल को दुर्रानी के क्षमादान के बदले में पेशकश अदा करने की बात चलाई, लेकिन जीनतमहल जो अपने पति के हत्यारे (इमाद) के संरक्षक से घृणा करती थी, ने उनका विरोध किया। बदले में उसने एकदम फौजी कार्यवाही करने पर जोंर दिया। उसका तर्क था कि जाट राजा को जब तक ताकत द्वारा नेस्तनाबूद नही किया जाएगा, वह कुछ भी नही देगा।[67] 'राज्य और इस्लाम' के नाम पर नजीब ने भी जोर दिया कि अफगान आगरा और उसके आगे तक कूच करें, ताकि शेष बचे मराठों और जाटों तथा अन्य लोगों, जिन्होनें आस पास कब्जा जमा रखा है, से भी निपटा जा सके और नजराना वसूल किया जा सके।[68] स्पष्टतः वह एक पत्थर से दो शिकार करना चाहता था।

अहमदशाह अब्दाली की मांग को पूरा करने के लिए रास्ता निकाला जा सके और साथ ही शत्रु जाट राजा भी कुचल दिया जाए। यहां पर उल्लेखनीय है कि उल्लसित रुहेला ने सूरजमल को अपनी पानीपत–विजय का समाचार कुछ इस ढंग से सुनाया कि उसमें जाट सरदार के प्रति दुर्भावना की गंध आती थीं।[69] जहां तक सूरजमल का सवाल है, वह इस बारे में किसी भ्रम में नही था। उसे आशंका थी कि उसका विजेता शत्रु संभवतः उस पर भी आक्रमण कर सकता है।[70]

तब एक योजना बनाई गई। 7 मार्च 1761 ई को शाहवली खां ने जीनत महल शाहजादा जवान बख्त और मिर्जा बगर के साथ राजा पर दबाव डालने के लिए आगरा की तरफ प्रस्थान किया। परंतु दुर्रानी की फौजों ने मथुरा की ओर बढ़ने से इनकार कर दिया। भारत में लम्बे प्रवास के बाद फौजियों को अपने घर की याद सताने लगी थी। इससे भी ज्यादा, सन्निकट गर्मी में ये दुर्दमनीय जाटों का सामना करने से कतरा रहे थे, जो अपने किलों से उनका गोलियों और तोप के गोलों से स्वागत करने के लिए कृतसंकल्प थे। अपने सैनिकों के विद्रोही तेवर ने अब्दाली को उन्हें तत्काल वापस बुलाने के लिए विवश कर दिया और 20 मार्च, 1761 ई. को वह अपने घर रवाना हो गया, और अपने इस तीसरे और अन्तिम अवसर पर भी, उसे सूरजमल से शायद कुछ नही मिला। इस तरह सम्पूर्ण विनाश के मध्य सूरजमल दृढतापूर्वक खडा रहा। एक प्रत्यक्षदर्शी सही लिखता है कि तत्कालीन भारत में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं था जो उन्हीं परिस्थितियों में ऐसी उपलब्धि पाने में सफल होता।[71]

हिन्दुस्तान से लौटते समय अहमदशाह अब्दाली ने शाहआलम को शहंशाह नजीब को मीर बख्शी और इमाद को बजीर बनाया। इस तरह उसने शुजा को निराश किया जिसको इसी प्रकार का वचन देकर उसने उसे अपनी ओर मिलाया था। अब्दाली ने याकूब अली खाँ को इमाद के लिए जाट राज्य में खिलअत और वजारत का कलमदान पहुँचाने का निर्देश दिया।[72] किंतु शाहआलम और जीनत महल दिल्ली में अपने कट्टर शत्रु को पुनः स्थापित देखना सहन नहीं कर सकते थे। ये नजीब भी इमाद की पुनर्नियुक्ति का विरोधी था। उसने अपने संरक्षक अब्दाली की इच्छा का कि वह उसके साथ मित्रतापूर्वक रहे, अनादर करते हुए इमाद को अलग रखने की कोशिश की। उसने यह कहते हुए शाही परिवार की आशंकाओं की दुहाई दी कि दिल्ली में प्रभुता प्राप्त करने के पश्चात इमाद किसी और शहंशाह को तख्त पर बैठा देगा। अंततः नजीब ने आने वाले उत्तराधिकारी से सनद प्राप्त कर ली कि वह आकर राजधानी का कारोबार सँभाले और 7 अप्रैल, 1761 ई. को उसने दिल्ली में प्रवेश किया और मीर बख्शी, फौजदार और प्रतिशासक (रीजेंट) की पोशाक पहनी। उसने दुर्ग की किलेदारी सहित अन्य महत्वपूर्ण पदों पर अपने ही लोगों को नियुक्त किया। इस तरह अब्दाली की वापसी को अभी एक पखवाडा भी नहीं हुआ था कि जोड–तोड के द्वारा वह दिल्ली का तानाशाह बन बैठा।

पानीपत का युद्ध यद्यपि एक महत्वपूर्ण घटना थी किंतु वास्तव में इसमें जो दाँव लगे हुए थे, उनको देखते हुए यह बेकार सिद्ध हुआ। यह कोई उल्लेखनीय फैसला नहीं कर पाया। मराठा–शक्ति को अवश्य ही बहुत तेज धक्का लगा था, किंतु उनकी क्षति न तो स्थायी थी और न अपूरणीय। इसी तरह अफगान शहंशाह भी विजेता होने के बावजूद कोई स्थायी आर्थिक लाभ नहीं प्राप्त कर सका। यही नही, शीघ्र ही उसने पंजाब में दुर्दम्य सिक्खों के आगे बढते–बढाव को रोकने में निरंतर बढती कठिनाईयों को भी अनुभव किया। दूसरी ओर, उसके भारतीय सहयोगियों को अब मराठों के स्थान पर शक्तिशाली जाटों का सामना करना था। जहाँ तक मुगल सल्तनत का प्रश्न था पानीपत का युद्ध उसके भयावह रोगों के लिए कोई रामबाण औषधि भी सिद्ध नही हुआ था। इसके विपरीत अफगान–मराठा प्रतिस्पर्द्धा से तो पूरा ''मुगल राजतंत्र'' ही दाँव पर लगकर उलट

गया था।[73] शाकिर ने अफसोस करते हुए कहा कि ''सल्तनत चारो ओर से शत्रुओ से घिर गई है।''[74] जो कुछ छीना–झपटी करते हुए निजी प्रभुता की आकांक्षा कर रहे थे। शाही राजधानी बिना शहंशाह और वजीर के थी, जो परस्पर तलवारें भाँज रहे थे। मीर बख्शी, जिसने सारे अधिकार हथिया लिए थे, काफी शक्तिशाली था, परंतु वह अपने घोषित ताजदार को सिंहासन पर बैठाने के लिए कोई बलिदान करने या खतरा उठाने के लिए तैयार नहीं था। बिडंम्बना तो यह थी कि स्वयं मुगल शहंशाह भयभीत था कि कहीं वह मीर बख्शी के हाथों में पडने के लिए असहाय न कर दिया जाए,[75] जो शाही मुगलों के परम्परागत शत्रु विजयोन्मत्त अफगानों का नेतृत्व कर रहा था। इसके साथ ही रुहेला तानाशाह ने अपनी ताकत को बढाने, अपना एक स्वतंत्र विशाल राज्य बनाने तथा अपने

रिश्तेदारों और पिटठुओं को संगठित करने, उनको ऊँचे ओहदों पर बैठाने के लिए सरकार में अपनी सर्वश्रेष्ठ स्थिति का दुरुपयोग किया।[76] जब इस नीति को एक–दूसरे क्षेत्र में इसी तरह के प्रयत्नों का सामना करना पडा तो एक भयानक संघर्ष अनिवार्य था पानीपत का उत्तरार्द्ध–काल जाट–शक्ति का स्वर्णिम काल था।[77] अपनी बुद्धिमता, शानदार राजनीतिक गांभीर्य और अतुलनीय कूटनीतिक संसाधन क्षमता से सूरजमल ने उन तूफानी दिनों में अपना रास्ता यह सुनिश्चित करने के लिए बनाया था कि चारों ओर व्याप्त ह्रास के बीच भी उसकी समृद्धि में निरंतर वृद्धि और उसकी सत्ता में अबाध बढोतरी होती रहे।[78] इस समय तक वह समूचे भारतीय उपमहाद्वीप में सबसे शक्तिशाली और समृद्ध शासक बन गया था।[79] नजीब और उसके बीच दुश्मनी तो पहले ही से थी जो परिवर्तित होती परिस्थितियों में अब सामने आ गई। आगे आने वाले वर्षों मे इनकी प्रतिद्वंद्विता दिल्ली के इतिहास का एक मुख्य विषय बन गई।

अप्रैल से जून, 1761 ई. के मध्य में मथुरा–वार्ताएँ हुई। मथुरा–वार्ताओं का मुख्य उद्देश्य यह था कि अहमदशाह अब्दाली चाहता था कि मेरे द्वारा मनोनीत व्यक्ति दिल्ली की सरकार चलाएँ, इसलिए उसने शहंशाह के रुप में शाहआलम को स्वीकार किया और इमाद को सल्तनत का वजीर तथा नजीब को मीरबख्शी तैनात किया। किंतु जब इमाद को वजारत की खिलअत अभी मिलनी ही थी कि नजीब ने मनोनीत वजीर और शाहआलम के बीच मौजूद झगडे को हवा देकर संम्पूर्ण अधिकार हथियाने को चाल चल दी, और इस तरह इमाद से आगे निकल गया था। सूरजमल और उसके आश्रित के खिलाफ फैसला तब विश्वास योग्य प्रतीत होता है जब नजीब द्वारा दिल्ली में वजीर के रुप में इमाद को उसका हक देने के बावजूद वे अपनी दुश्मनी और विरोध बरकरार रखते। परंतु ऐसे कोई प्रमाण नहीं मिलते कि जिनसे यह सिद्ध किया जा सके कि उसने वजीर के साथ कभी अनुकूल बनने या उसके साथ मैत्रीपूर्ण ढंग से रहने की इच्छा व्यक्त की हो। यदि ऐसा न होता तो अपना पद हासिल करने के लिए इमाद और लोगों से सहायता नही माँगता। उस पर और उसके संरक्षक पर यह आरोप लगाया है कि वे नजीब को खत्म करना चाहते थे और दिल्ली में सारी सत्ता हथियाना चाहते थे, परंतु नजीब ने तो दिल्ली में एक बार सारी सत्ता हथिया लेने के बाद इमाद को प्रायः निष्कासित ही कर दिया था। नजीब की इसी भारी पकड ने और उसके साथ इमाद के प्रति उसकी सतत शत्रुता ने कुछ समकालीन लोगों को इमाद की वजारत की प्रभावशीलता ही नहीं, बल्कि स्वयं वजारत मिलने के प्रति शंकालू बना दिया था।[80] इमाद के लिए तो वस्तुतः दरवाजे बंद ही हो गए थे। इन परिस्थितियों में तो केवल हथियार ही इमाद को उसका

कानूनी हक दिला सकते थे। तथापि, इमाद भले ही निराश हुआ हो, लेकिन यदि सूरजमल तथा अन्य लोगों ने संघर्ष की नौबत को टाला तो इसके लिए निश्चय ही उसकी निंदा नही की जा सकती। इसके अलावा, यह कहना भी एकपक्षीय होगा कि सूरजमल ने नजीब के प्रति दुराग्रही तथा अनम्य रुख अपना रखा था। हमारे पास समकालीन प्रमाण है कि सूरजमल के प्रति अपनी दुर्भावना को नजीब दिन–रात पोषित करता रहता था और उसे उखाड फेंकने की योजनाओं पर सदा विचार मग्न रहता था, जबकि ऊपर से यही दिखता था कि वह सूरजमल से समझौता करने का इच्छुक है। इसके अलावा यह भी नहीं भूलना चाहिए कि केवल सूरजमल ही रुहेला सरदार का विरोधी नहीं था।

मराठे, हफीज रहमत तथा अन्य लोग भी उसके विरुद्ध थे और वे सभी इमाद की वजारत के समर्थक थे। यदि हम व्यक्तिगत जिम्मेदारी निर्धारित करें तो साम्राज्य में पारस्परिक सहमति वाले नियमित प्रशासन की स्थापना के प्रयत्नों में पलीता लगाने की जिम्मेदारी औरों की अपेक्षा नजीब पर ज्यदा है। सरकार पर अपने निर्बाध नियंत्रण के द्वारा रुहेला तानाशाह ने मथुरा की वर्ताओं की नियति की पहले ही पेशबंदी कर दी थी। यहाँ तक सूरजमल का प्रश्न है, निश्चय ही बजीर के माध्यम से सल्तनत पर आधिपत्य जमाने की उसकी महत्वाकांक्षा थी, और नजीब की तानाशाही के सामने समर्पण नही करना चाहता था। मथुरा–वार्ताओं की असफलता में छोटी शक्तियों का भी हाथ था। इस सारे मामले का सार यह है कि व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों और प्रतिस्पर्धी महत्वाकांक्षाओं ने सारी शक्तियों के सोच विचार को दूषित कर दिया था।[81] एक व्यापक दृष्टिकोण से प्रश्नों को देखने के लिए बहुत कम लोग क्षुद्र स्वार्थो से ऊपर उठ़ सकते हैं। अतः यदि सौजन्यता का दिखावा भी बनाए रखा जाए तो बड़ी और नाजुक समस्याएँ ऐसे वातावरण में हल नही की जा सकती थीं। इमाद को पदासीन करने के प्रश्न पर सूरजमल ने लडाई नही थोपी, परंतु इस मामले में नजीब की नीतियों और व्यवहार ने उसे नाराज कर दिया और दोनों के बीच झगड़ा और बड़ा दिया।[82] दूसरी ओर सूरजमल द्वारा इमाद के दावों के समर्थन से अवध का नबाव नाराज हो गया, जो अब्दाली से धोखा खा जाने के बाबजूद हमेशा की तरह सल्तनत की वजारत की इच्छा करता रहा था। इसने सूरजमल और इमाद के विरुद्ध नजीब और शुजा को एक–दूसरे के निकट ला दिया। तथापि रुहेलों ने सूरजमल के साथ अपने सम्पर्क बनाए रखे।[83]

सरकार में नजीब की प्रभुता से सूरजमल इतना नाराज था कि मथुरा–सम्मेलन के बाद उसने (अगस्त,1761 ई की शुरुआत में ही) शुजा को वजारत और इमाद को मीरबख्शी पद दिलाने के बारे में सोचना शुरु कर दियां जाट राजा ने शाहआलम द्वितीय को स्पष्ट तौर पर इस आशय का एक सुझाव भी दिया। तथापि, शहंशाह ने इमाद से कोई भी सम्बन्ध रखने से इनकार कर दिया। इसके बजाय उसने उसके सम्पूर्ण विनाश की इच्छा जाहिर की और कहा जाता है कि अपने घातक शत्रु को लौटाने पर जोर भी दिया। किंतु सूरजमल इसके लिए तैयार नही हुआ। इस घटना ने निश्चय ही दोनों (शाहआलम और सूरजमल) के बीच समझौते की संभावना को नष्ट कर दिया होगा और कड़बाहट बढ़ा दी होगी।[84]

संदर्भ

1. तारीख–ए–अहमदशाही, 88a, 94a, ; सरदेशाई कृत मराठाज II, 390–391।
2. सरकार कृत फाल I, 531–532।
3. श्रीवास्तव कृत अवध, 247।
4. तारीख–ए–अहमदशाही, 87a-88ab, 102a-102b।
5. वही पृ. 131b, 103b।
6. वही 133a, 92a, 92b।
7. मेम्वोआर दे यात, 39।
8. सुजान, 214।
9. तवारीख–ए–हुनूद, 19b।
10. एस. पी. डी, XXVII, 83।
11. सुजान 214।
12. वही, 217 ff ; मेम्वोआर दे यात, 39।
13. डॉ गिरीशचंद्र द्विवेदी, जाट एवं मुगल साम्राज्य पृ. 184–185।
14. सुजान, 205।
15. तारीख–ए–अहमदशाही, पृ. 106a-106b।
16. मेम्वोआर दे यात, 40।
17. वही, 40।
18. तारीख–ए–अहमदशाही, 114a।
19. कानूनगो कृत जाट्स, 89–91।
20. मेम्वोआर दे यात, 41।
21. सियर III 336, कानूनगो कृत जाट्स, 92–93।
22. रजवाड़े I, 35।
23. तारीख–ए–अहमदशाही, 128a, 131b।
24. मेम्वोआर दे यात, 42, 43।
25. कानूनगो कृत जाट्स, 94–95।
26. तारीख–ए–अहमदशाही, 125 b से अंत तक ; एस. पी. डी. XXVII, 79।
27. एस. पी. डी. XXI, 100, 101।
28. वही XXI, 96।
29. डॉ गिरीशचंद्र द्विवेदी, जाट एवं मुगल साम्राज्य पृ. 207।
30. गुप्ता कृत पानीपत, पृ. 85।
31. सरदेसाई कृत मराठाज II 405।
32. तारीख–ए–आलमगीर सानी, 200।
33. फैंकलिन, शाह आलम, 6।
34. समीन,56, 58–59; तारीख–ए–आलमगीर सानी, 198।
35. तारीख–ए–आलमगीर सानी, 206; गुप्ता कृत पानीपत पृ. 89।
36. फ्रीडम मूवमेंट में निजामी, I 522।
37. एस. पी. डी. XXVII, 144।
38. डॉ गिरीशचंद्र द्विवेदी, जाट एवं मुगल साम्राज्य पृ. 226।
39. सरकार कृत फाल II, 441।
40. रघुनाथराव का पत्र, नवम्बर, 1757।
41. मेम्वोआर दे यात, 54, 49; सरकार कृत फाल II, 441–442।

42. सरकार कृत फाल II, 140 ff।
43. वही, II 161ff।
44. मेम्वोआर दे यात, 49–50, 63; राजवाडे I, 143।
45. मुरासलात–ए–अहमदशाह दुर्रानी,21; जी सिंह द्वारा उद्धृत दुर्रानी 232–233।
46. गुप्ता कृत पानीपत, 126 ff ।
47. एस. पी. डी. II, 121 ; गुप्ता कृत पानीपत, 132।
48. डॉ गिरीशचंद्र द्विवेदी, जाट एवं मुगल साम्राज्य पृ. 237–38।
49. गुप्ता कृत पानीपत, 137; कानूनगो कृत जाट्स, 138–139।
50. गुप्ता कृत पानीपत, 137।
51. एस. पी. डी. II, 127, 124।
52. वही, XXI, 187-188 ; राजवाडे, I,71।
53. वही, II, 126 ; राजवाडे, I, 199।
54. पुरंदरे I, 387 ; एस. पी. डी. II, 127।
55. कानूनगो कृत जाट्स, 125 ff।
56. राजवाडे I, 222-224।
57. मिरात, 907 ; पुरंदरे I, 389।
58. गुप्ता कृत पानीपत, पृ. 156।
59. एच.आर. गुप्ता, पानीपत पृ. 156 (2 अगस्त); जे. एन सरकार, फाल II,255 (3 अगस्त)।
60. मिरात, 908।
61. राजवाडे I, 259।
62. वही, 264।
63. वही, I, 259।
64. शेजबलकर, कृत पानीपत, पृ. 70।
65. डॉ गिरीशचंद्र द्विवेदी, जाट एवं मुगल साम्राज्य पृ. 264।
66. कानूनगो कृत जाट्स, 140।
67. डी. सी. शाहआलमनामा, 187 ; मेम्वोआर दे यात, 54।
68. मिरात, 919 ; एस. पी. डी. XXI, 202।
69. वही, 918।
70. मेम्वोआर दे यात, 54।
71. वही, 54।
72. नूर, 53b- एस. पी. डी. XXI, 202।
73. मेम्वोआर दे यात, 49।
74. शाकिर, 115।
75. सरकार कृत फाल II, 529–530।
76. वही, 385।
77. मेम्वोआर दे यात, 49, 63 और 67।
78. वही, 54।
79. सरकार कृत फाल II, 381, 383, 442।
80. राजवाडे I, 297।
81. जी. सिंह कृत दुर्रानी, 282।
82. राजवाडे I, 297 ; एस. पी. डी. XXIX, 10।
83. वही, I,295।
84. वही

सप्तम् अध्याय

प्रस्तुत शोध कार्य जाट एवं मुगल : ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध (18 वीं सदी) भरतपुर – धौलपुर के विशेष संदर्भ में किया गया है, जिसमें जाट एवं मुगल सम्बन्धों का विस्तृत रुप से अध्ययन किया गया है। भरतपुर–धौलपुर भौगोलिक एवं ऐतिहासिक परिचय के साथ–साथ भरतपुर–धौलपुर के आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का वर्तमान परिपेक्ष्य में अध्ययन किया गया है।

तत्कालीन समय में भारत की राजनैतिक दिशा व दशा का विस्तृत अध्ययन किया गया है। 1707 ई में मुगल सम्राट औरंगजेब की मृत्यु हो जाती है और केन्द्रीय सत्ता का पतन होना प्रारंभ हो जाता है। जिसके परिणामस्वरुप तत्कालीन क्षेत्रीय शक्तियाँ अपन–अपना सिर उठा लेती हैं और स्वतंत्र हो जाती है, या फिर नाम मात्र की केन्द्रीय सत्ता के अधीन रहती है। औंरंगजेब के बाद उत्तरवर्ती मुगल सम्राट नाम–मात्र के सम्राट थे जो देश की विभिन्न जातियों में एक राष्ट्र की भावना जगाने अथवा सामूहिकता की भावना उत्पन्न करने में पूर्णतया विफल रहे थे। विद्रोह के उदाहरण तो मुगल साम्राज्य के उत्कृष्टतम काल से ही विद्यमान थे परन्तु 18 वीं शताब्दी में तो उन्होनें एक भयानक रुप धारण कर लिया। दुर्बल मुगल राजकुमार जल्दी–जल्दी सिंहासन पर बैठे अथवा बिठाए गए और परिस्थिति बिगडती ही चली गई। सम्राट अपने शक्तिशाली षडयंत्रकारी तथा स्वार्थी अभिजात वर्ग के हाथों की कठपुतलियां बन गए थे। शक्ति के भूखे बंगाल, अवध तथा दक्कन के सूबेदार, लगभग स्वतंत्र बन चुके थे। स्वार्थ तथा राज्य प्रसार की होड़ में लगे वे मुगल सम्राटों की भी अनदेखी कर के सम्राट के शत्रुओं अथवा यूरोपीय कम्पनीयों से जोड–तोड में लगे रहते थे।

उत्तरी भारत में साम्राज्य के लिए तीन मुख्य दावेदारों, मुगलों, अफगानों तथा मराठों के बीच त्रिकोणीय संघर्ष हुआ। 1739 ई में हुए नादिरशाह के आक्रमण के उपरान्त मुगल साम्राज्य पूर्ण रुप से धराशायी तथा लहूलुहान पडा था और कोई भी शक्ति उसे समाप्त कर भारत की स्वामी बन सकती थी।

अहमदशाह अब्दाली के नेतृत्व में अफगानों ने तथा पेशवाओं के अधीन मराठों ने मुगलों की शक्ति को नीचा दिखाया और उनके साम्राज्य की सीमाएं घटा दी। फिर अब्दाली ने मराठों को पानीपत की तीसरी लडाई 1761 ई में परास्त कर दिया और ऐसा लगता था कि अब वह भारत में निष्कण्टक राज्य स्थापित करने में सफल हो जाएगा, परन्तु अफगानिस्तान की आन्तरिक परिस्थितियों के कारण उसे लौटना पडा। इस दुःखान्त नाटक में रुहेला सरदारों, अवध के नबाब तथा राजपूत राजाओं ने एक गौण भूमिका निभाई और परिस्थिति और भी सम्भ्रान्त हो गई। यद्यपि ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने 18 वीं शताब्दी में साम्राज्य के लिए कोई विशेष युद्ध नही लडा परन्तु देशी शक्तियों ने आपसी युद्धों के कारण एक दूसरे की शक्ति को हानि पहुँचाई जिस से कम्पनी की महत्वाकांक्षाओं को बल मिला।

मुगल साम्राज्य के शिथिल हो रहे राजनैतिक ढाँचे तथा इसके सैन्यबल के कम होने के कारण भारत में एक प्रकार से राजनैतिक शून्य की स्थिति उत्पन्न हो गई, जिससे महत्वाकांक्षी सूबेदार तथा प्रादेशिक सरदारों को अर्द्ध स्वतंत्र तथा स्वतंत्र राज्य बनाने की, तथा पश्चिमोत्तर सीमा पार के साहसी वीरों को भारत पार पुनः आक्रमण करने की प्रेरणा मिली। भारत के अपने आन्तरिक तथा बाहरी शत्रुओं के कारण स्थिति बहुत गम्भीर हो गई जिससे राजनैतिक अव्यवस्था बढ़ गई तथा मुगल साम्राज्य का पतन हो गया। भारत के विभिन्न भागों में पारम्परिक राज्यों के पुनः शक्तिशाली बनने के साथ दक्षिण और उत्तर में नये–नये राज्यों का उदय हुआ, उनमें एक ''जाट राज्य था''।

दिल्ली, मथुरा तथा आगरा के समीपवर्ती क्षेत्रों में कृषि कार्य में लगे जाट लोगों ने औरंगजेब की नीति के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। यद्यपि विद्रोह तो दब गया था परन्तु वहाँ अशान्ति ही बनी रही। चूड़ामन ने थीम के स्थान पर एक सुदृढ़ दुर्ग बना लिया था और मुगलों की शक्ति को चुनौती दी। 1721 ईं में आगरा के सूबेदार जयसिंह द्वितीय के अधीन मुगल सेना ने इसके विरुद्ध अभियान किया तथा दुर्ग जीत लिया। चूडामन ने आत्महत्या कर ली। उसके बाद चूडामन के भतीजे बदनसिंह ने जाटों का नेतृत्व संभाला। उसने अपनी सेना को शक्तिशाली बना लिया तथा डीग, कुम्हेर तथा वैर और भरतुपर में चार दुर्ग बना लिए।

नादिरशाह के आक्रमण के पश्चात हुई अव्यवस्था से लाभ उठाकर उसने आगरा तथा मथुरा पर अधिकार कर लिया तथा भरतपुर राज्य की नींव डाली। अहमदशाह अब्दाली ने इस परिस्थिति को स्वीकार कर लिया तथा बदन सिंह को राजा की उपाधि दे दी जिसमें 'महेन्द्र' शब्द भी जोड दिया गया।

1756 ई. सूरजमल इस जाट राज्य का उत्तराधिकारी बना। उसने इस जाट राज्य को अपनी ''चतुराई, सूक्ष्मवुद्धि तथा स्पष्ट दुष्टि दी। लोग उसको जाटों का अफलातून कहकर पुकारते थे। उसने जाट राज्य को ऊँचाईयों के शिखर पर पहुँचा दिया।

मुगल सम्राट मोहम्मदशाह ने तो जाटों के प्रति सामान्यतया सुलह–समझौते की नीति का अनुसरण किया, किन्तु उसके उत्तराधिकारी अहमदशाह ने सूरजमल और उसके अनुयायियों के साथ प्रारंभ में दण्डात्मक रुख अपनाया उसके बजीर और मीर बख्शी ने जाटों को युद्ध क्षेत्र में उतरने के लिए मजबूर कर दिया।

यह बजीर ही था जो जाटों से मुकाबला करने सबसे पहले आया था। बजीर सफदरजंग ने सूरजमल को संदेश भिजवाया कि उसने जो शाही क्षेत्र उससे हथिया रखा है, उसे वह लौटा दे, किन्तु सूरजमल ऐसा नही कर सकता था अतः युद्ध अनिवार्य था, किन्तु परिस्थितियों वश बजीर को राजधानी लौटना पडा और स्थिति सामान्य हो गई।

मीर बख्शी, सलावत खाँ जुल्फिकारजंग, जो नारनौल का फौजदार होने के साथ आगरा और अजमेर का सूबेदार भी था, ने सूरजमल से मूर्खतापूर्ण झगडा मोल ले लिया और अततः उसे सूरजमल के हाथों पराजय स्वीकार करनी पडी। इधर परिस्थितियां बदल रही थी और बजीर सफदरजंग सूरजमल की शक्ति से प्रभावित था और उससे मित्रता करने के लिए लालायित था

अततः दोनों के मध्य मित्रता हो गई और जिसके परिणामस्वरुप सूरजमल ने मुगल पक्ष की ओर से प्रथम अफगान अभियान और द्वितीय अफगान अभियान में हिस्सा लिया और मुगल मक्ष को मजबूत किया। सफदरजंग द्वारा जावेद की हत्या की गई उसमें भी सूरजमल ने सफदरजंग का सहयोग किया। राजधानी में गृहयुद्ध के समय में भी सूरजमल ने मुगलों आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप कर अपनी श्रेष्ठता को साबित किया।

राजधानी में शाही वजारत के प्रश्न पर भी सूरजमल ने अपने अनुभव और चतुराई से काम किया। जब मुगल सल्तनत को अब्दाली के आक्रमण का भय सता रहा था तो वजीर ने सूरजमल की सेवाओं के लिए पेशकस की किंतु चतुर सूरजमल ने समझदारी दिखाते हुए वजीर का साथ नहीं दिया।

मई 1757 ई. से मार्च, तक प्रत्यक्ष उत्तराधिकारी मिर्जा अब्दुल्ला जिसे अली गौहर और शाहआलम की उपाधि दी गई थी, वह रेवाडी और रोहतक में अपनी जागीरें फिर से प्राप्त करने के प्रत्यनों में उत्साहपूर्वक जुट गया था। वजीर ने उसे वापस बुलवाया और उसे गिरफ्तार करने के लिए अनेक षडयंत्र रचे और मई, 1758 ई. में उस पर आक्रमण कर दिया, लेकिन शाहआलम बच कर भाग गया और अपनी जागीर में पहुँच गया। राजा सूरजमल ने शाहआलम को उपयुक्त सम्मान दिया।

पानीपत का तृतीय युद्ध 1761 ई. जो कोई महत्वपूर्ण निर्णय नहीं कर सका। मराठा–शक्ति को इस युद्ध में जबरदस्त धक्का लगा था, किंतु उनकी क्षति न तो स्थायी थी और न अपूरणीय। इसी प्रकार अहमदशाह अब्दाली भी विजेता होने के बावजूद कोई स्थायी आर्थिक लाभ प्राप्त नहीं कर सका। जहाँ तक मुगल सल्तनत का प्रश्न था पानीपत का युद्ध उसके भयावह रोगों के लिए कोई रामबाण औषधि भी सिद्ध नहीं हुआ था। इसके विपरीत अफगान–मराठा प्रतिस्पर्धा से तो पूरा मुगल राजतंत्र ही दाँव पर लगकर उलट गया था। शाही राजधानी बिना शहंशाह और वजीर के थी, जो परस्पर तलवारें भाँज रहे थे। मीरबख्शी, जिसने सारे अधिकार हथिया लिए थे काफी शक्तिशाली था, परंतु वह अपने घोषित ताजदार को सिंहासन पर बैठाने के लिए कोई बलिदान या खतरा उठाने को तैयार नहीं था। बिडंवना तो यह थी कि स्वयं मुगल शहंशाह भयभीत था कि कहीं वह मीरबख्शी के हाथों में पडने के असहाय न कर दिया जाए। जो शाही मुगलों के परम्परागत शत्रु विजयोमन्नत अफगानों का नेतृत्व कर रहा था। इसके साथ ही रुहेला तानाशाह ने अपनी ताकत को बढाने के लिए अपना एक स्वतंत्र एक विशाल राज्य बनाने तथा अपने रिश्तेदारों और पिट्ठुओं को संगठित करने, उनको ऊँचे ओहदों पर बैठाने के लिए सरकार में अपनी सर्वश्रेष्ठ स्थिति का दुरुपयोग किया। जब इस नीति को एक–दूसरे क्षेत्र में इसी तरह के प्रयत्नों का सामना करना पडा तो एक भयानक संघर्ष अनिवार्य था। पानीपत का उत्तरार्द्ध–काल जाट शक्ति का स्वर्णिम काल था। 'अपनी अवर्णनीय बुद्धिमता' शानदार राजनीतिक गांभीर्य और अतुलनीय कूटनीतिक संसाधन क्षमता से सूरजमल ने उन तूफानी दिनों में अपना रास्ता यह सुनिश्चित करने के लिए बनाया था चारों ओर व्याप्त ह्रास के बीच भी उसकी समृद्धि में निरंतर वृद्धि और उसकी सत्ता में अबाध बढोतरी रहे। इस समय तक वह समूचे उपमहाद्वीप में सबसे शक्तिशाली और समृद्ध शासन बन

गया था। नजीव और उसके बीच दुश्मनी तो पहले से थी जो परिवर्तित होती परिस्थितियों में अब सामने आ गई। आने वाले वर्षों में इनकी प्रतिद्वंद्विता दिल्ली के इतिहास का एक केन्द्रीय विषय बन गई। उस प्रतिद्वंद्विता का परिणाम यह निकला कि 25 दिसम्बर, 1763 ई. को नजीबुद्दौला के सैनिकों ने धोखे से सूरजमल की हत्या कर दी।

इस प्रकार नियति ने अपेक्षाकृत कम उम्र लगभग 57 वर्ष में ही जाटों की नेत्र–ज्योति और उनका प्रकाशमान दीपक और प्लेटो महाराजा ब्रजेन्द्र बहादुर सुजानसिंह ठाकुर सूरजमल के नाम से लोकप्रिय, यशस्वी व्यक्तित्व तथा अब भी उत्कर्षोन्मुख जीवन का अचानक व्यच्छेदन कर दिया।

सूरजमल की मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र जवाहरसिंह भरतपुर की गद्दी पर बैठते ही उसने नजीबुद्दौला से अपने पिता की हत्या का बदला लेने की योजना बनाई और कार्य में सहायता के लिए जवाहरसिंह ने अपने दूत रुपराम कटारीया को दक्षिण में मल्हारराव होल्कर के पास भेजा और पेशवा को भी सहायता के लिए लिखा। पेशवा ने भी मल्हारराव होल्कर को सन्देश भेजा कि युद्ध में जवाहरसिंह की सहायता की जावे और नजीबुद्दौला से पानीपत के अपमान का बदला लिया जाए। इसके अलावा जवाहरसिंह ने 15 हजार सिक्ख सेना भी सहायता के लिए बुलाई। यह तैयारी काफी लम्बे समय से चल रही थी, अतः यह नजीबुद्दौला से छिप नहीं सकी। नजीबुद्दौला ने अनेक प्रकार से जवाहरसिंह को समझाया। किन्तु उसकी क्रोधाग्नि शान्त नहीं हुई। अन्त में नजीव ने कहला भेजा कि जो कुछ आपके पिता के भाग्य में लिखा था, वह हो गया।

यदि मेंरे साथ लडकर आप उन्हें जीवित कर सकते हो तो लडें। मैंने आपके राज्य का कोई हिस्सा नहीं दबाया है, फिर भी आप व्यर्थ में मुझसे लडाई क्यों मोल लेते हैं?

हार–जीत तो भगवान के हाथ में है। अपने महान नरेश के घातक को दण्ड देना समस्त जाट जाति के लिए आत्म–सम्मान का विषय बन चुका था। कुछ विरोधियों के अलावा सभी जवाहरसिंह के पक्ष में आ चुके थे। यदि जाट लोग खून का घूँट पीकर रह जाते और बदले की कोशिश नहीं करते तो उनकी प्रतिष्ठा बिल्कुल मिट्टी में मिल जाती।

नजीव ने होल्कर को जवाहरसिंह से अलग करने की कोशिश की, उसने कहा कि हम दोनों में पुरानी मित्रता है। मैंने आपकी पानीपत में सहायता की थी। होल्कर ने नजीव को विश्वास दिलाया और कहलवाया कि वह युद्ध में एकमात्र समृद्धशाली जाट नरेश से रुपया ऐंठना चाहता है, आपको परेशान नहीं करना चाहता।

अक्टूबर, 1764 ई. के अंत में एक विशाल सेना ने दिल्ली के किले को घेर लिया। यह सेना सूरजमल की हत्या का बदला और पानीपत की मुस्लिम विजय को धूल–धूसरित करने के लिए दिल्ली पर तूफान की तरह उमडती चली गई। जवाहरसिंह स्वयं 60 हजार सेना और 100 तोप लेकर आया था और 25 हजार मराठे सैनिक मल्हारराव होल्कर के नेतृत्व में थे। दिल्ली को जाटों ने चारों तरफ से घेर लिया था। कई दिन तक रुहेले और मुगल किले से बाहर नहीं निकले। उत्साही जवाहरसिंह ने नजीव को ललकारा कि इस प्रकार किले में छिपने से तुम्हारे प्राण नहीं बच सकते। 15 नवम्बर, 1764 ई. को वह किले से बाहर निकला और दोनों पक्षों में जमकर युद्ध हुआ। उसके बाद जाट और सिक्ख सेना ने 4 जनवरी, 1765 ई. को सब्जी मण्डी व घोडों के बाजार में

अफगानों से भयंकर युद्ध किया। इसमें दोनों पक्षों के बहुत से सैनिक मारे गये रुहेले भाग कर शहर में शहर में घुस गये, परिणाम निर्णायक नहीं रहा।

इस प्रकार फरवरी के प्रथम सप्ताह तक लडाई जारी रही। जब नाहरसिंह को पूर्ण विजय मिलने को थी, तो उसके नमकहराम दोस्त मल्हारराव होल्कर ने जवाहरसिंह के विरुद्ध नजीबुद्दौला का पक्ष ले लिया। नजीव को मल्हारराव द्वारा चुपके–चुपके आश्वासन मिल चुका था कि वह उसे कोई हानि नहीं होने देगा। वह एक बहुत बडी धन राशि रुहेलों से खा चुका था, इसलिए अब उसने प्रत्यक्ष रुप से जवाहरसिंह पर सन्धि का दवाब डालना प्रारम्भ कर दिया।

इस प्रकार होल्कर ने जवाहरसिंह की आशाओं पर पानी फेर दिया। मल्हारराव ने बडी लापरवाही और खुल्लम–खुला नजीव की तरफदारी की। ऐसे समय पर जबकि रुहेले बिना किसी शर्त के आत्मसमर्पण करने वाले थे, उसने तमाम मामले को बिगाड दिया। महाराजा जवाहरसिंह को विवश होकर सन्धि की स्वीकृति देनी पडी।

अब नजीवखाँन ने मल्हारराव होल्कर से मिलकर जवाहरसिंह के साथ सन्धि की बातचीत प्रारम्भ कर दी। नजीव ने अपने दूतों के माध्यम से सन्धि–पत्र जवाहरसिंह के पास भेजा। जवाहरसिंह ने उत्तर दिया कि निर्णय युद्ध में ही होगा, मैं नजीव का सिर चाहता हूँ। इसके पश्चात 9 फरवरी, 1765 ई. को नजीव अपने मित्र मल्हारराव होल्कर के साथ जाकर शाहदरा के शिविर में जवाहरसिंह से मिला। मलहारराव होल्कर ने जवाहरसिंह को इस शर्त पर राजी कर लिया कि शहजादी का डोला और युद्ध का खर्चा नजीबुद्दौला के ऊपर है, आप स्वीकार कर लीजिए। सन्धि स्वीकार कर ली गई।

महाराजा जवाहरसिंह इस सन्धि से लेश–मात्र भी प्रशन्न नहीं था। यह सन्धि उसके विश्वासघाती मित्र होल्कर ने जबरन उसके सिर पर थोपी थी। यद्यपि दिल्ली के सिंहासन पर जाटों का अधिकार न हो पाया, किन्तु दिल्ली नगर व लालकिले को अवश्य ही जीत लिया था। इससे भारत में जाटों की शक्ति का सितारा सबसे ऊँचा हो गया।

राष्ट्रीय सोच के परिपेक्ष्य में सूरजमल की नीति एक कुशल राजनीतिज्ञ की भाँति मालूम होती है। जब अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण के दौरान हिन्दुस्तान की शक्तियों में एकमात्र सूरजमल ही ऐसा व्यक्ति था, जिसने मित्रविहीन होते हुए भी राजनीतिक सूझ–बूझ, साहस एवं नीति कुशलता का परिचय दिया। उस समय सूरजमल साम्राज्य के वजीर और शक्तिशाली मराठों की शत्रुता से जूझ रहा था और राजपूताना के शासक विशेष रुप से माधोसिंह, अहमदशाह अब्दाली का स्वागत करने की तैयारी कर रहे थे। वास्वत में हिन्दुस्तान पर अब्दाली के अभियान का मार्गदर्शक नजीव खाँ ही था।

कन्धार से अब्दाली और दक्षिण से रघुनाथराव के नेतृत्व में मराठा सेनायें एक साथ रवाना हुईं थी। दोनों को एक साथ दिल्ली पहुँचना चाहिए था। रघुनाथराव अब्दाली से टक्कर लेने से हिचकता था और यह आशा लगाए बैठा था कि अब्दाली जाटों और मुगलों को कुचल डालेगा, तब हम सहजता से दिल्ली की गद्दी प्राप्त कर लेंगे। यही कारण था कि वह दिल्ली से दूर ही रहा। जब राजपूताना के प्रमुख शासकों ने भयभीत होकर समर्पण कर दिया, तो महाराजा सूरजमल

दिल्ली के ठीक पास में होने के नाते क्या रुख अपना सकता था? वह बडी चतुराई, सूझ–बूझ तथा साहस से शत्रु के सामने झुका नहीं।

सूरजमल ने अपने साहसी पुत्र जवाहरसिंह को वल्लभगढ में तैनात कर स्वयं ने मथुरा के निकट मुरसान में शिविर लगाकर अब्दाली की गतिविधियों पर नजर रखने का निश्चय किया। अब्दाली ने सभी राज्यों को पत्र भेजे कि वे आकर शाह को नजराना भेंट करें। जाटों के अलावा सभी ने आज्ञापालन किया, अतः जाटों के विरुद्ध उसने हथियार उठाने का निश्चय किया।

सूरजमल द्वारा बाद में किए गए अब्दाली के सफल प्रतिरोध से यह स्पष्ट होता है कि यदि रघुनाथराव शीघ्रतापूर्वक आगे बढता और ईमानदारी के साथ जाटों के सहयोग से विदेशी आक्रान्ता का मुकाबला करता, तो देश को भयंकर विनाश एवं दुर्दशा से बचाया जा सकता था किन्तु रघुनाथराव और होल्कर ने जान–बूझकर आगे बढने में देरी की, क्योंकि अब्दाली से युद्ध करने की उनकी इच्छा नहीं थी। उनका विचार था जब अब्दाली जाट वगैरह को कुचलकर वापस चला जायेगा, तब दिल्ली जाकर वे आसानी से अपने राजनैतिक विरोधियों को परास्त करके साम्राज्य की व्यवस्था अपने हाथ में ले सकेंगे।

सूरजमल के अधीन जाट नीति का एक नया पक्ष यह था कि उसने अपने पूर्ववर्तियों के समान कभी सिद्धान्त रुप में मुगल सार्वभौमिकता को अस्वीकार नहीं किया और शहंशाह और उसके वजीर के पक्ष में सदैव रहते हुए उसके सैनिक अभियानों में भाग लिया। यह उस समय प्रचलित चातुर्यपूर्ण कार्यरीति के साथ–साथ उसकी अपनी इष्ट सिद्धि और विश्वास को भी प्रदर्शित करता है। हम जानते हैं कि उस समय सभी महत्वाकांक्षी व्यक्तियों, जिनमें निजाम, सादत खाँ, सरबुलंदखाँ, अलीबर्दी खाँ, नजीबुद्दौला और इमादुलमुल्क जैसे सल्तनत के स्तंभ शामिल थे, ने या तो अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित किया या शाही जमीन हडप ली, फिर भी वे स्वयं को शहंशाह का निष्ठावान सेवक कहते नहीं थकते थे। इसी प्रकार यद्यपि सूरजमल ने भी काफी बडे क्षेत्र हथिया रखे थे फिर भी वह अपने को शहंशाह का पुराना और निष्ठावान सेवक दर्शाता था।

उसके समकालीन लोगों की ऐसी ऊँची घोषणाओं में ईमानदारी की कमी है। इनको पढकर एक अवसादपूर्ण पीडा होती है। इसमें एकमात्र प्रायश्चित–पूर्ण पक्ष यह था कि सूरजमल ने शहंशाह के तमाम अभियानों में उसकी निष्ठापूर्वक सेवा करने की तत्परता दर्शाई सिवाय उनमें जिनसे उसकी स्थानीय स्थिति को क्षति हो सकती थी। इसके अलावा इमाद और मराठों के विपरीत वह शाही प्रतिष्ठा को नुकसान पहुँचाने से भी बाज आता रहा और नजीब के समान उसने किसी विदेशी शत्रु से भी तालमेल नहीं किया। यह तो स्पष्ट है कि उसने यह सब अपने क्षेत्रीय लाभों की औपचारिक प्राप्ति के लिए किया। लेकिन उसके अन्दर तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति में एक संतुलनकारी तत्व के रुप में सल्तनत को बचाए रखने का भी उद्देश्य था, जिससे इनकार नहीं किया जा सकता। दृढ जाट साहस ने, नीचे लौटे हुए हिन्दू मस्तिष्क में विश्वास का संचार किया और इस्लाम को पुनः प्रतिरक्षात्मक स्थिति पर आने के लिए बाध्य होना पडा। अपनी तमाम महत्वाकांक्षाओं के बावजूद सूरजमल ने कभी भी मुगल सत्ता की समाप्ति नहीं चाही।

18 वीं शताब्दी में विशेषकर सदी के उत्तरार्द्ध में जाट–मुगल सम्बन्धों ने तत्कालीन भारत की राजनीति को बहुत अधिक प्रभावित किया। जाट–मुगल सम्बन्धों का प्रभाव तत्कालीन राजनीति पर स्पष्ट दिखाई देता है। मुगल सम्राट मोहम्मदशाह ने तो जाटों के प्रति सामान्यतया नरम रुख रखा, किन्तु उसके उत्तराधिकारी अहमदशाह ने जाट सूरजमल और उसके समर्थकों के साथ प्रारंभ में कडा रुख अपनाया। उसके बजीर और मीरबख्शी ने जाटों को युद्ध क्षेत्र में उतरने को बाध्य कर दिया। 1750 ई. में शाही वजीर सफदरजंग और सूरजमल के मध्य मित्रता हो गई, जिससे कुछ समय के लिए जाट–मुगल सम्बन्ध सामान्य बने रहे। सूरजमल ने प्रथम अफगान अभियान और द्वितीय अफगान अभियान में अपने मित्र की सहायता कर शाही–सरकार से सम्बन्धों को बनाए रखा। इसी प्रकार जावेद की हत्या में भी सूरजमल ने सफदरजंग का साथ दिया तथा शाही गृह–युद्ध में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सूरजमल हर कदम पर शाही–सरकार का सहयोगी रहा, किन्तु नजीबुद्दौला से सूरजमल के सम्बन्ध संघर्षपूर्ण रहे, इन्हीं संघर्षपूर्ण सम्बन्धों का परिणाम यह निकला कि सूरजल की हत्या कर दी गई। मुगलों से अपने पिता की हत्या का प्रतिशोध जवाहरसिंह ने लिया, किन्तु मराठों के विश्वासघात के कारण वह पूर्णतया सफल नहीं हो पाया। मल्हारराव ने जवाहरसिंह को विवश कर सन्धि करने को बाध्य कर दिया, जिससे जाट–मराठा सम्बन्ध भी ठीक नहीं रहे। राजकुमार सूरजमल का सफदरजंग से मैत्री–गठबंधन अमिश्रित वरदान नहीं था। एक तरफ यदि उसकी समृद्धि और प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई तो दूसरी तरफ इसने उसे दरबार की पेचेदी राजनीति में उलझा दिया।

अन्य शोध सम्भावनाऐं

1. प्रस्तुत शोध कार्य से मध्यकालीन भारत में जाट एवं मुगल सम्बन्धों के इतिहास के नवीन आयाम खुल जायेंगे तथा जाटों एवं मुगलो के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सम्बन्धों को जानने में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि होगी।
2. जाटों की तत्कालीन राजनीति में भूमिका का अध्ययन किया जा सकेगा।
3. जाटों के मुगलों के अलावा मराठों, राजपूतों सिक्खों एवं अफगानों से सम्बन्धों का भी अध्ययन किया जा सकेगा।
4. भरतपुर–धौलपुर के जाटों का गोहद के जाटों से राजनैतिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जा सकेगा।
5. 18 वीं सदी से पूर्व और बाद की जाट राजनीति का अध्ययन किया जा सकेगा।
6. जाट एवं अंग्रेजो के सम्बन्धों को जानने में सहायता मिलेगी।
7. राजस्थान के जाटों का अन्य राज्यों में स्थित जाटों से सम्बन्धों को समझने में मदद मिलेगी।
8. प्रस्तुत शोध सामाजिक विज्ञान के शोध अध्येयताओं उपादेन होगा।
9. प्रस्तुत शोध कार्य विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के छात्रों के लिए उपलब्ध हो सकेगा।
10. प्रस्तुत शोध से तत्कालीन राजनीति को समझा जा सकेगा।

(अ) मानचित्र

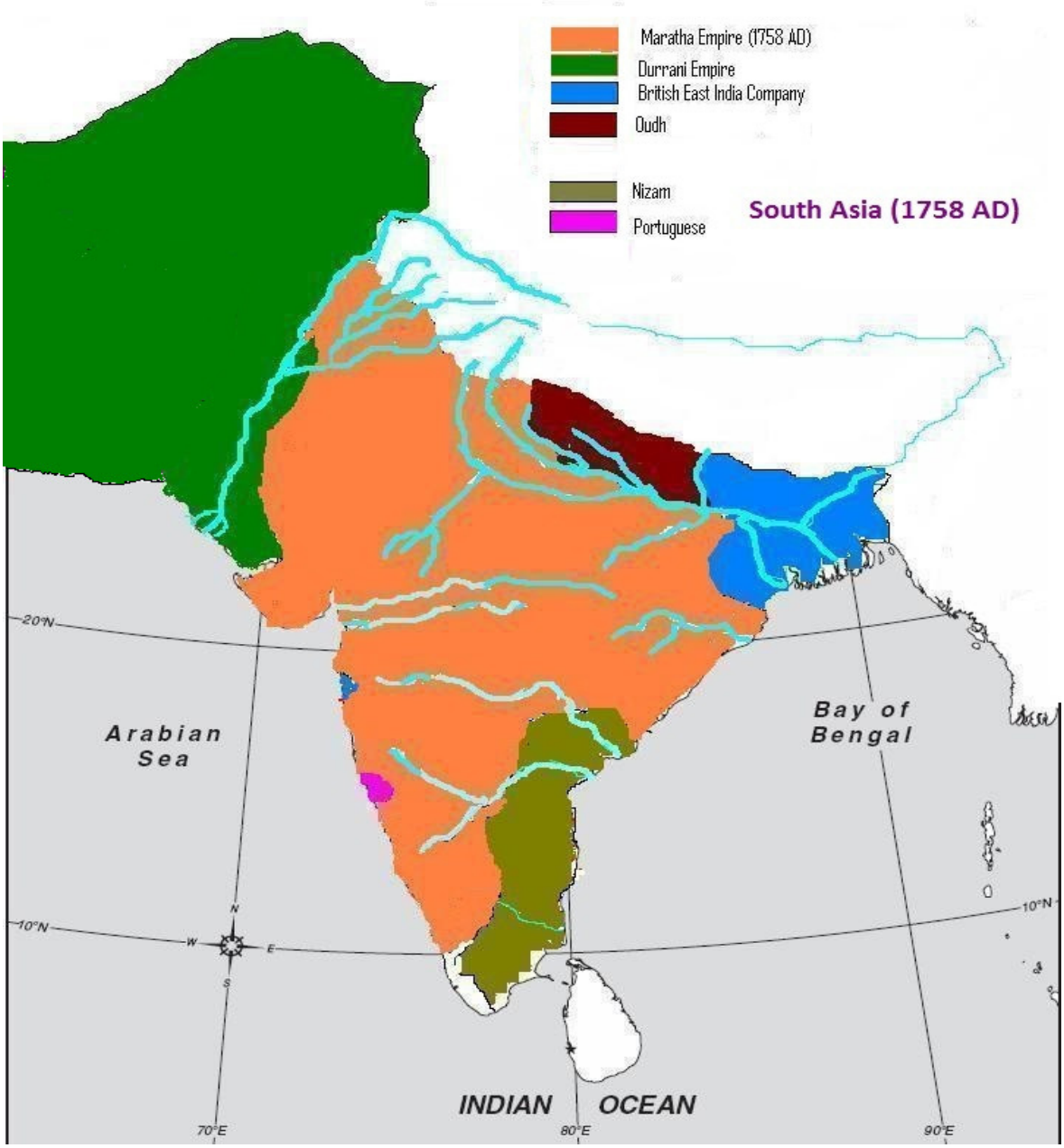
Maratha Empire (1758 AD)
Durrani Empire
British East India Company
Oudh
Nizam
Portuguese
South Asia (1758 AD)
Arabian Sea
Bay of Bengal
INDIAN OCEAN
20°N
10°N
70°E
80°E
90°E

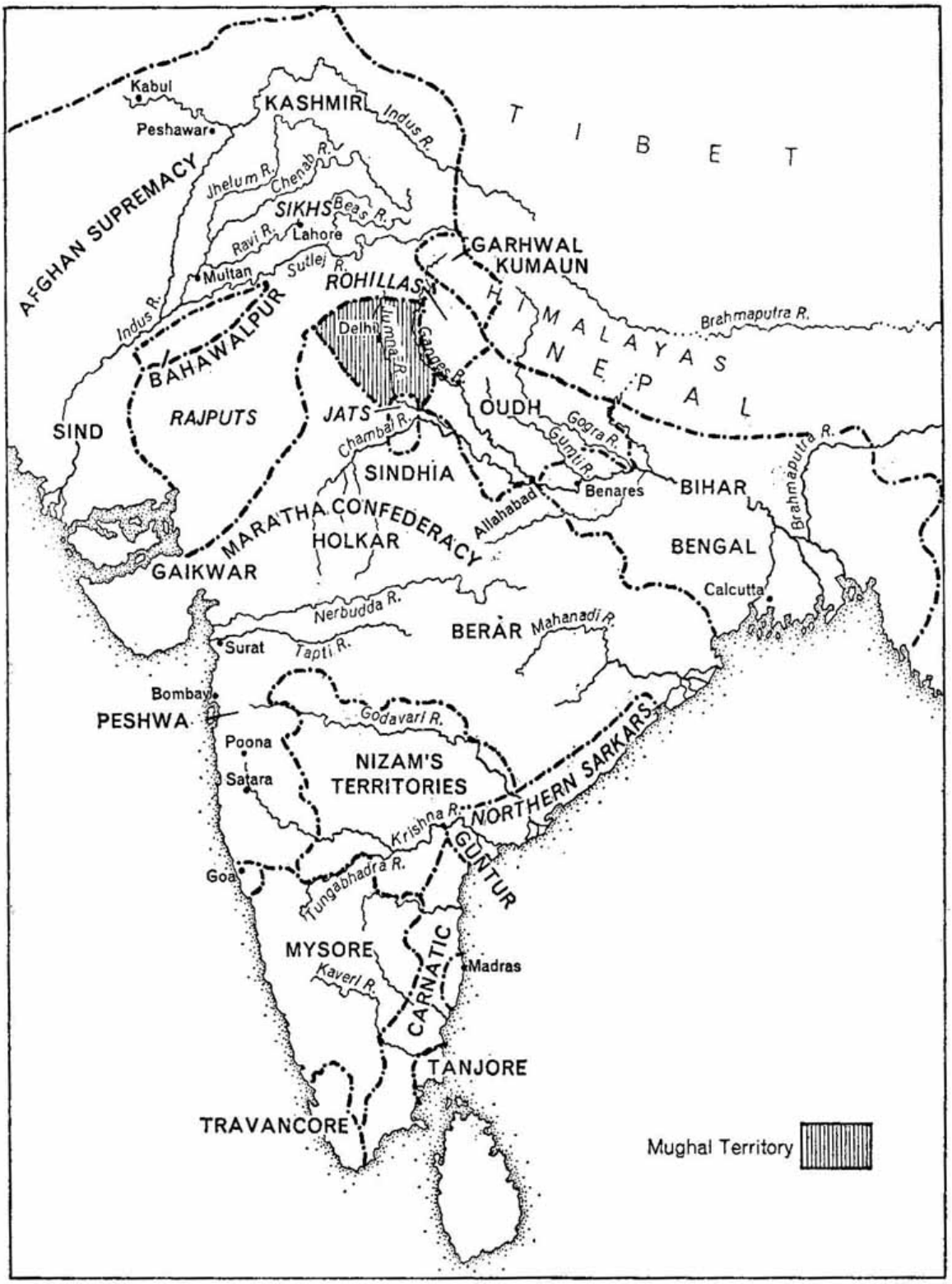

INDIA IN 1780

From: *An Historical Atlas of the Indian Peninsula* (Oxford University Press, Bombay, 1961).

महाराजा सूरजमल के भरतपुर राज्य का विस्तार

(ब) चित्रफलक

सूरजमल स्मारक, भरतपुर

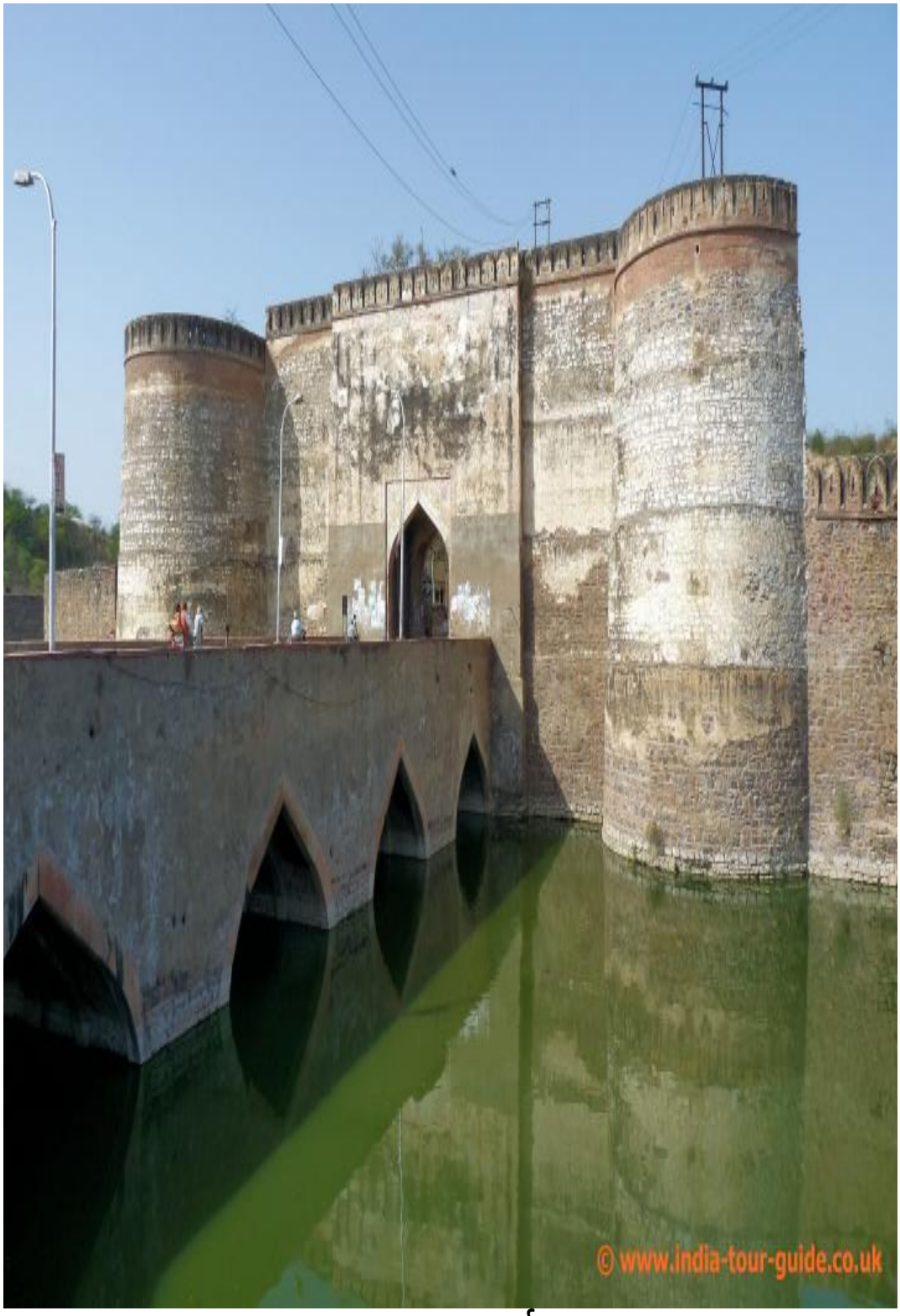

भरतपुर दुर्ग

घण्टाघर धौलपुर (निहाल टावर)

मचकुण्ड धौलुपर

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 प्राथमिक स्त्रोत

जनरल – गजेटियर तथा समाचार पत्र

आप्टे दत्तात्रेय विष्णु : चन्द्रचूड दफ्तर भाग–1, भारतीय इतिहास संशोधक मंडल, पुणे–प्रथम संस्करण, 1882 शके।

अरिसिंह महाराणा, वीर विनोद : भरतपुर का जुआफियह।

भागवत, अनन्त नारायण : होलकरांची कैफियत, द्वितीय संस्करण 1852 शके।

डूडी, सूरजभान सिंह : 'जाट सेवक' अंक–1, जुलाई, 1974, अंक–1, सितम्बर 1974 सूरजभान सिंह डूडी, रतन काटेज जयपुर–6 के लिए ओरियण्टल प्रिन्टर्स जाटकुआ के रास्ते से मुद्रित।

दैनिक भास्कर, समाचार पत्र 13 नवम्बर, 2014।

धौलपुर गजेटियर।

गजेटियर ऑफ भरतपुर स्टेट : ले. सी. के. एम. वाल्टर, आगरा 1868।

जाटों के बारे में देवदत्त के शीर्षक रहित विविध विवरण। पांडुलिपि, चौ. कबूल सिंह शोरम, मुजफ्फरनगर।

खरे, गणेशहरि : हिंगणे–दफ्तर भाग–2, भारतीय इतिहास संशोधक मंडल, पुणे, 1947।

केलेण्डर ऑफ पर्शियन करस्पोण्डेंस भाग : 7, मैनेजर ऑफ पब्लिकेशन्स, दिल्ली, मैनेजर गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया प्रेस, कलकत्ता, 1940।

पं. कान्हाराम की शीर्षक रहित पोथी। पांडुलिपि, चौ. कबूलसिंह, शोरम, मुजफ्फरनगर।

पत्रिका, राजस्थान, भरतपुर विशेष 24/8/16

राय, निरोदभूषण : ग्वालियर स्टेट गजेटियर इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया भाग 8।

राजपूताना गजेटियर, भाग–1 : सुपरिटेण्डेन्ट ऑफ गवर्नमेण्ट कलकत्ता, 1879, के. सी. लुआर्ड, ग्वालियर स्टेट गजेटियर।

सोमनाथ ग्रंथावली

सुजान चरित्र–कवि सूदन (प्रथम संस्करण)

सदगुरु प्रसाद – प्रोग्रेसिव्ह धौलपुर दि हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली।

2. द्वितीयक स्त्रोत

अग्निहोत्री, अजय : जाटों का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, सन् डिस्ट्रीब्यूटर्स, एच/6, दर्पण कालोनी, ग्वालियर, 2001।

अहलावत, दिलीप सिंह : जाट वीरों का इतिहास, डिंपल, रोहतक द्वितीय संस्करण 1992।

भार्गव वी.एस. : राजस्थान के इतिहास का सर्वेक्षण, जयपुर, 1971।

भटनागर वी. एस. : सवाई जयसिंह, जयपुर, 1972।

भार्गव, सुनील : दिल्ली सल्तनत और मुगलकालीन भारत की संस्कृति और इतिहास, जीवन सन्स पब्लिकेशन्स दिल्ली, 1979।

चन्द्रा, एस. : उत्तर मुगल कालीन भारत का इतिहास, मेरठ, 1972।

देशराज, ठाकुर : जाट इतिहास, कान्ति प्रेस, 1938 मारवाड का जाट इतिहास, नागौर, 1954 जाट इतिहास, महाराजा सूरजमल स्मारक शिक्षा संस्थान, जनकपुरी दिल्ली, द्वितीय संस्करण 1992।

दहिया, बी.एस. : जाट्स द एन्शियंट रुलर्स, स्टार्लिंग पब्लिकेशन प्रा. लि. दिल्ली।

देवनीश, जे.ए. : द भवनस् एण्ड गार्डन पैलेसेज ऑफ डीग।

दीक्षित, जी.सी. : ब्रजेन्द्र वंश भास्कर, आगरा, संवत् 1983।

द्विवेदी, गिरीशचन्द्र : जाट और मुगल साम्राज्य, ओरिजिन्लस, ऐन ईम्परिन्ट ऑफ लो प्राइज पब्लिकेशनस, दिल्ली।

द्विवेदी, हरिहर निवास : ग्वालियर के तौमर, विद्या मन्दिर प्रकाशन, मुरार, ग्वालियर गोपाचल आख्यान, जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर (ग्वालियर शोध संस्थान)

गहलोत, जगदीश सिंह : राजपूताना का इतिहास, भाग–3, जोधपुर, 1966।

गहलोत, एस.एस. : राजस्थान के इतिहास का तिथिक्रम, जोधपुर, 1967।

गुप्ता, कुंजबिहारी लाल : दी एवॉल्यूशन ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ दी फॉर्मर भरतपुर स्टेट, 1722–1947।

इर्विन, विलियम : लेटर मुगल्स, ओरियन्टल पब्लिशर्स एण्ड बुकसेलर 58, रानी झाँसी मार्ग, नई दिल्ली।

जयसवाल, के. पी. : अंधकार युगनी भारत, (अनुवादक–रामचन्द्र वर्मा) काशी, संवत् 2014।

जघीना, देशराज : जाट इतिहास, ब्रजेन्द्र साहित्य समिति आगरा, प्रथम संस्करण, 1934।

कानूनगो, कालिका रंजन : हिस्ट्री ऑफ द जाट्स, सूरजमल स्मारक शिक्षा संस्थान, जनकपुरी, नई दिल्ली–1982।

: हिस्ट्री ऑफ जाट्स, एम. सी. सरकार आफ एम.सी. सरकार एण्ड सन्स, 90–2, ए, हेरीसन रोड कलकत्ता, 1925।

कनिंघम, एलेक्जेन्डर : प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल (अनु. जगदीश चन्द्र) आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, इलाहाबाद (उ.प्र.)1971।

क्रुक, विलियम : ट्राइब एण्ड कास्ट्स ऑफ नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज एण्ड अवध, (1896) (नटनागर शोध संस्थान सीतामऊ में उपलब्ध)

खरे, वासुदेव वामन शास्त्री : ऐतिहासिक लेख संग्रह माला, भाग–3 माऊनाना छापाखाना, कुरुदबाडा, 1804–1810।
ऐतिहासिक लेख संग्रह माला, भाग–15, यशवंत वासुदेव खरे मिरज, प्रथम संस्करण 1929।

खोकर, अतलसिंह : जाटों की उत्पत्ति एवं विस्तार, जयपाल ऐजेन्सीज 31 ए सुभाषपुरम, आगरा उ.प्र., 2002।

मित्रा, एम : महाराजा अजीत सिंह और उनका युग, जयपुर,1973।

मनराल,डी.पी.एस. : प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, एस. चाँद कम्पनी, दिल्ली, 1981।

मित्तल, एस. के. : भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, साहित्य–भवन, आगरा, द्वितीय संस्करण, 1991।

मजूमदार, धीरेन्द्र : रेसिज एण्ड कल्चर ऑफ इण्डिया, एशिया पब्लिक हाउस, दिल्ली, 1968।

मीतल, प्रभुदयाल : ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास, लेखक प्रभुदयाल मीतल, 1966।

प्रधान, महेशचन्द : उत्तर भारत में जाटों की शासन व्यवस्था, 1990 अखिल भारत वर्षीय जाट महासभा, नई दिल्ली।

प्रसाद, बेनी : जाटों की उत्पत्ति और इतिहास।

पाटील, विश्वास : पानीपत, भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इन्स्टीट्यूशनल एरिया लोदी रोड, नई दिल्ली, 2008।

रानावत, मनोहरसिंह : भरतपुर महाराजा जवाहर सिंह जाट, देवेन्द्र सिंह गहलोत, हिन्दी साहित्य मन्दिर, गणेश चौक, रातानाडा, जोधपुर, 1973।

सरकार, यदुनाथ : फॉलदी मुगल एम्परर, भाग–2, एम.सी सरकार, एल.डी. डी. कलकत्ता, 1950।
स्ट्रे नोट्स फ्रॉम मराठी सोर्स, यदुनाथ सरकार,1940।
हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब भाग–3।

शर्मा, एम. एल. : कोटा राज्य का इतिहास।

शर्मा, यू. एन. : जाटों का नवीन इतिहास, जयपुर, 1977।

शर्मा, एस. आर. : मुगल एम्परर इन इण्डिया।

शर्मा, उपेन्द्रनाथ : जाटों का नवीन इतिहास (1–2) जयपुर।

सिंह, नटवर : महाराजा सूरजमल (1707–1763) जीवन और इतिहास, 1985, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., 7/31 अंसारी रोड़ दरियागंज, नई दिल्ली।

सिंह गंगा : यदुवंश (भरतपुर का राजवंश) भारती पुस्तक मन्दिर भरतपुर, 1971।

सिंह, रघुवीर : मालवा में युगांतर, पूर्वकाल इन्दौर, 1938 ब्रज का इतिहास, भाग–1।

श्रीवास्तव, आशीर्वादीलाल : भारत का इतिहास (1000–1707) शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा द्वितीय संस्करण,1969।

शास्त्री, वाई. पी. : प्राचीन राज्यवंश एवं जाट क्षत्रिय इतिहास, हरिद्वार, 1994।

शास्त्री, कृत : जाट इतिहास (मुख पृष्ठ उपलब्ध नहीं)

वर्मा, रामवीर सिंह : जाटों का गौरवशाली इतिहास, मनु प्रकाशन मोहल्ला गोपालगढ़, भरतपुर, 1991।

: भरतपुर का इतिहास, प्रदीप प्रकाशन, सूरजमल नगर, निकट केन्द्रीय विद्यालय, भरतपुर, 2012।

: लोहागढ़ की यशोगाथा, प्रदीप प्रकाशन, सूरजमल नगर, निकट केन्द्रीय विद्यालय भरतपुर, 2013

: खूँटैला पाण्डव वंश का इतिहास, साक्षी पब्लिशिंग हाउस, 4/211 मालवीय नगर, जयपुर, 2015।

: महाराजा सवाई जवाहर सिंह और उनका युग, को–ऑपरेशन पब्लिकेशन्स, धामाणी मार्केट की गली, चौडा रास्ता, जयपुर, 2016।
जाटों का इतिहास, भरतपुर।